वेणु-शिल्प

श्रीउपेन्द्र महारथी
निर्देशक—हस्तशिल्प-अनुसन्धान-संस्थान
पटना

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना
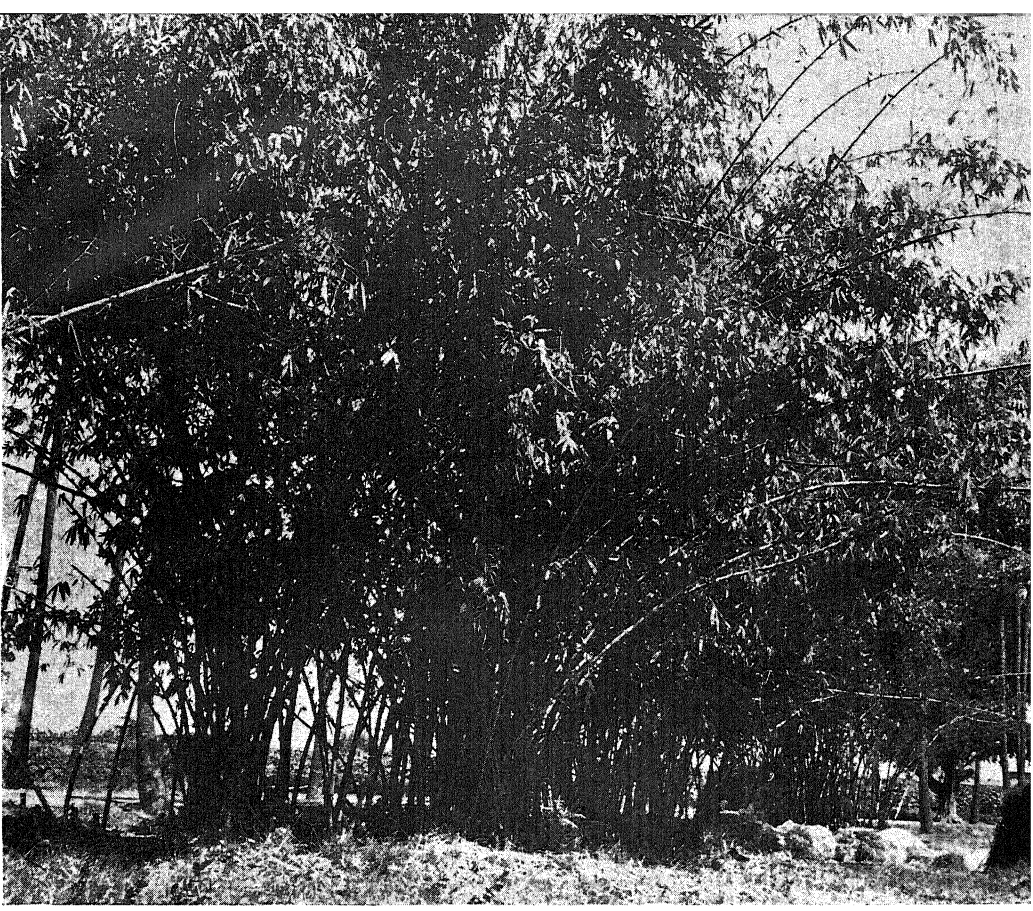
रोपा बाँस की कोठ, यह बाँस कृषकों के गृहकार्य में सदा व्यवहृत होता है।

वेणु-शिल्प : फलक १
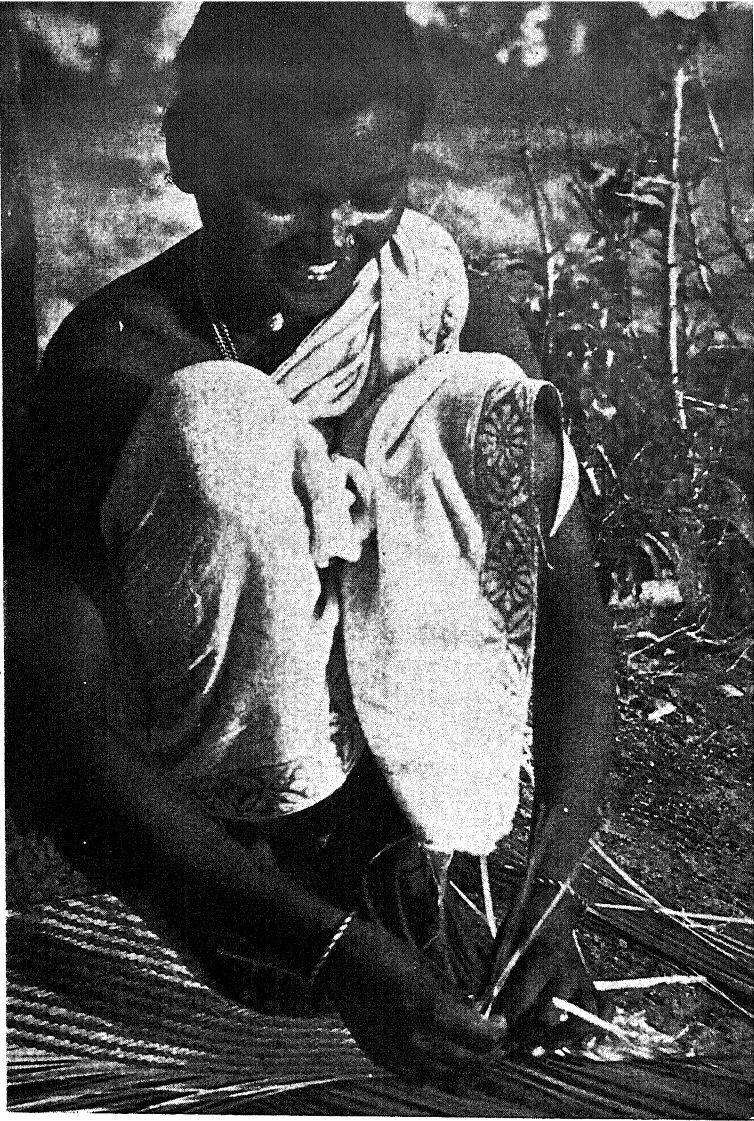
एक आदिवासी महिला अपनी जीविका के लिए चटाई बनाने में संलग्न।

वेणु-शिल्प : फलक २

अपने उपयोग की वस्तुओं की बुनाई में संलग्न कुछ आदिवासी।
बुनाई की यह प्रणाली बड़ी सरल है।

वेणु-शिल्प : फलक ३

वंश-परम्परागत बाँस-शिल्प का पेशा
करनेवाले ग्रामीण कलाकार
टोकरी की बुनाई में
संलग्न।

वेणु-शिल्प : फलक ४
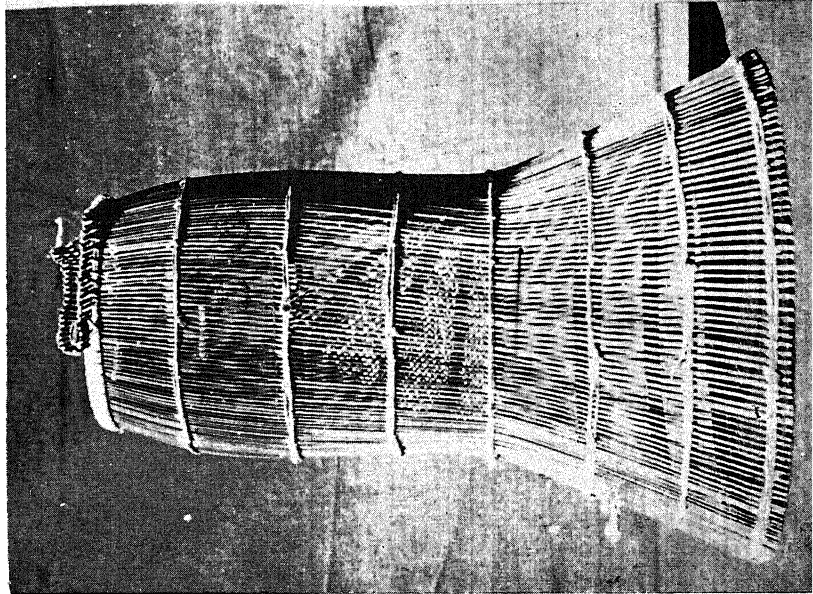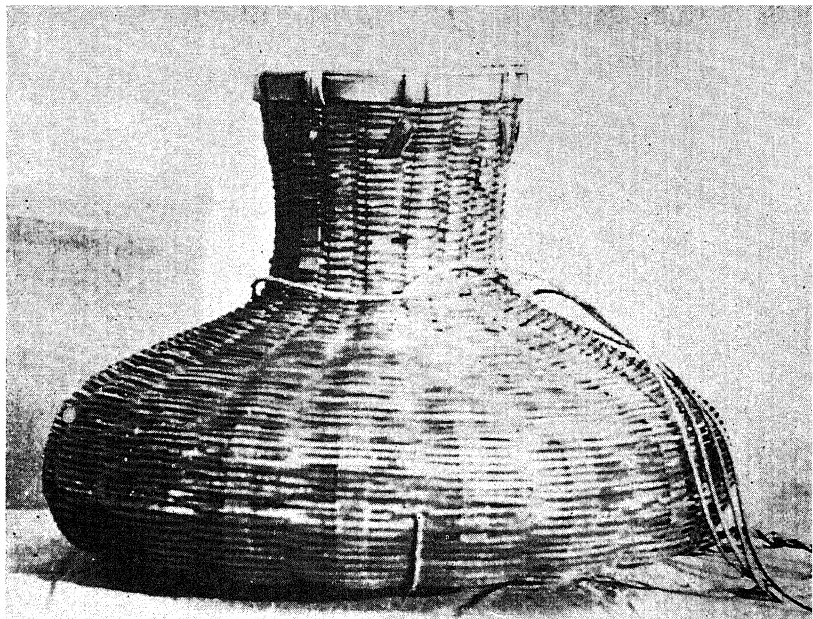
आदिवासियों के दैनिक व्यवहार की वस्तुएं, जिन्हें वे मछली पकड़ने के काम में व्यवहृत करते हैं।

वेणु-शिल्प : फलक ५
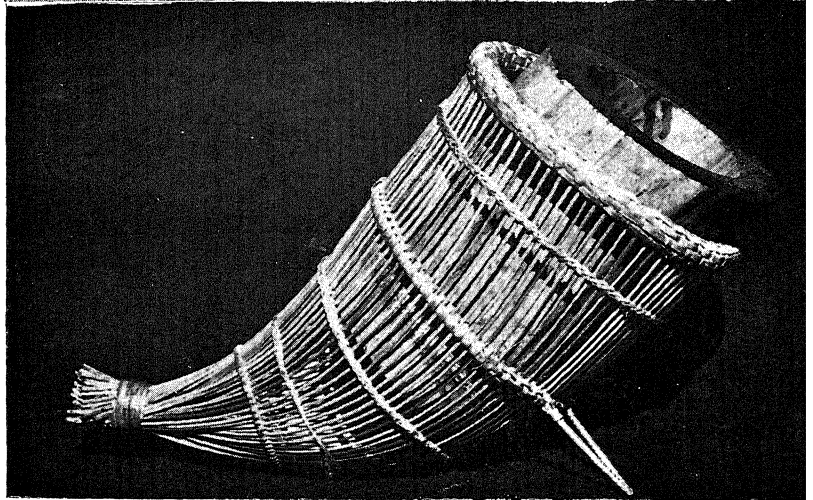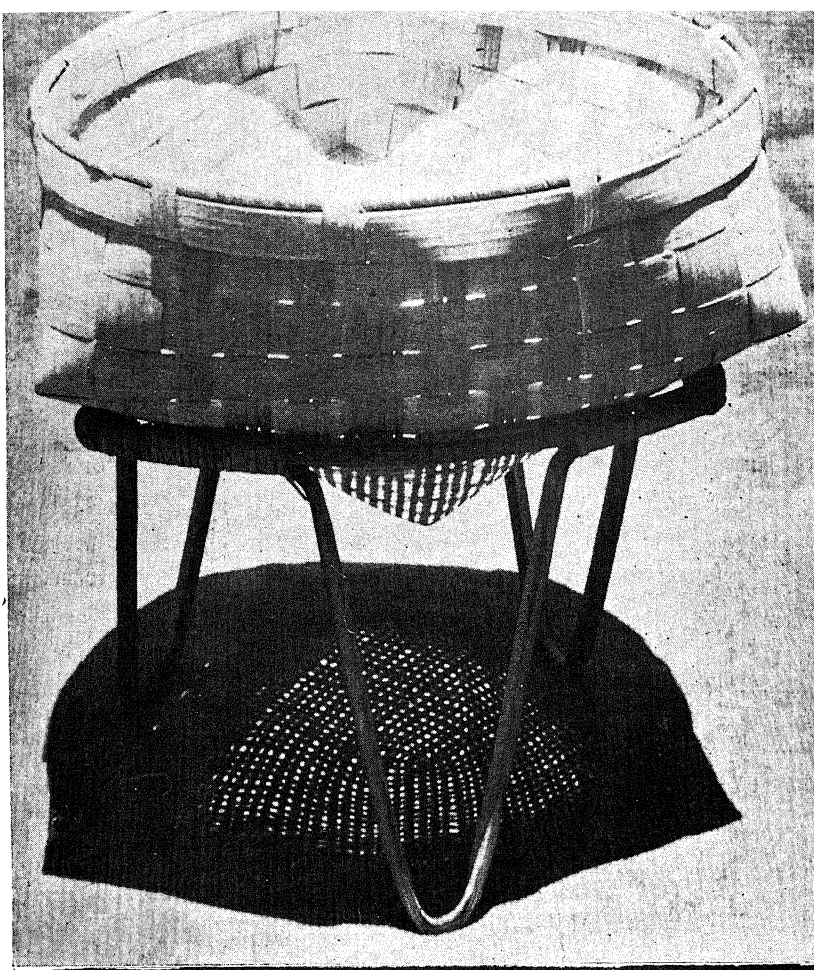
आदिवासियों के उपयोग की कुछ वस्तुएँ, जो आज के आधुनिक व्यवहार में भी लाई जाती हैं।
ऊपर : हँड़िया (शराब) छानने की वस्तु। नीचे : मछली पकड़ने की वस्तु।
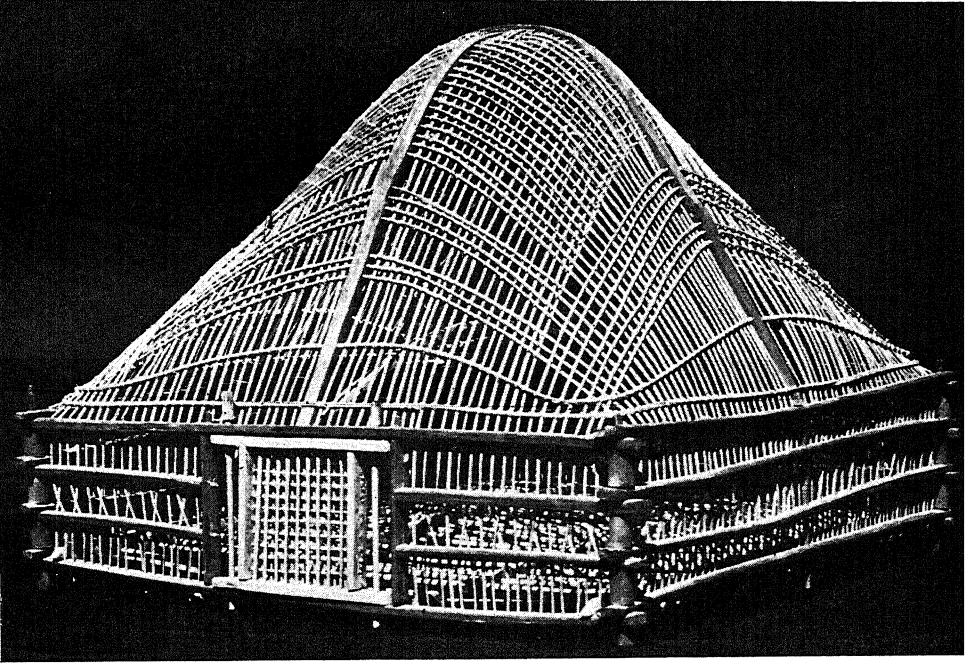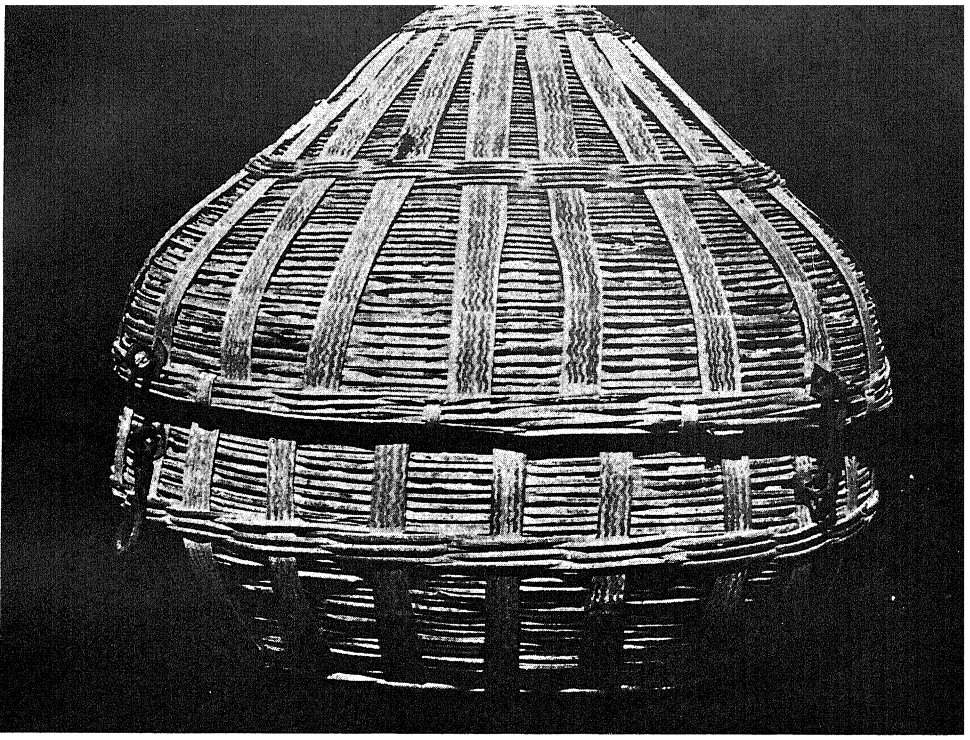
ऊपर : आदिवासियों के यहाँ व्यवहार में आनेवाली पेटी, जिसमें गृह-सामान रखे जाते हैं।
नीचे : पक्षियों के पालने के निमित्त पिंजड़ा।

वेणु-शिल्प : फलक ७
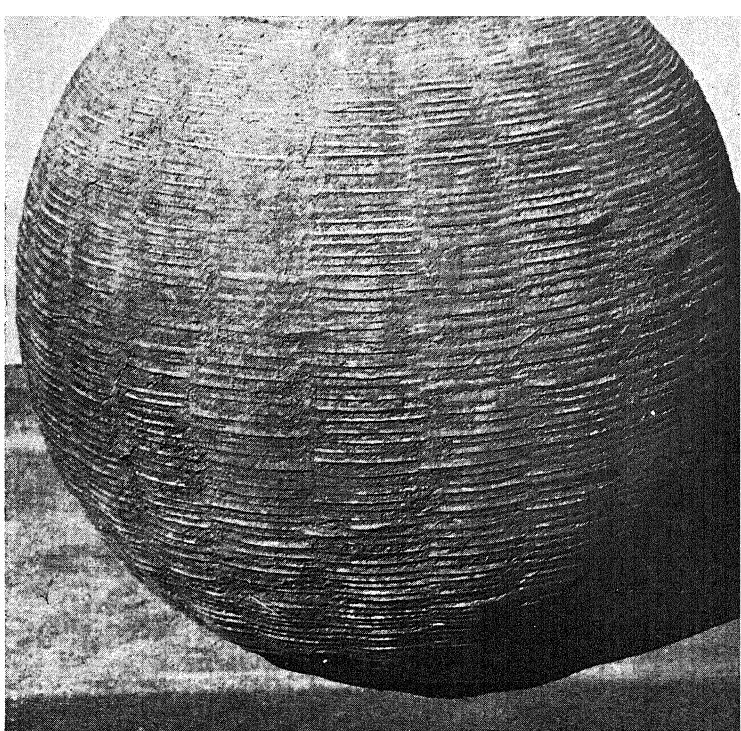
ऊपर : विशेषतः आदिवासियों के व्यवहार में आनेवाली टोकरी, जिसमें धान इत्यादि रखते हैं।

नीचे : वैवाहिक मांगलिक कार्य में प्रयुक्त होनेवाली आलंकारिक टोकरी।
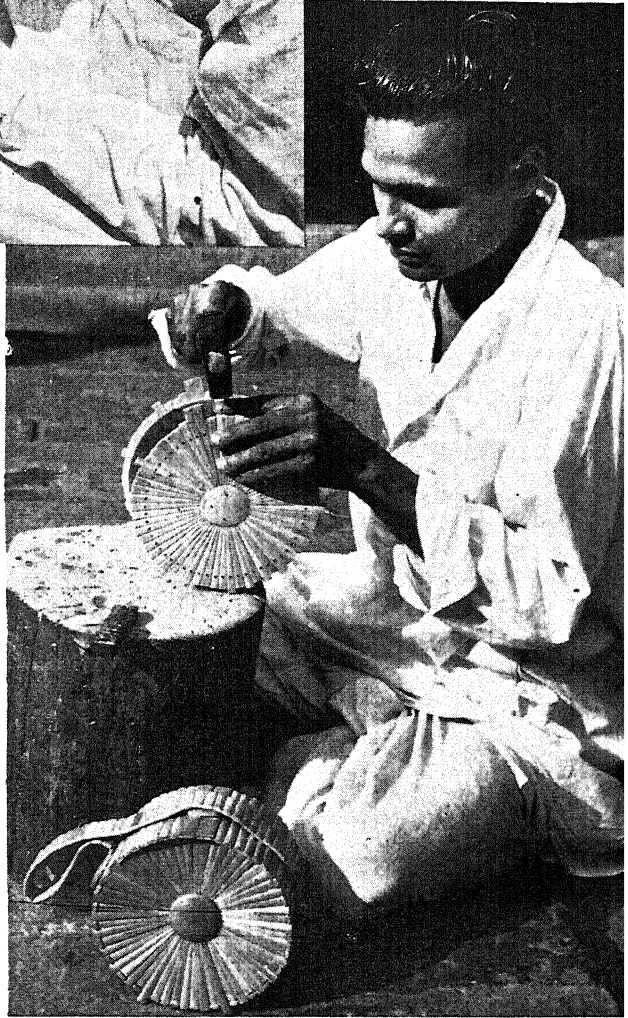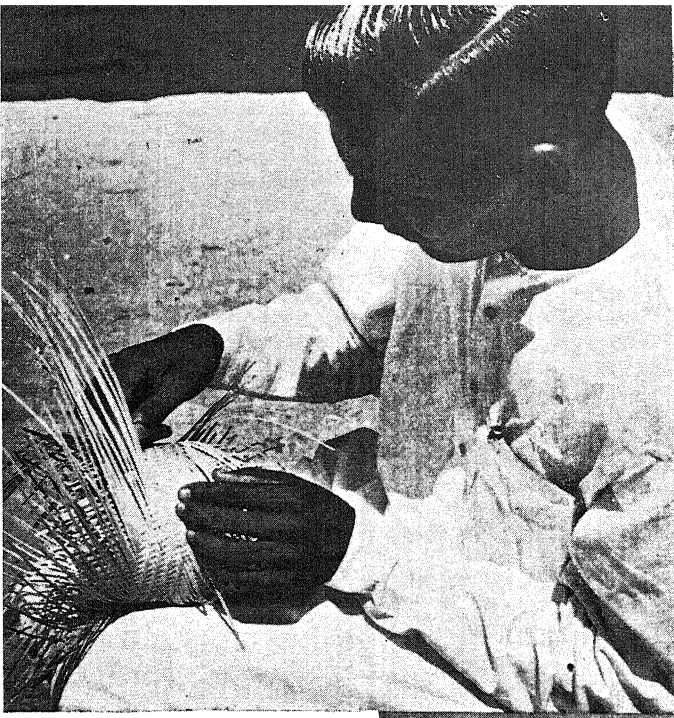
दैनिक व्यवहार में आनेवाली
आधुनिक ढंग की वस्तुओं
को बनाने में संलग्न
वेणुशिल्पी
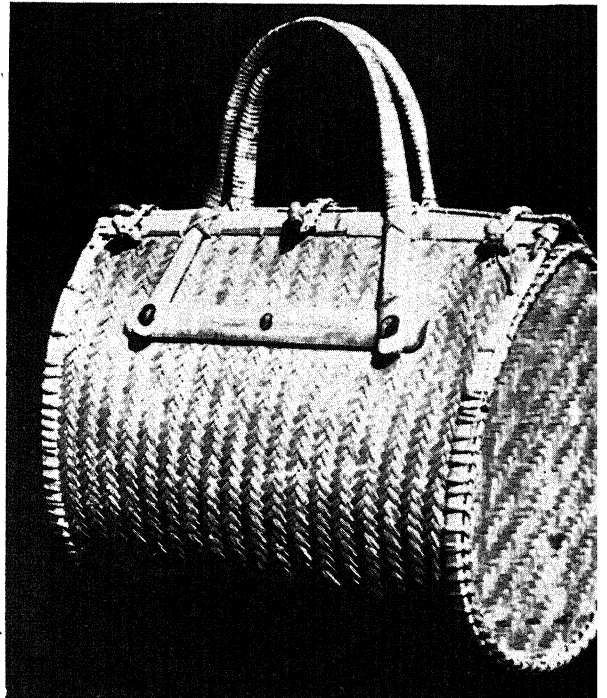
वेणु-शिल्प : फलक ६

आधुनिक स्त्रियों के व्यवहार में आनेवाले हैण्ड बैग
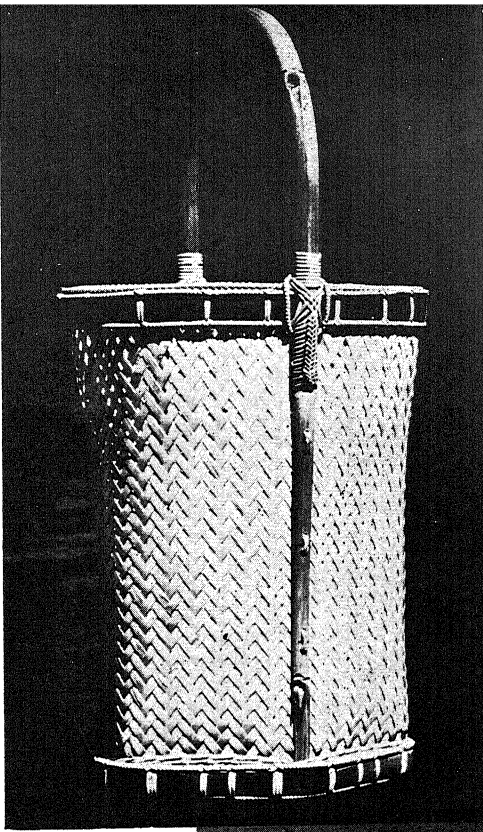
वेणु-शिल्प : फलक १०

हैण्ड बैग के अन्य नमूने। ऊपर का नमूना
केवल बाँस से निर्मित है।

नीचे—एक बैग और टेबुल-मेट, जो बाँस
की कोंपल से तैयार हुए हैं।
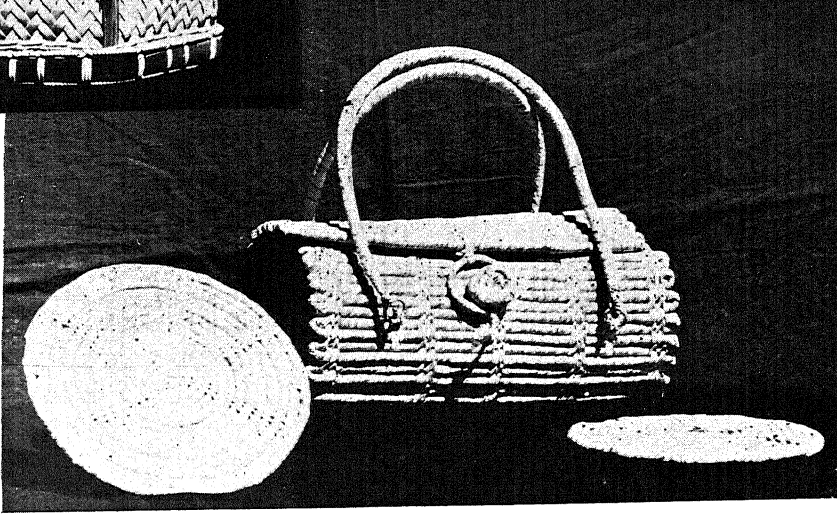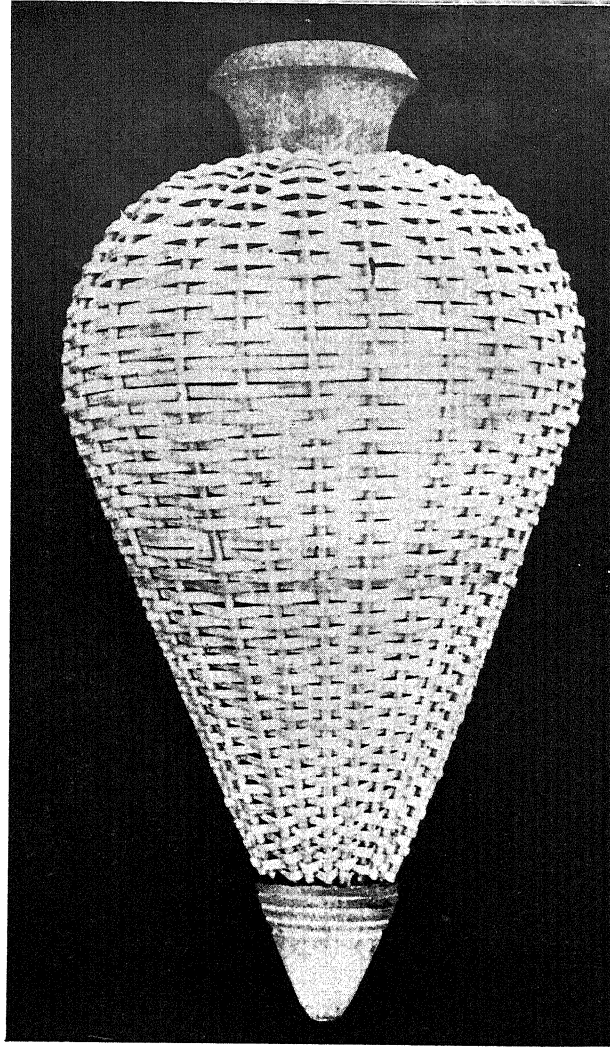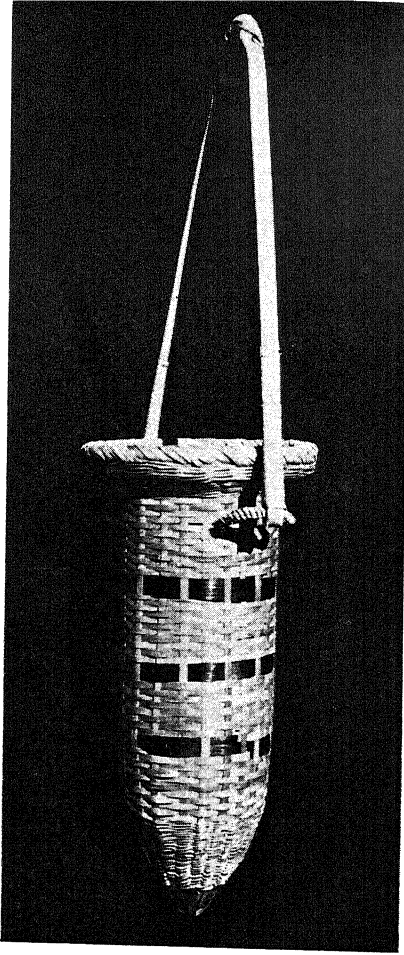
बाँस के बने दीवार से लटकनेवाले दो प्रकार के फूलदान

वेणु-शिल्प : फलक १२
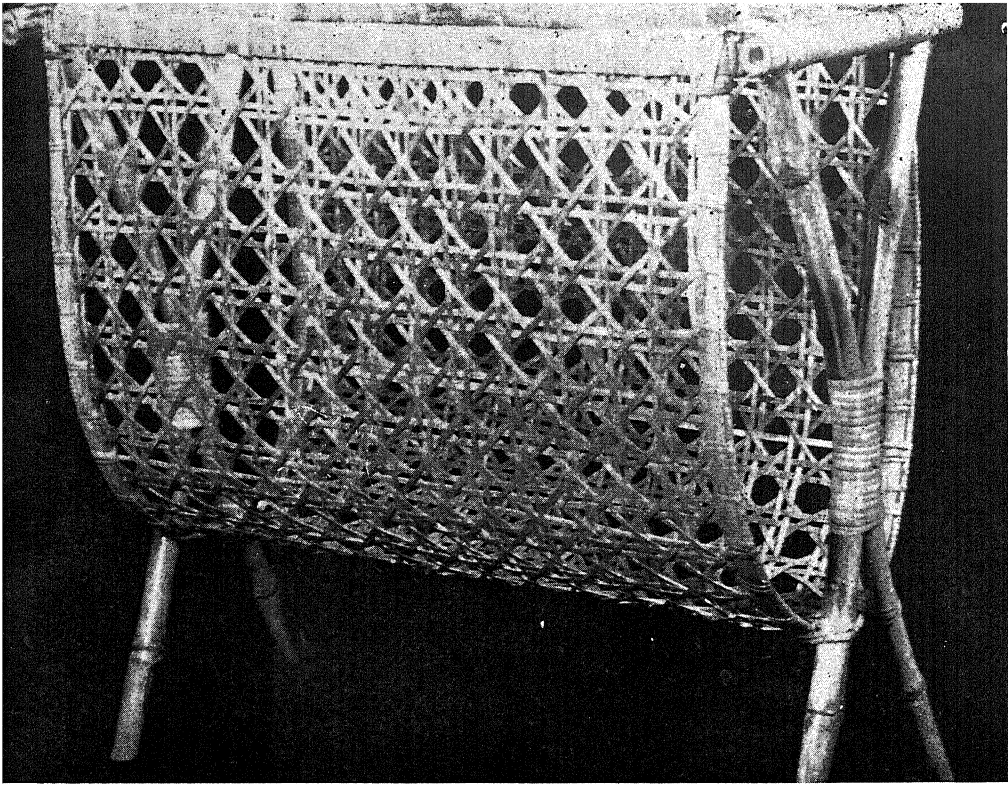
ऊपर : पत्र-पत्रिकाओं को रखने के लिए खड़ी रखनी वाली झोली

नीचे : फूल या फल रखने की चँगेली

वेणु-शिल्प : फलक १३
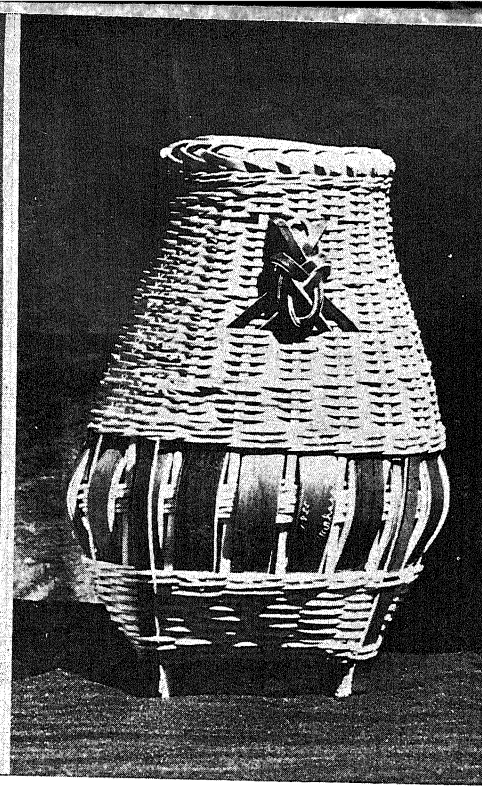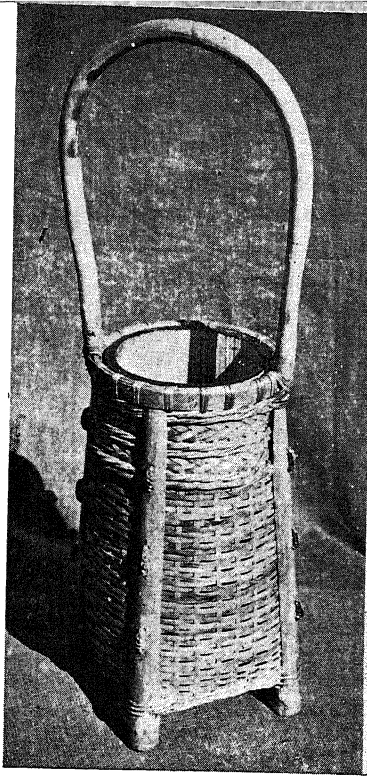
विभिन्न बनावट के तीन फूलदान
के नमूने

ऊपर : बाजार करने के काम में आनेवाला एक बैग
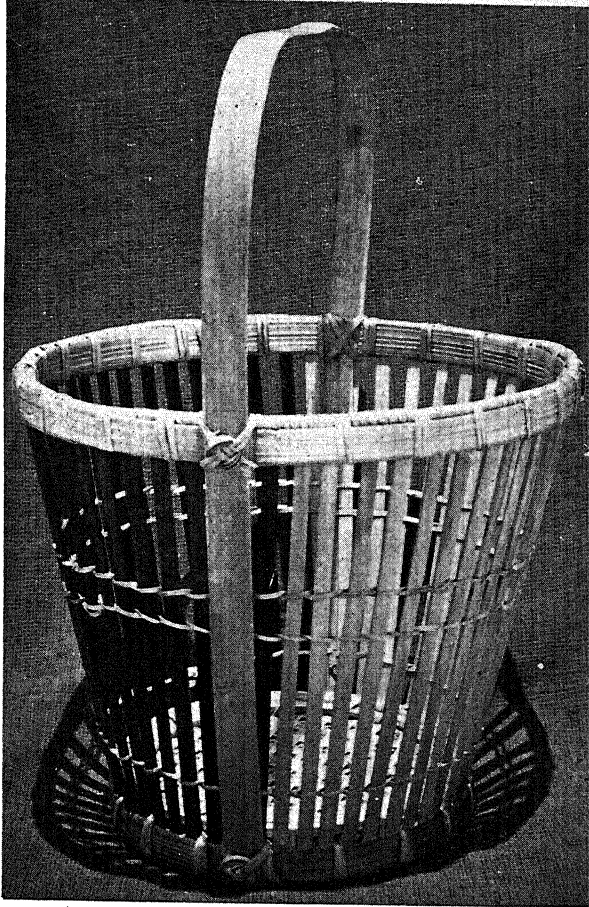
नीचे : बाजार करने के काम में आनेवाला एक अन्य प्रकार का बैग

वेणु-शिल्प : फलक १५
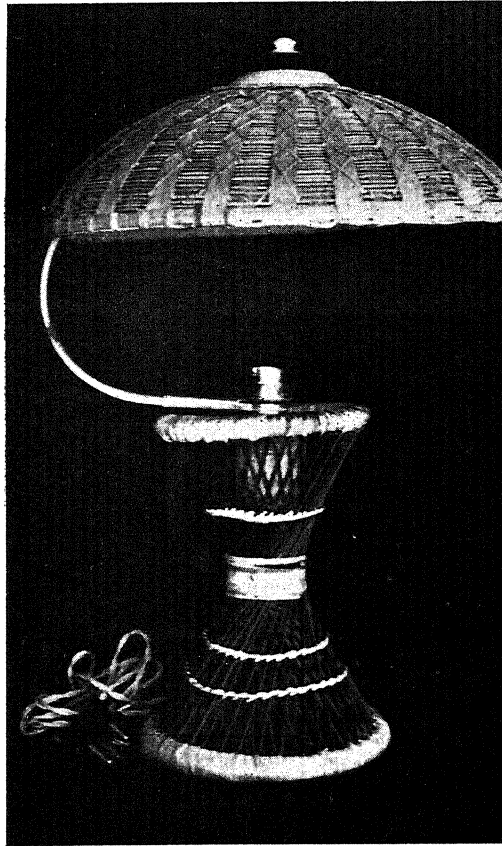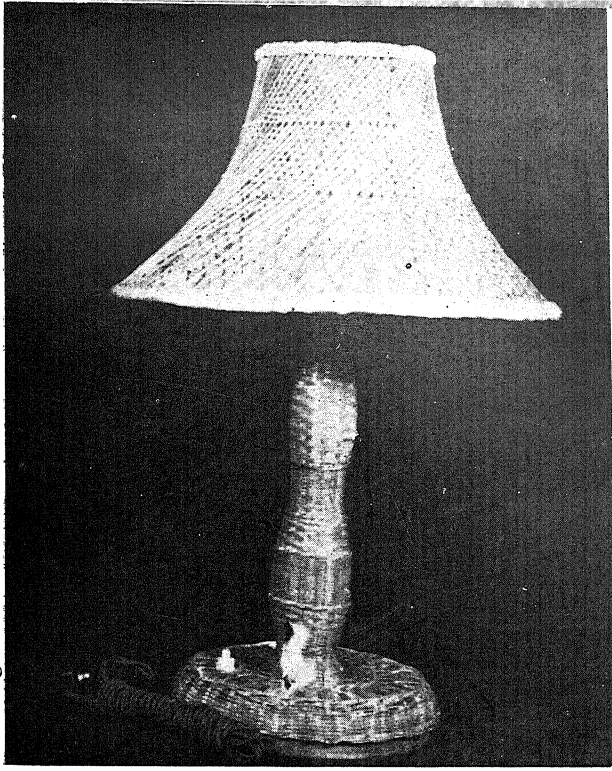
विभिन्न बनावट के दो आधुनिक टेबुल लैम्प
जो केवल पतली कमचियों से बने हैं

वेणु-शिल्प : फलक १६
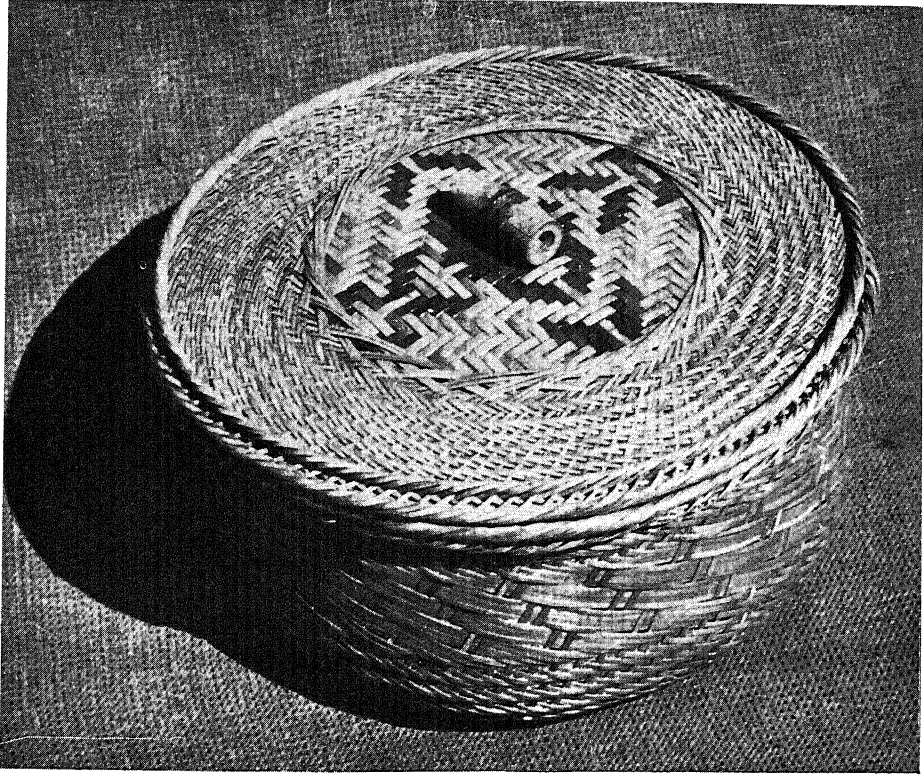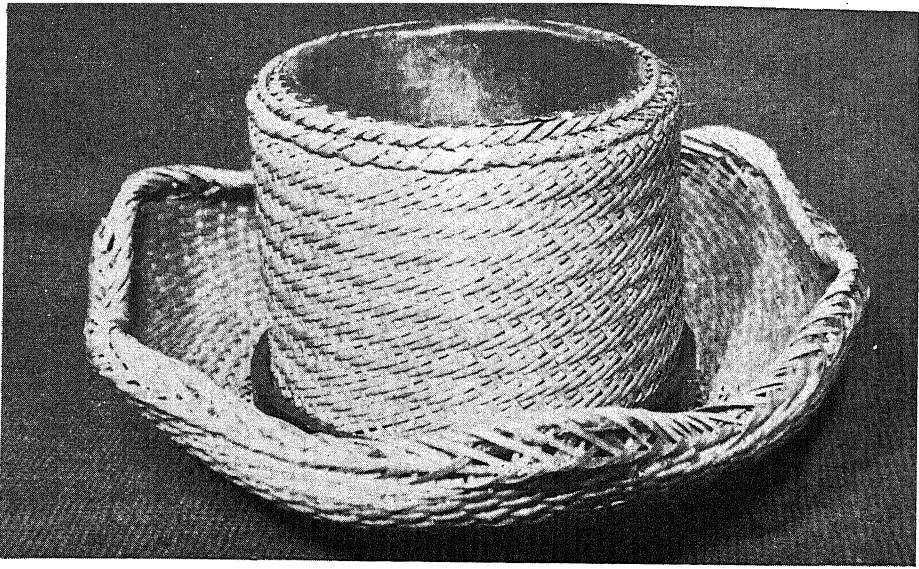
बाँस की सूक्ष्म कमचियों से बने दो उत्कृष्ट नमूने
फूलदान (ऊपर) : पिटारी (नीचे)

वेणु-शिल्प : फलक १७
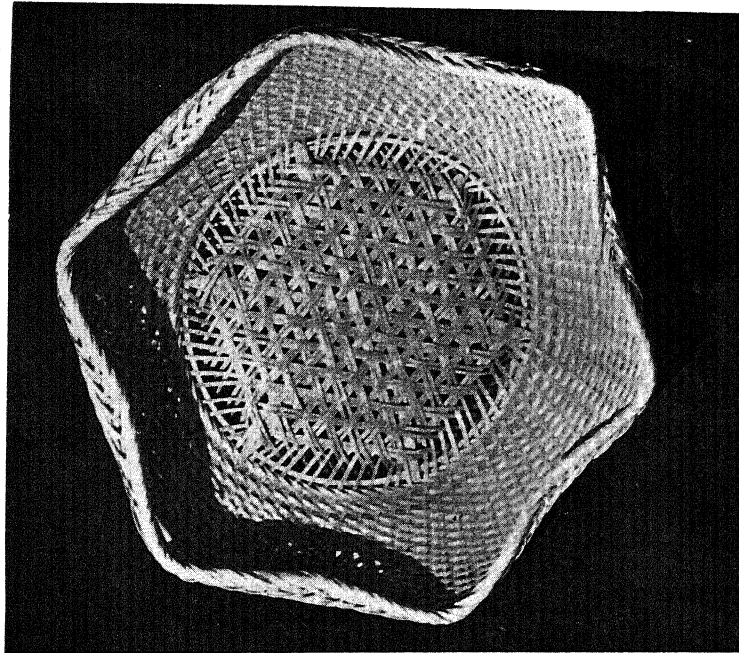
बाँस के बने दो उत्कृष्ट नमूने—

ऊपर—खाने की सामग्री रखने की झँपोली।

नीचे—फल इत्यादि रखने का सामान
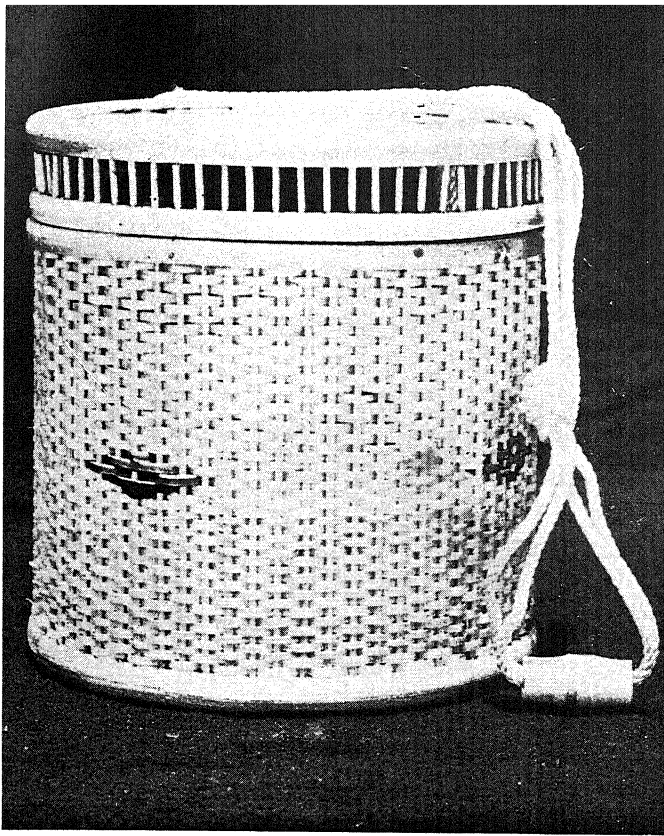
वेणु-शिल्प फलक : १८

विभिन्न बनावट के कतिपय आधुनिक डिजाइन के हैण्डबैग
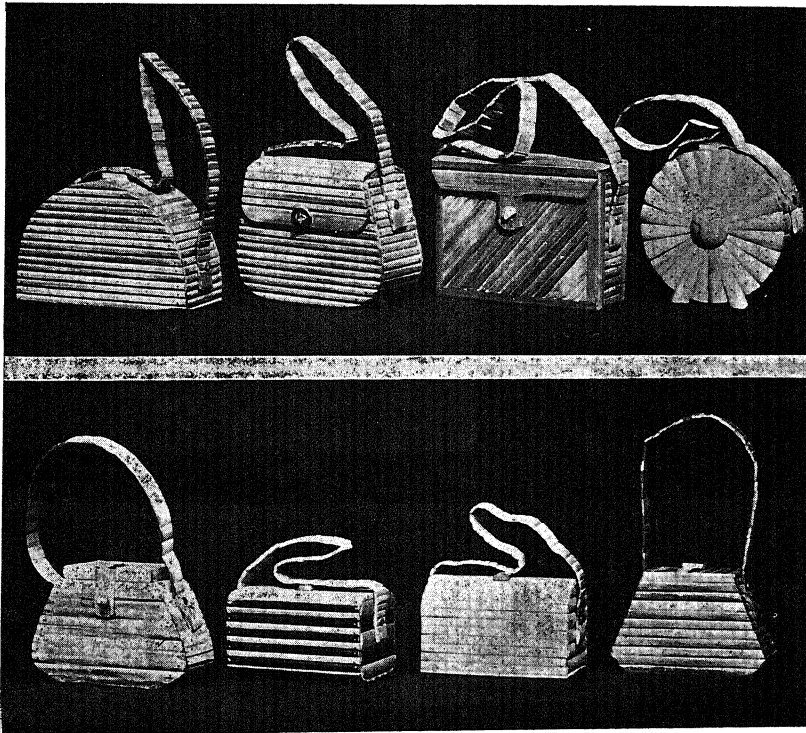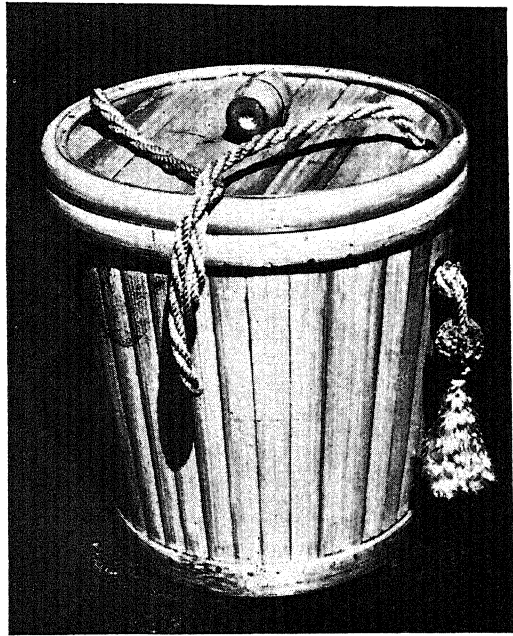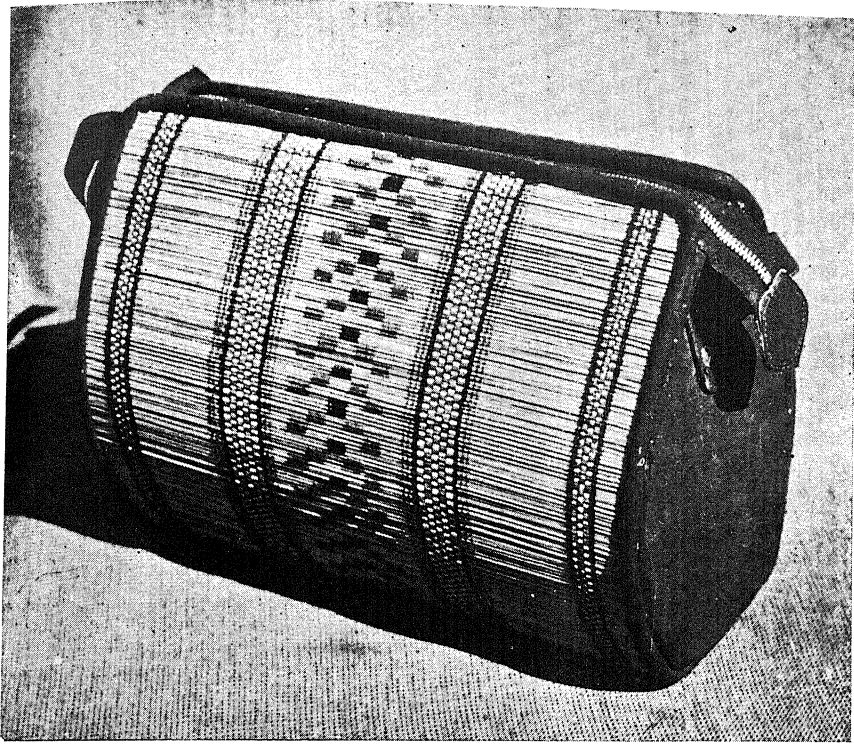
ऊपर : पतली कमचियों से बना हैण्डबैग

नीचे : मोटी कमचियों से बना हैण्डबैग
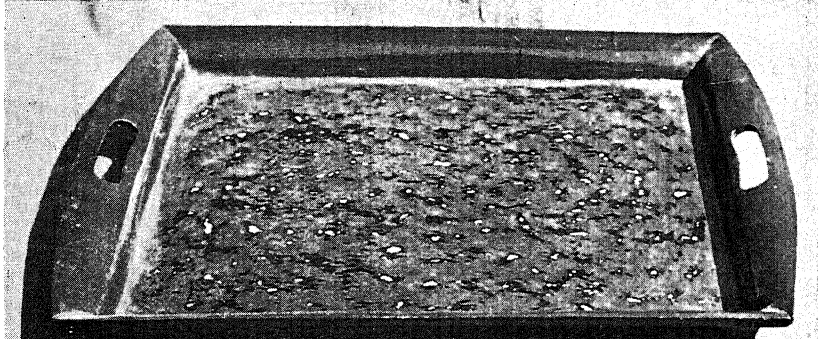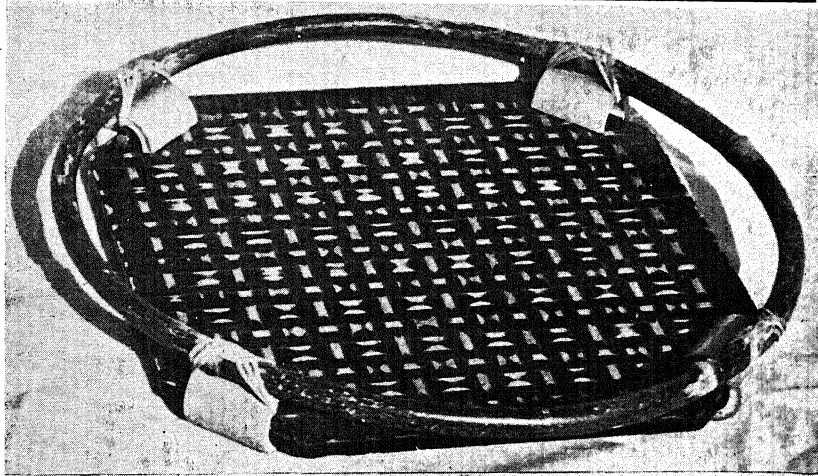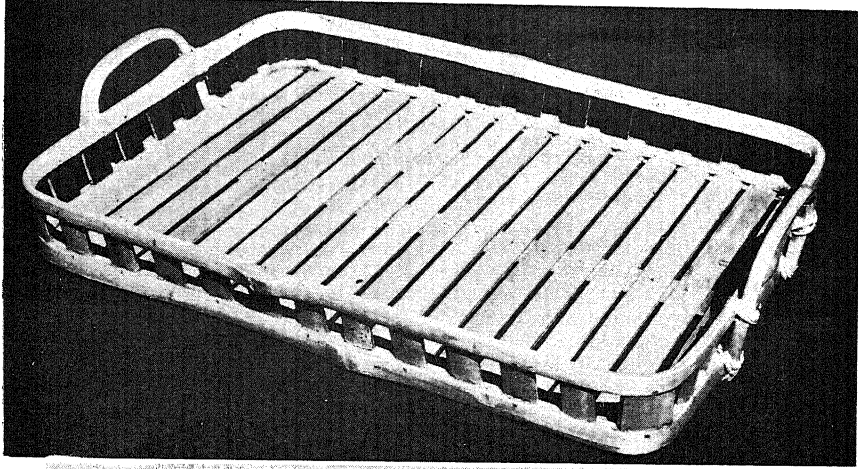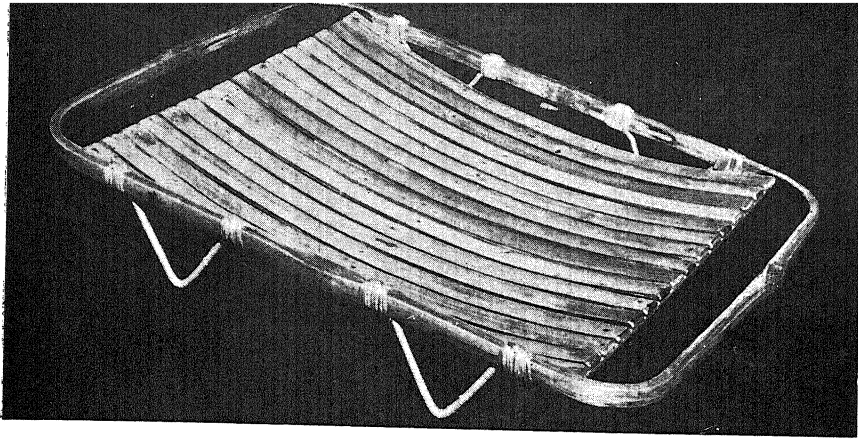
वेणु-शिल्प : फलक २०

१. फल रखने का ट्रे
२. फल रखने का अन्य प्रकार का ट्रे
३. चाय आदि परिवेषण के काम में आनेवाला ट्रे

वेणु-शिल्प : फलक २१
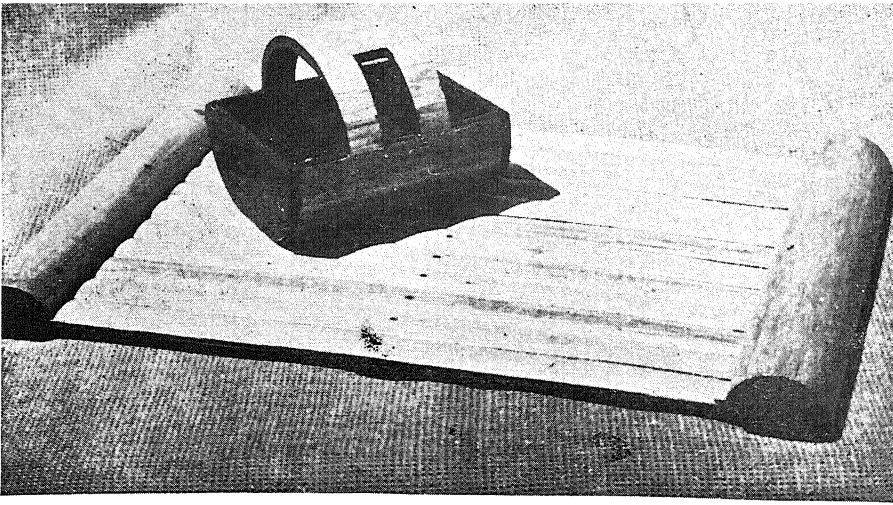
सिगरेट केस,
राखदानी
के साथ
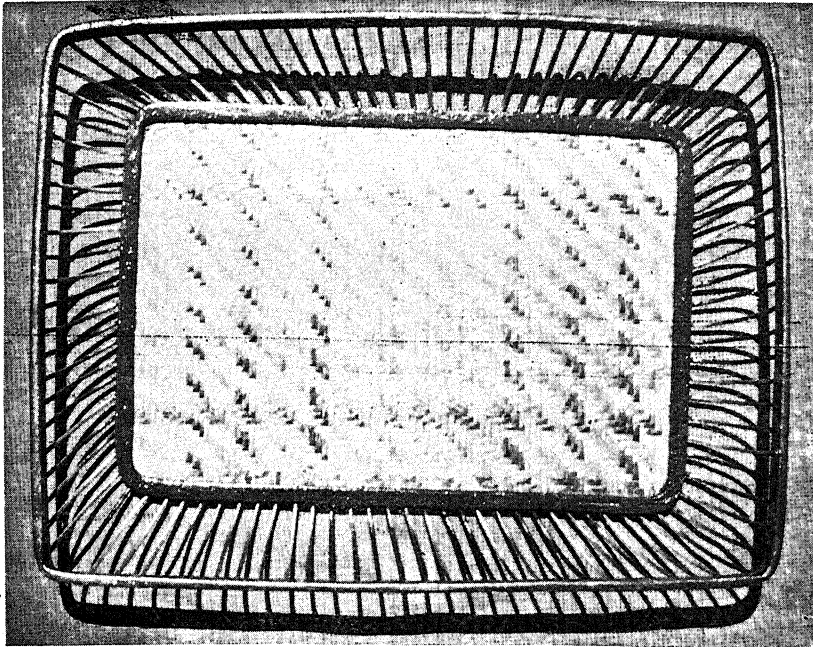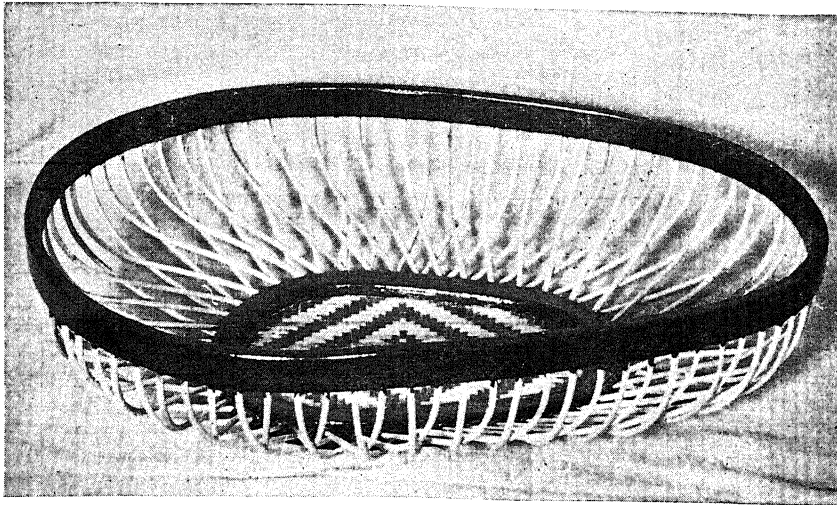
फल इत्यादि रखने
वाली डलिया के
दो नमूने
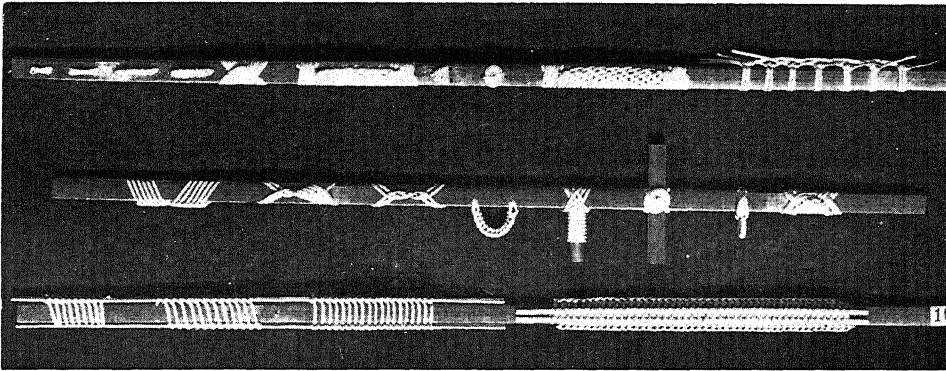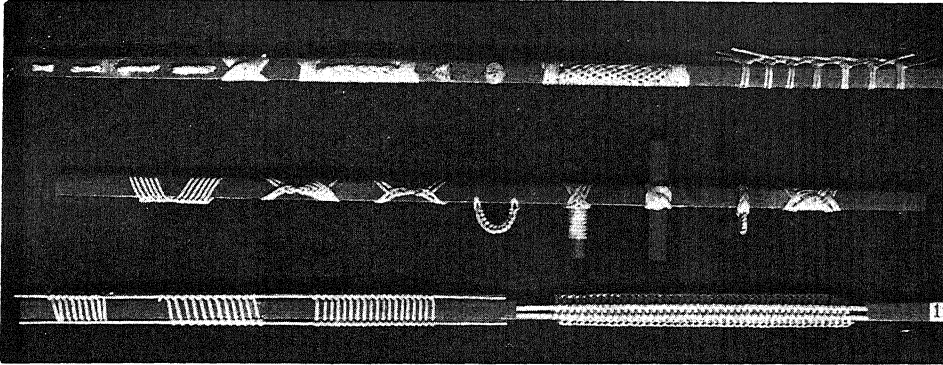
ऊपर : बाँस के खरादे हुए गिलास के कुछ नमूने

नीचे : बाँस से बननेवाले सामानों के किनारे भाग की विभिन्न बुनावट के कुछ नमूने
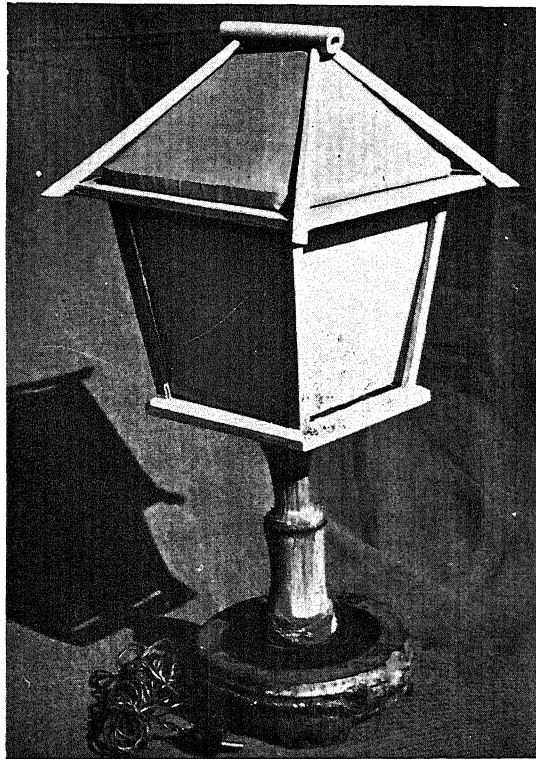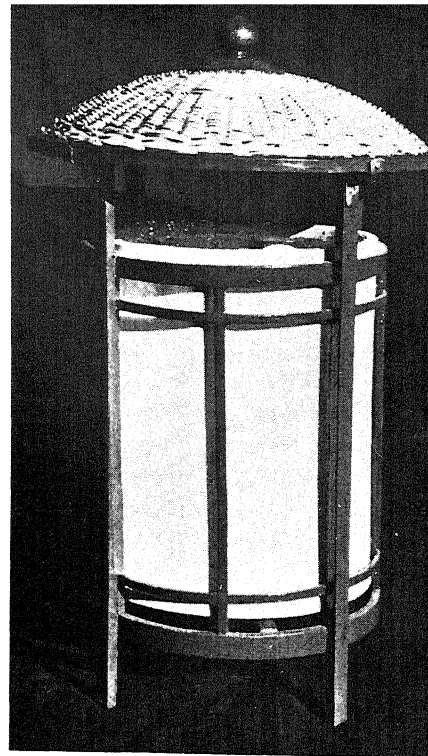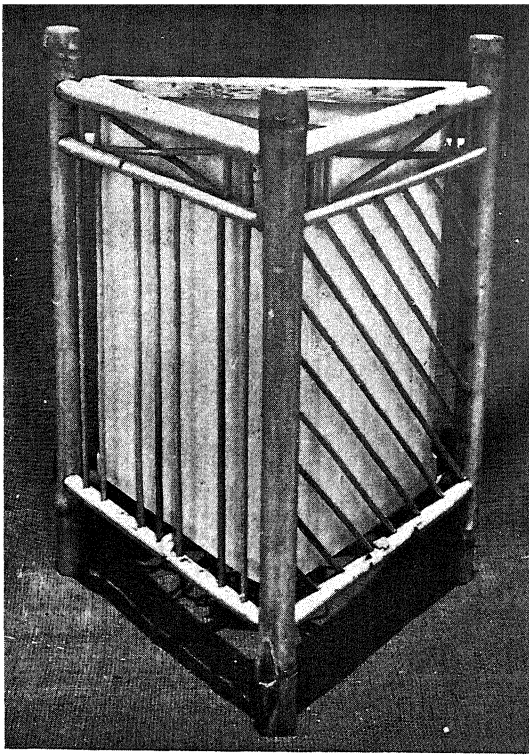
विभिन्न बनावट के तीन
टेबुल-लैम्प

वेणु-शिल्प : फलक २४
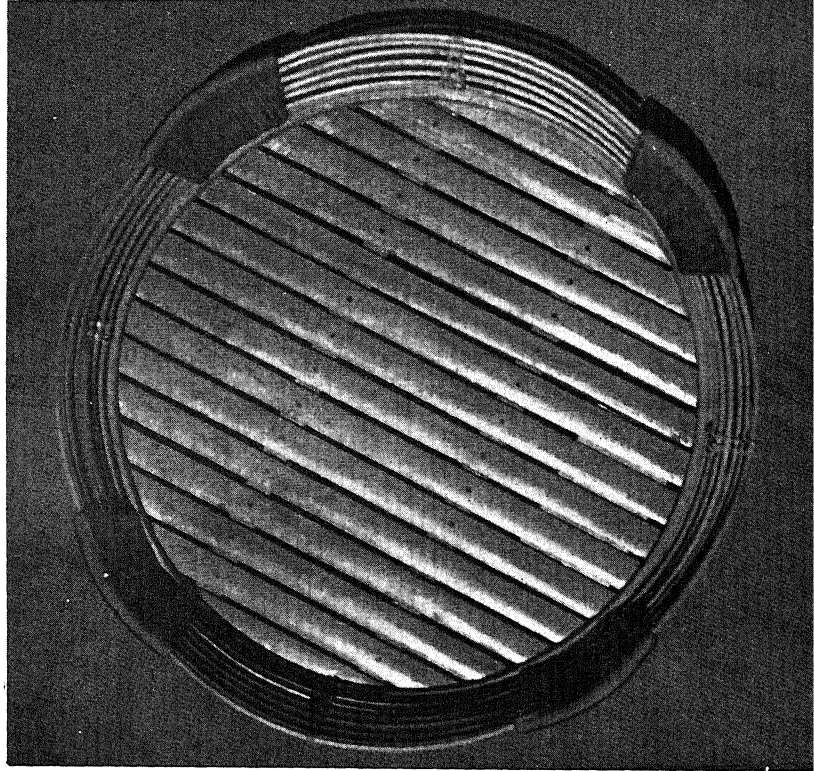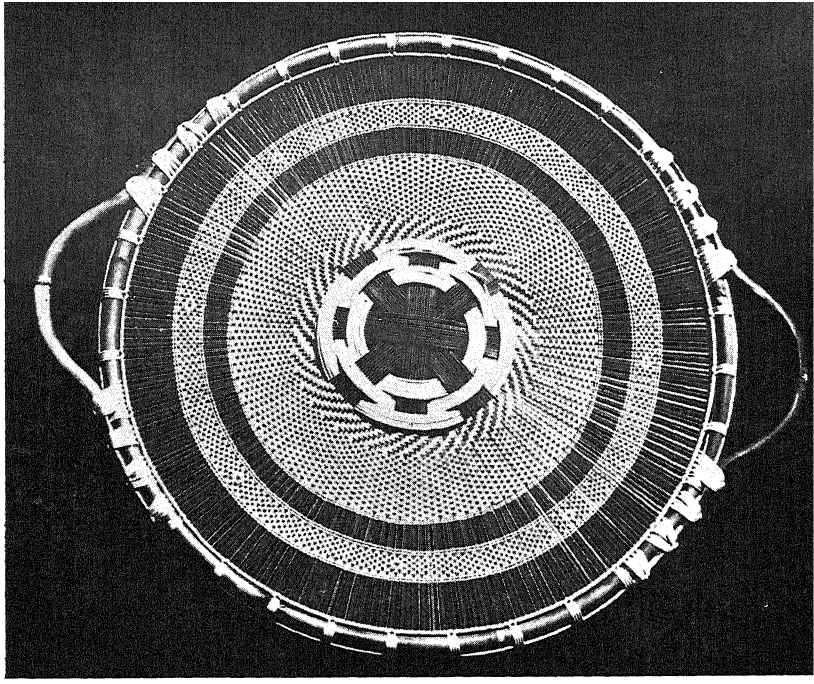
ऊपर : सर्वोत्कृष्ट वेणु-शिल्प का नमूना, जिसे ट्रे के काम में लाया जाता है। इसे लेखक ने जापान में अपने हाथों से बनाया था।

नीचे : उत्कृष्ट वेणु-शिल्प का दूसरा नमूना, जिसका निर्माण केवल बाँस की मोटी फट्टियों से हुआ है। इसे ट्रे के काम में लाया जाता है।
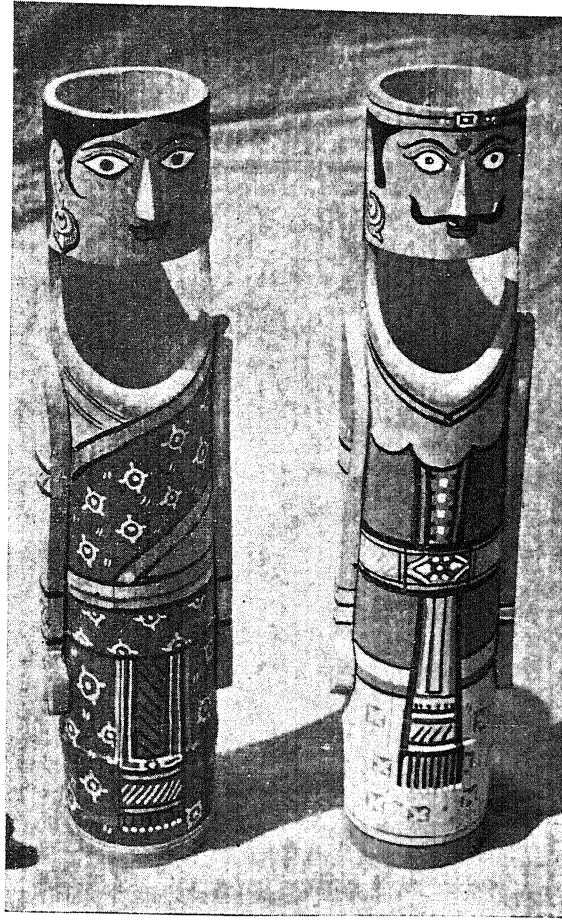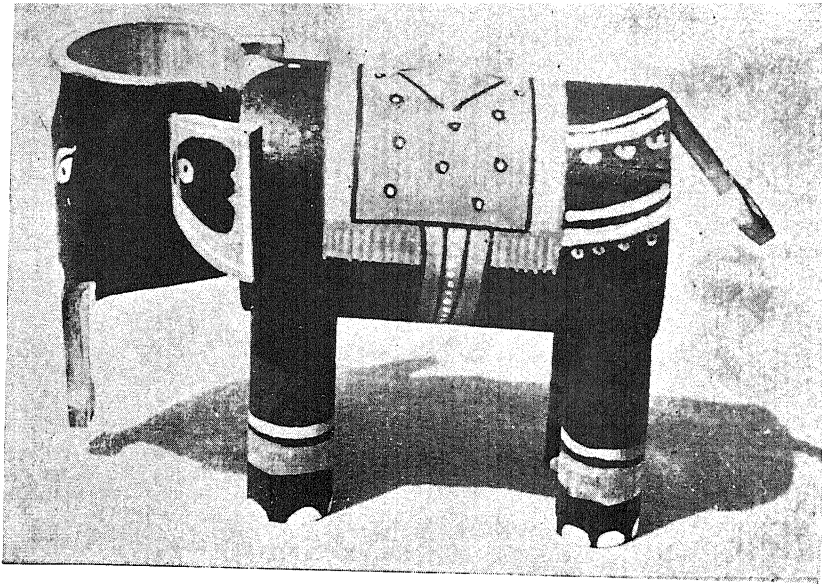
बाँस के बने खिलौने के कुछ नमूने

वेणु-शिल्प : फलक २६
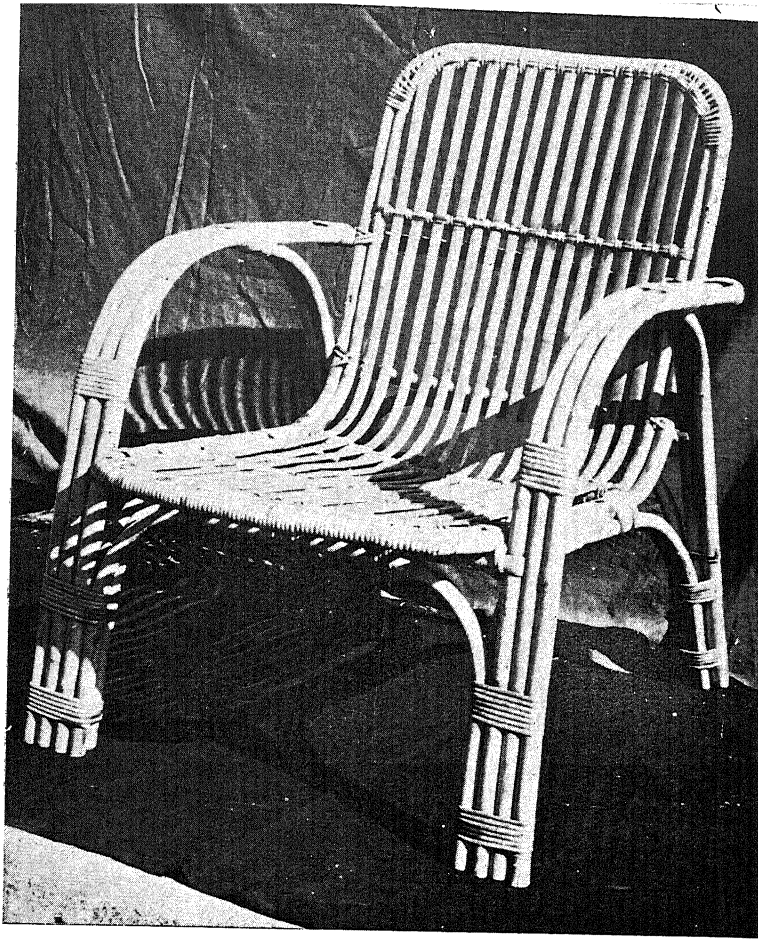
लेखक द्वारा निर्मित केवल
बाँस के समानों से बनी
टेबुल और कुर्सी
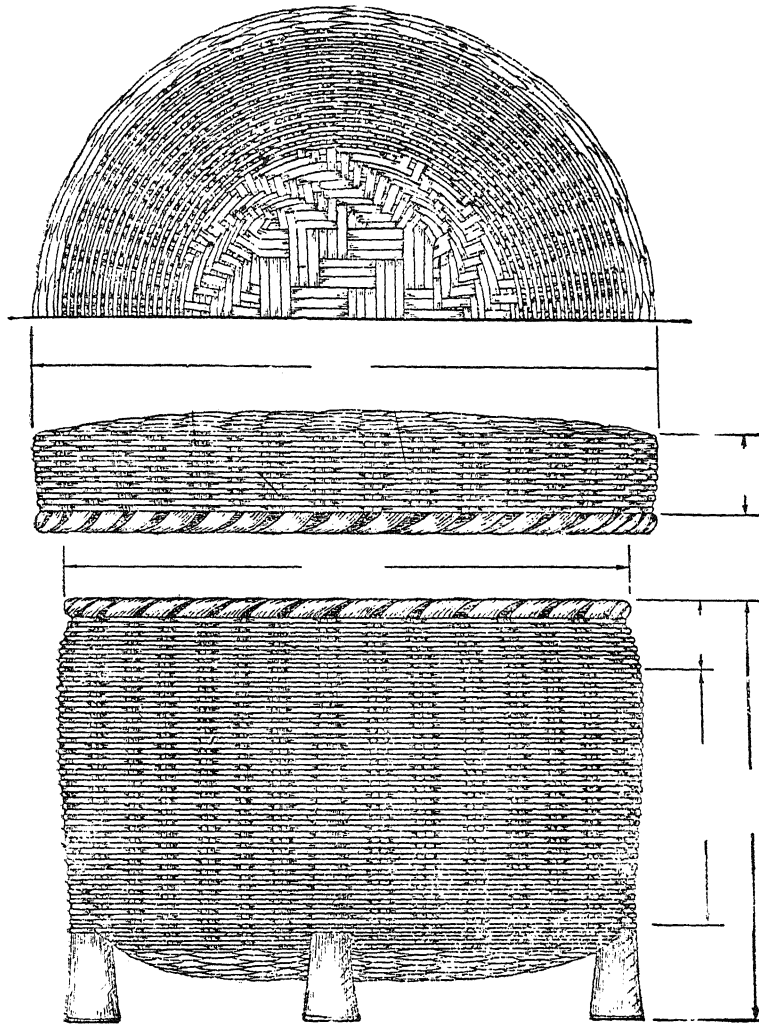
पुस्तक रखने की पेटी का नमूना

वक्तव्य

बिहार-सरकार द्वारा संस्थापित और संचालित बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के तत्त्वावधान में प्रति वर्ष अधिकारी विद्वानों द्वारा अपने शोधविषयक साहित्य पर भाषणमाला का आयोजन किया जाता है। तदुपरान्त वे भाषणमालाएँ पुस्तकाकार प्रकाशित होती हैं। परिषद् का यह परम सौभाग्य है कि अपने जीवन के प्रारम्भ-काल से ही उसे भारत के मूर्धन्य विद्वानों का हार्दिक सहयोग और मङ्गलमय आशीर्वाद प्राप्त है। प्रस्तुत 'वेणु-शिल्प' उसी प्रकार की भाषणमाला का एक ग्रन्थ-रूप है।

भारत-प्रसिद्ध चित्रकार श्रीउपेन्द्र महारथी ने गत १९५७ ईसवी में वेणु-शिल्प में विशेष शिक्षा प्राप्त करने के लिए जापान की यात्रा की थी। डेढ़-पौने दो साल तक वहाँ के विभिन्न कला-संस्थानों में घूम-घूमकर शिक्षा प्राप्त कर वे पटना लौट आये। परिषद् के आद्य संचालक आचार्य श्रीशिवपूजन सहाय ने वेणु-शिल्प पर भाषण देने के लिए उन्हें आमंत्रित किया। श्रीमहारथीजी ने प्रसन्नतापूर्वक उनका आमंत्रण स्वीकार किया। परिणामस्वरूप, मार्च १९५९ ईसवी में, कदमकुआँ-स्थित बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-भवन में वेणु-शिल्प-सम्बन्धी एक बृहत् प्रदर्शनी खोल कर, अपने भाषणों से श्रीमहारथी ने कई दिनों तक श्रोताओं और दर्शकों को आश्चर्यान्वित, आनन्दित और आप्यायित किया। बाँस-जैसी साधारण-सी दीख पड़नेवाली वस्तु से कैसी-कैसी आश्चर्य-जनक, नेत्ररंजक और मनोमोहक सामग्री तैयार की जा सकती है, देखते ही बनता था। श्रीमहारथी ने ज्ञान और आनन्द का एक नया संसार ही रच दिया है और निश्चय ही यह इस विशिष्ट विषय पर हिन्दी क्या, किसी भी भाषा में पहली पुस्तक है। उनकी भाषणमाला को आज पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर सर्वसाधारण पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हमें परम आह्लाद हो रहा है।

शिल्पशास्त्री श्रीमहारथी ने अपने जन्म से जहाँ उत्कल-प्रदेश को गौरवान्वित किया है, वहाँ उन्होंने बिहार को अपना कार्यक्षेत्र चुनकर यशस्वी किया है। वे भारत-प्रसिद्ध कलाकारों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। बिहार में चित्रकला के पिछले तीस साल में जो उन्नयन और विकास हुए हैं, उनमें श्रीमहारथी का प्रमुख हाथ है। इधर कई साल से वे बिहार-सरकार के कुटीर-शिल्प-संस्थान के उच्च पदाधिकारी हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में वेणु-शिल्प पर जिस रूप में विवेचन किया गया है और अपने विवेचन को स्पष्ट करने के लिए लेखक ने जिन उपयोगी चित्रों का सहारा लिया है, वे सारे चित्र उनकी अपनी देखरेख में बनाये गये हैं। कुछ बहुमूल्य आर्ट प्लेट उनके द्वारा उपलब्ध

किये गये हैं, जिनका यहाँ सन्निवेश किया गया है। हमें प्रसन्नता है कि इस पुस्तक के सजाने-सँवारने में भी उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इसे आकर्षक बनाया है।

इस ग्रन्थ की उत्तमता और उपादेयता के मूल्यांकन का भार हम सुधी पाठकों पर छोड़ते हैं। हम इतना ही कहेंगे कि कला में उपयोगिता और सुन्दरता का ऐसा मणि-कांचन योग सर्वथा विरल है। लेखक ने यथास्थान अपनी विशद प्रस्तावना और विषय-प्रवेश में इसकी महत्ता सिद्ध कर दी है। इस पुस्तक से वेणु-शिल्प-जिज्ञासु पाठक निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे।

श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने इस पुस्तक का 'आमुख' लिखकर इसका जो शृंगार किया है, उसके लिए हम उनका आभार स्वीकार करते हैं। स्वयं यह आमुख ही इस पुस्तक में वर्णित वेणु-कला की सम्भावनाओं एवं इस ग्रन्थ की मौलिकता पर 'सर्चलाइट' फेंकता है, और अपने आप में ही यह 'पूर्णमदः पूर्णमिदं' है। श्रीमती चट्टोपाध्याय ने अपना यह आमुख अँगरेजी में लिखा है, उसे ज्यों-का-त्यों हम दे रहे हैं और हिन्दी पाठकों के लाभार्थ उसका अनुवाद भी साथ-ही-साथ दे दिया गया है। हमारा विश्वास है, परिषद् के अन्य प्रकाशनों की तरह यह पुस्तक भी कला, संस्कृति एवं साधना के जिज्ञासुओं का मनस्तोष कर सकेगी।

संसार जानता है, श्रीमहारथी कूची, रंग और कल्पना के धनी हैं। इस ग्रन्थ ने उनका एक नया पहलू हमारे समक्ष उपस्थित किया और वह यह कि वे हृदय और लेखनी के और भी बड़े धनी हैं। कलाकार का यह परम मनोहारी शाब्दिक रूप इस ग्रन्थ में वस्तुतः निखर आया है।

दोल-पूर्णिमा, २०१७ वि०

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
संचालक

भारतीय कला और संस्कृति के प्रतिमूर्ति

एवं

मेरे गृह-शिल्प-कला के मार्ग-प्रदर्शक

श्रीसुधेन्द्रनाथ मजुमदार आइ० सी० एस्०

के

कर-कमलों में

सादर समर्पित

—महारथी

FOREWORD

Bamboo is one of the most luxuriant and decorative of nature's gifts to man. Somewhat like the cocoanut palm, it serves a variety of purposes. It adds beauty, lends coolness and shade to the grounds. Its shoots are eaten as delicacy, and used in medicine for their healing properties. As a whole it is used for a large variety of things from thatching a roof and covering the floor, to fashionable hand-bags, bowls and mugs and even furniture. In fact, its uses are infinite and at a pinch a whole household it seems can be fitted up by bamboo. Shri Maharathi has in this very valuable book not only described but illustrated elaborately yet lucidly through diagrams, the many uses to which this single tree can be put.

This book however is much more than a catalogue or ennumeration of items. He gives its very interesting historical background, especially its being closely woven in with Buddhism, its growth and with its wider ramifications, information which perhaps comes to many for the first time. This however reassures us that bamboo has

been an honoured tree in this country before the sophisticated Japanese bamboos got introduced to us from that far off land. In fact, bamboo chips like pith have long been in use for decoration and prove in effect that they have almost the same delicacy and texture of the ivory at a glance.

Shri Maharathi places us under a deep debt of gratitude for his excellent treatise on the bamboo and its uses, especially his practical hints to enable whoever is interested and has the aptitude, to make many useful items. In highlighting the bamboo, he has done a distinctive service not only in popularising this multipurpose plant, but also in restoring to it its natural place of dignity and status of respect. I would commend this book for translation into as many languages as possible to provide a fine handbook on bamboo.

Kamaladevi Chattopadhyaya

प्राक्कथन

प्रकृति ने मानव की सुख-समृद्धि और साज-सज्जा के लिए जितने भी साधन दिये है, उनमें वेणु (बाँस) का स्थान सर्वोपरि है। लगभग नारियल के ही पेड़ के सदृश वेणु के भी अनेक उपयोग हैं। इससे धरती की शोभा और सुषमा बढ़ती है और यह उसे शीतलता तथा छाया प्रदान करता है। इसकी कोंपल सुस्वादु होती है और लोग सुरुचि के साथ खाते हैं। इसके आरोग्यप्रद गुणों के कारण इसका उपयोग औषधि के रूप में भी होता है। सारांश यह कि यह छप्पर, छाजन और चटाई से लेकर आकर्षक हाथ बैग (झोला या बटुआ), प्याला, झारी (गड़ुआ) तथा उपस्कर (खाट, चौकी, कुर्सी, मेज इत्यादि) तक निर्मित करने के काम में व्यवहृत होता है। वास्तव में इसके उपयोग अनगिनत हैं। संक्षेप में यह कि गृहस्थी का सारा घर वेणु के विविध उपादानों से सजाया जा सकता है। महारथीजी ने इस बहुमूल्य पुस्तक में केवल वेणु के अनेक उपयोगों का ही वर्णन नहीं किया है, अपितु विस्तार के साथ, स्पष्टतापूर्वक, अपने चित्रों के सहारे, उनको अच्छी तरह समझाया भी है।

यह पुस्तक केवल उपयोग-विधियों का सूची-मात्र अथवा उनकी गणना करानेवाली ही नहीं है, प्रत्युत लेखक ने इसमें वेणु के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की अनेक रोचक बातें भी बतलाई हैं। विशेषतः बौद्धधर्म से वेणुशिल्प के घनिष्ठ सम्बन्ध और इसके विकास तथा विस्तृत उपयोग-वैविध्य पर भी प्रकाश डाला है। वेणु के सम्बन्ध में उन्होंने जो ज्ञातव्य विवरण प्रस्तुत किये हैं, वे बहुतों के लिए तो संभवतः बिलकुल ही नये होंगे। इस प्रकार यह निश्चित बात है कि सुदूरवर्ती जापान से वेणु-निर्मित दिखाऊ वस्तुओं के हमारे देश में प्रचलित होने के पूर्व से ही भारत में वेणु एक सर्वमान्य वनस्पति

रहा है। वास्तव में, सजावट के निमित्त लोहे की पतीलियों के समान वेणु की कमचियों का व्यवहार बहुत दिनों से होता आ रहा है। रचना की दृढता और लालित्य की दृष्टि से तो वेणुशिल्प हाथी-दाँत के बने शिल्प-जैसा ही प्रतीत होता है।

वेणु तथा इसकी उपयोगी प्रणालियों से समृद्ध-संवलित इस सर्वोत्कृष्ट कृति के कारण हमलोग श्रीमहारथीजी के प्रति अत्यन्त आभारी हैं। विशेषकर उन्होंने इस पुस्तक में वेणु के उपयोग के जो व्यावहारिक संकेत प्रस्तुत किये हैं, उनसे इस क्षेत्र में काम करने एवं रुचि रखनेवाले लोग इसका विविध भाँति से उपयोग करके बहुत अधिक लाभान्वित होंगे। वेणु के महत्त्व को प्रकाश में लाने में उन्होंने केवल विविध उपयोगों में आनेवाली इस अतिशय महत्त्वपूर्ण वनस्पति को लोकप्रिय बनाकर ही नहीं, अपितु इसकी प्रतिष्ठा एवं सर्वमान्यता की मर्यादा को पुनरुज्जीवित करके एक विशिष्ट सेवा-कार्य सम्पन्न किया है। मेरा यह अनुरोध है कि इस पुस्तक का अनुवाद यथासम्भव अनेकानेक भाषाओं में हो, ताकि वेणु से संबद्ध यह सुन्दर पुस्तक अधिकाधिक लोगों को सुलभ हो सके।

—कमलादेवी चट्टोपाध्याय

OPINION

I have known Sri Maharathi and his work as an artist, designor, decorator, and craftsman since I first came in contact with him in 1952 when I was Governor in Bihar (1952-57). He is a rare type. His love of art is something enviable. But I did not suspect that he would develop into a good author on a subject which was not directly his own.

He turned to full use his visit to Japan and applied himself to bamboo-craft like a devoted student. This book seems to be the fruit of his deep and single-minded study of the craft in Japan and his subsequent experiments in India.

The book bids to be a complete Text-Book on the subject both on the theoretical and practical side and also on the culture of this kingly grass of our rich forests. I hope that it would prove useful to every one who is interested in the development of the craft and that a full translation or an abridged version of it would soon appear in the different languages of India.

R. R. DIWAKAR
Chairman
Gandhi National Memorial Fund

RAJGHAT, NEW DELHI-1

सम्मति

मैं श्रीमहारथी और उनके कार्यों से भली भाँति परिचित हूँ। ये एक अच्छे कलाकार, परिकल्पक, प्रसाधक तथा शिल्पकार हैं। सन् १९५२ ई० में पहली बार मैं इनके सम्पर्क में आया। उस समय (१९५२-५७) मैं बिहार का राज्यपाल था। ऐसे व्यक्ति विरल हैं। कला के प्रति इनका अनुराग स्पृहणीय है। परन्तु, मैं सोच नहीं सकता था कि ये एक ऐसे विषय का निष्णात लेखक भी हो सकते हैं, जिससे इनका सीधा संबंध नहीं है।

इन्होंने एक श्रद्धावान् विद्यार्थी के रूप में वेणु-शिल्प में अपने-आपको खपाकर अपनी जापान-यात्रा को पूर्णरूपेण सफल बनाया है। प्रस्तुत पुस्तक, इनके जापान-प्रवास के समय उक्त शिल्प के गंभीर एवं एकनिष्ठ अध्ययन, तत्पश्चात् भारतवर्ष में उसके प्रयोग का प्रतिफलन प्रतीत होती है।

सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक, दोनों ही दृष्टियों से यह अपने विषय का सर्वथा मौलिक ग्रंथ है। हमारे समृद्ध वनों में उत्पन्न इस वनस्पतिराज वेणु के परम्परागत विविध उपयोगों पर भी अपने ढंग की यह एक ही पुस्तक है। हमें विश्वास है कि इस शिल्प के विकास में अभिरुचि रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। पूरी पुस्तक का अथवा इसके संक्षिप्तीकरण का अनुवाद भारतवर्ष की विभिन्न भाषाओं में प्रस्तुत होगा, ऐसी आशा है।

आर० आर० दिवाकर
(भूतपूर्व राज्यपाल, बिहार)
अध्यक्ष, गांधी-स्मारक-निधि

केन्द्रीय कार्यालय : राजघाट,
नई दिल्ली-१

विषयानुक्रमणी

लेखक जापान में एक प्रख्यात वेणु-शिल्पी से
उत्कृष्ट वस्तुओं के निर्माण की शिक्षा प्राप्त करते हुए।

प्रस्तावना

हस्तशिल्पों का विकास किस काल में हुआ, यह ठीक-ठीक बताना कठिन है। किन्तु, प्राणिशास्त्रवेत्ताओं और समाजशास्त्रियों की राय में मानव के विकास में उसके हाथों और अँगुलियों की देन सर्वोपरि है। मनुष्य ने अपने विकास के क्रम में हिमयुग की आर्द्रता से बचने के लिए सर्वप्रथम पहाड़ों की गुफाओं को अपना घर बनाया होगा और जीवन-रक्षा के लिए जानवरों का शिकार कर एवं फलमूल को तोड़-खोदकर अपने पेट की समस्या हल की होगी। अपनेसे बलवान् वन्य पशुओं का सामना करने के लिए तथा आखेट की सुविधा के लिए भी उसने उस समय पत्थर तथा हड्डी के कठोर टुकड़ों का प्रहरण के रूप में प्रयोग करना भी सीखा। इस प्रकार अपने अध्यवसाय, बुद्धि और अनुभव के उपयोग से उसने प्रकृति के अद्भुत रूपों और अपने सहचर प्राणियों पर भी प्रभुता स्थापित करने का उपक्रम किया, जिसमें उसके हाथों का ही वैशिष्ट्य प्रमुख रहा।

भूगर्भ ने प्रमाणित कर दिया है कि आदिम मनुष्य के प्रारंभिक हथियार पत्थर और हड्डी के थे। सादे पत्थर के अनगढ़ टुकड़े ही उस समय हथियार के काम में लाये गये थे। कालक्रम से मनुष्य ने फिर अपने हाथों के सहारे पत्थरों से हथियारों का गढ़ना भी सीख लिया। पत्थरों की गढ़ाई में वह उस समय निपुण नहीं हो सका था, अतः घने जंगलों में जाकर और दुर्गम पर्वतों पर चढ़कर दूसरे पत्थरों को काटना और उससे अच्छे हथियारों का बनाना उसके लिए कठिन था। लेकिन हाथों से हथियारों एवं उपकरणों का प्रयोग कर वह जीवन-यापन में समस्त प्राणियों का अग्रणी बन गया। शारीरिक और पाशविक बल में दूसरे-दूसरे प्राणियों से कम होते हुए भी वह शस्त्र चलाकर बड़े-से-बड़े जीवों पर विजयी हुआ। इस प्रकार, आदिम मनुष्य का इतिहास उसके हाथ और उसकी बुद्धि की कुशलता पर आधारित समाज के विकास का इतिहास स्वीकृत प्रतीत होता है। उन सारी घटनाओं की समीक्षा करने पर ऐसा कहा जा सकता है कि शिल्पों के विकास का यही आदिम इतिहास हो सकता है।

अपने ज्ञान के प्रथम चरण में मनुष्य ने पेट की समस्या के लिए, जंगलों की देखा-देखी, अपने आवास-स्थान के आसपास फूलों और फलों के पेड़ों को भी लगाना सीखा। एक स्थान पर रहने में जब उसने आराम का अनुभव किया, तब इसके साथ-साथ फूलों और फलों का लाभ देखकर अन्यान्य पौधों की उपयोगिता भी समझी। इससे उसकी मनोवृत्ति जिज्ञासु बनी और फलाफल के आधार पर कृषि का आरम्भ हुआ। उसीसे सभ्यता का उदय हुआ। समूहों, उप-समूहों में बँध जाने से गाँव, जनपद आदि की रूपरेखा सामने आई। सामूहिक व्यवस्था के लिए समाज का गठन हुआ। सामाजिक जीवन को संगठित करने के लिए

नई-नई आवश्यकताएँ आती गईं और हर आवश्यकता को पूरा करने के लिए नई-नई चीजों का निर्माण होने लगा। कृषि-कार्य में दिन-प्रतिदिन प्रगति होती गई और साथ-साथ कृषि-कार्य के लिए आवश्यक चीजों का भी आविष्कार होने लगा। प्रकृति मनुष्य के सामने सहायिका के रूप में अब खड़ी हुई। समाज-व्यवस्था के सिलसिले में एक जगह स्थायी रूप से वास करने के कारण गृह-निर्माण की ओर भी उसका ध्यान गया। जहाँ अच्छे औजार के अभाव में किसी भी वस्तु को सुन्दर रूपरेखा देना मनुष्य के लिए असंभव जान पड़ा था, वहाँ अब खोज के आधार पर धातु के हथियार बनने लगे। उन हथियारों के द्वारा प्रत्येक चीज में सुन्दरता का रूप-निरूपण करना भी उसके लिए अब सहज हो गया। उन धातु-निर्मित हथियारों के द्वारा बनी प्रत्येक चीज में सादगी के साथ अपूर्व भव्यता प्रस्फुटित होने लगी। गृह-निर्माण और कृषि-कार्य में भी उन चीजों का उपयोग बराबर होने लगा। आवश्यकता के अनुसार नये-नये औजार बनाने की दिशा में मनुष्य की खोज जारी रही, जिससे उसमें बौद्धिक विकास का क्रम बढ़ता गया और आशातीत प्रगति होती रही।

सुतराम्, उस समय उन औजारों की प्राप्ति प्राकृतिक कच्चे सामानों से हुई, जो सहज सुलभ थे और जो उन औजारों के लिए आसान थे। नाना वृक्षों, वनस्पतियों, प्रस्तर आदि की प्राप्ति के क्रम में सबसे आसान उसे बाँस मिला। बाँस की बनावट सीधी होने के कारण वह उनकी कमचियाँ सरलतापूर्वक काट लेता था, और आसानी से उनका व्यवहार कर लिया करता था। गाँठ या गिरह को छोड़कर बाँस के पोर की बनावट में प्रकृति-दत्त सुन्दरता और चिकनापन होने के कारण मामूली औजारों से मजे में काम चल जाता था। सच तो यह है कि जिस समय धातु की उपादेयता सामने नहीं आई थी एवं धातु-निर्मित बरतनों का चलन नहीं हुआ था, उस समय एकमात्र बाँस ही उसके सभी तरह की आवश्यकताओं की पूर्त्ति करने का संबल था। धातु से सामान आविष्कृत होने तक बाँस से बने जलपात्र, तेल रखने के पात्र, धान आदि अन्नों को मापने के बरतन आदि वस्तुएँ काम में लाई जाती थीं। बाँस में सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसको किसी औजार विशेष से खोखला बनाने की आवश्यकता नहीं होती थी। उसके लिए बाँस में स्वतः वे सब चिह्न मिले थे, जिनकी उसे प्रतिदिन जरूरत पड़ती थी।

ऊपर के विवेचन से यह प्रतीत होता है कि प्रागैतिहासिक सभ्यता से भी बहुत पहले मनुष्य जब सम्पूर्ण रूप से सुशिक्षित नहीं हो पाया था, तभी उसका सम्बन्ध बाँस से स्थापित हुआ। जंगलों में घुमन्तू जीवन व्यतीत करने की अवस्था में जब कभी उसके सामने कठिनाइयाँ आती होंगी और प्राकृतिक कठिनाइयों के समाधान में सफलता मिल जाती होगी, तब उसे ही वह अपनी आत्मरक्षा के साधन भी समझ लेता होगा। इस क्रम में बाँस की प्राकृतिक विशेषताओं के सूक्ष्म निरीक्षण और परीक्षण ने मनुष्य को अपनी ओर आकृष्ट करने में सफलता पाई। बाँस भीषण आँधी के झकोरों में भी उखड़ता और टूटता नहीं था, वह केवल झुककर रह जाता था। बाँस में ऐसा स्वाभाविक गुण देखकर ही मनुष्य ने बाँस के लचीलेपन के वैशिष्ट्य को समझा। साथ ही

उसे बाँस के सम्बन्ध में ऐसी चेतना आई कि बाँस में दृढता है, मजबूती है और लचीलापन भी है। उसे इच्छानुसार सीधा और टेढ़ा किया जा सकता है। इन्हीं भावनाओं को मनुष्य ने जब क्रियात्मक रूप दिया, तब उसने जीवन के विभिन्न कार्यों में उसे सहायक जानकर उसकी उपयोगिता पर विश्वास कर लिया। उपयोगिता की दृष्टि से डंडा, धनुष, तीर और तरकस का निर्माण बाँस का प्रथम और महत्त्वपूर्ण कार्य रहा होगा। यह कार्य प्रस्तर और लौह-युग में ही सम्पादित हुआ होगा। इसलिए कि प्रस्तर और लौह-युगों में जंगली जानवरों से रक्षित होने के लिए कुछ औजारों का निर्माण हो चुका था और अविकसित रूप में मनुष्य कुछ कृषि-कार्य भी करने लग गया था। उन्हीं औजारों में से कुल्हाड़ी या डाल काटनेवाले हथियार भी उसके सामने आये और उनका उपयोग मनुष्य ने अन्यान्य वृक्षों या पौधों की तरह बाँस पर भी किया।

धनुष और बाण का निर्माण हो जाने के बाद एक साथ कई बाणों को लेकर चलने की समस्या भी उसके सामने आई होगी। इसके लिए बाँस के खोखलेपन पर उसका ध्यान गया। इससे एक साथ कई बाण रखने की समस्या स्वतः हल हो गई। कई पोरों का बाँस काट कर उसमें बाण रखना उसने सीखा। वही बाद में तरकस नाम से प्रचलित हुआ। अब मनुष्य इच्छानुसार बाणों को तरकस में रख और उसे पीठ पर बाँधकर एवं धनुष को कन्धे पर डाल कर घने जंगलों में निर्भीक विचरण करने लगा।

जनपदों के विकास के कारण और गृहस्थी में स्थिरता आ जाने पर मानव को दिन-प्रतिदिन विविध सामानों की आवश्यकता भी पड़ी। इस काम में भी बाँस उसके लिए सबसे ज्यादा व्यावहारिक प्रमाणित हुआ। यह छप्पर और टाटी बनाने के काम में भली भाँति आने लगा। इतना ही नहीं, नदियों को पार करने के लिए भी मनुष्य बाँसों का बेड़ा बना लेता था और सुविधापूर्वक नदी-संतरण कर जाता था। पशुओं के बाँधने के खूँटे, अन्नों के रखने की कोठी, दीवार में लगाने की टाटी, पशुओं से फसलों को बचाने के लिए घेरे के बाड़े, पशुशालाओं के द्वार के बाड़े, पिटारी, सूप, चलनी, सीढ़ी, मचान आदि बनाने में बाँस मनुष्य के लिए वरदान रूप में मिला।

यद्यपि इन शिल्पों की प्राचीनता भू-खनन आदि से प्राप्त होनेवाले सामानों से सिद्ध नहीं है; तथापि जो अन्य शिल्प-सामग्री प्राप्त हुई हैं, वे ही प्रमाणित करती हैं कि उनसे भी अधिक वेणु-शिल्प प्राचीन है; क्योंकि मनुष्य के विकास का इतिहास बतलाता है कि अन्य हस्तशिल्पों से कम प्राचीन वेणु-शिल्प नहीं हो सकता। यह सभी जानते हैं कि वेणु-शिल्प, मृण्मय-शिल्प और प्रस्तर-शिल्प की तरह, अतिकाल तक टिकनेवाला शिल्प नहीं है, जो हमें भूगर्भ से प्राप्त हो! फिर भी हमारे पास जो प्राचीन-से-प्राचीन ग्रन्थ हैं, वे बतलाते हैं कि वेणु और वेणु-शिल्प से मनुष्य का आदिम सम्बन्ध रहा है और मानव के विकास में वेणु का सहयोग अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसके लिए मैंने ऊपर में मानव-विकास के क्रम में बाँस की उपयोगिता पर एक सरसरी निगाह डाली भी है। इसके अतिरिक्त हमारे ग्रन्थों ने वेणु और वेणु-शिल्प के साहचर्य पर जो प्रकाश डाला है, उसपर भी यहाँ एक विहंगम दृष्टि दौड़ाना चाहूँगा, जिसमें आप देखेंगे कि वेणु-शिल्प भारत का कितना प्राचीन शिल्प है और इसकी व्यापकता कितनी बड़ी है।

हमारा आदि-साहित्य ऋग्वेद है। उससे प्राचीन सभ्यता अभी हमें प्राप्त नहीं हो सकी है। ऋग्वेद का साहित्य कई हजार वर्षों का है, जिसमें अनेक शिल्पों के साथ वेणु-शिल्प की भी चर्चा है। ऋग्वेद ६, ४७, २६ और १०, १०२, २ में चर्म-उद्योग; १०, २६, ६ और २, ३, ६ में वस्त्र और ऊन-उद्योग की चर्चा है। १०, १०६, १ में तन्तुवाय जाति का उल्लेख है। इसी तरह स्वर्ण-शिल्प की चर्चा ५, ५८, ३; ५, ५३, ४ और ८, ४७, १५ में मिलती है। ऋग्वेद में ही वास्तु-शिल्प का वर्णन भी ७, ८८, ५; १, ११६, ८; ७ ३, ७ और ७, १५, १४ में मिलता है। पायेदार और दो-तल्ले मकान का उल्लेख हमें २, ५, ६ और ५, ६२, ६ में प्राप्त होता है, जिसमें बाँसों का उपयोग अवश्य होता होगा। पिंजड़ा बनाने का शिल्प भी ऋग्वेद-काल में विकसित था, जिसका उल्लेख १०, २८, १० में है। रथ-निर्माण की चर्चा ३, ६१, २ और १०, ८५, २ में प्राप्त होती है और १०, ३६, ४ में कहा गया है कि यहाँ का भृगुवंश रथ-निर्माण के शिल्प में सभी गोत्रों से आगे बढ़ा था। उस समय तक तलवार, भाले, फरसे से कहीं अधिक धनुष-निर्माण की विद्या में लोग निपुण हो चुके थे और धनुष-निर्माण इस बात का साक्षी है कि वेणु-शिल्प की कारीगरी की जानकारी ऋग्वेदकालीन जनता को अच्छी तरह थी। ऋग्वेद में अश्वत्थ, शमी, पलाश, शाल्मली, खदिर, शिंशपा, वट, उदुम्बर आदि वृक्षों के साथ वेणु-वनस्पति की भी चर्चा प्राप्त होती है और वेणु-वन की महत्ता हमारे ऋषियों को अच्छी तरह ज्ञात थी। इसीलिए हमारे ऋषि अन्य उपयोगी वस्तुओं के साथ वेणु-वन प्राप्त करने की भी कामना करते थे। मंत्र में 'कृशःकाण्व' ऋषि इन्द्र से याचना करते हैं—

शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्माणि म्लातानि।
शतं मे बल्वजस्तुका अरुषीणां चतुःशतम् ॥—ऋग्वेद ८, ५५, ३

अर्थात्—'सौ बाँसों की कोठियाँ, सौ कुत्ते, सैकड़ों बनाये गये चर्म, सैकड़ों मूँज-वन, और चार सौ उपजाऊ भूमि हमें प्राप्त हो।'

इन सबसे अधिक वेणु-शिल्प की चर्चा हमें ऋग्वेद के उस मंत्र में मिलती है, जहाँ सत्तू चालनेवाली चलनी की चर्चा है—

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥—ऋग्वेद १०, ७१, २

अर्थात्—'जिस तरह चलनी से सत्तू परिष्कृत किया जाता है, उसी तरह बुद्धिमान् लोग मन से वचन को परिष्कृत करते हैं।' चलनी बाँस की ही बनती थी। उपर्युक्त ऋचा हमारे वेणु-शिल्प के विकास को भली भाँति प्रमाणित कर देती है।

अथर्ववेद में भी वेणु (बाँस) और उसकी डालियों की चर्चा है। कामना है कि हमारे बहुत-से पाप रूपी शत्रु इस तरह फैले हैं, जैसे वाँस में डालियों का जाल फैला रहता है। पर वे सभी अनेक बच्चों की तरह हमारे ऊपर आघात करने में समर्थ न हों—

न बहवः समशकन्नार्भका अभिदाधृषुः।
वेणो रना इवाभितोऽसमृद्धा अघायवः ॥—१, २७, ३

वेदों के बाद हमें वेणु-शिल्प की चर्चा 'शतपथ ब्राह्मण' में मिलती है। यज्ञ-क्रियाओं के सम्पादन में शालाओं के निर्माण-हेतु बाँस का प्रयोग भली भाँति होता था—

तच्छालां वा व्विमितं वा प्प्राचीनं वंशमिन्न्वन्ति। ३, १, ६

अर्थात्—यज्ञशाला के निर्माण में पुराने पके बाँसों का ही वे व्यवहार करते थे और जिनसे यज्ञशाला सुदृढ बनाई जाती थी।

शतपथ का ही एक दूसरा मंत्र है, जिसमें कहा गया है कि उदीची दिशा में होनेवाले बाँसों से शाला का निर्माण करना चाहिए—

योदीची दिक् सा मनुष्याणां तस्मान्मानुष
उदीचीनवंशामेव शालां वा व्विमितं वा मिन्न्वन्ति। ३, १, ७

ऐतरेय ब्राह्मण के ३०वें अध्याय का छठा आह्निक तो शिल्प का प्रकरण ही है, जिसका पहला वाक्य है—

शिल्पानि शंसन्ति।

शिल्प के सम्बन्ध में ऐतरेय ब्राह्मण कहता है कि—

हस्ती कंसो वासो हिरण्यमश्वतरीरथः शिल्पम्।

उक्त वाक्य पर 'सायण' का भाष्य द्रष्टव्य है—

लोके शिल्पिनः कर्मकारा मृद्दार्वादिभिर्हस्तिसदृशमाकारं निर्मिमते। यथाऽन्यैः शिल्पिभिः कंसोदर्पणादिभिः कंसो दर्पणादि निर्मीयते। अपरैर्वासो विविधं निर्मीयते। अपरैः सुवर्णमयं कटकमुकुटादि निर्मीयते। अपरैश्चाश्वतरी रथो निर्मीयते। ××× नाभानेदिष्टादिशिल्पमाश्चर्य-करमिति निश्चेतव्यम्।

अर्थात्—शिल्पी मिट्टी और लकड़ी के हाथी बनाते हैं। कोई शिल्पी शीशे से दर्पण, कोई वस्त्र, कोई सोने आदि के कटक-मुकुट और कोई खच्चरों से खींचे जानेवाले रथों का निर्माण करते हैं। नाभानेदिष्ट आदि लोगों के शिल्प आश्चर्य में डालनेवाले होते हैं।

इससे पता चलता है कि आज से हजारों वर्ष पहले भारत में शिल्पियों की कला आश्चर्य-रूप में विकसित थी और भिन्न-भिन्न वर्ग के लोग एक-एक विशिष्ट शिल्प में दक्ष होते थे।

'मानवधर्मशास्त्र' भी वेणु-शिल्प की चर्चा करता है। उसमें ब्राह्मणों को विद्याध्ययन के समय जलसहित कमण्डलु और बाँस का दण्ड धारण करने को कहा गया है—

वैणवीं धारयेत् यष्टिं सोदकञ्च कमण्डलुम्।—मनु० ४, ३६

यह मनुस्मृति वेणु-शिल्पियों के एक अलग वर्ग की ही चर्चा करती है, जिससे ज्ञात होता है कि उस समय तक वेणु-शिल्पियों की अलग श्रेणी बन गई थी—

चाण्डालात् पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान्।
आहिण्डिको निषादेन वैदेह्यामेव जायते॥—मनु० १०, ३७

अर्थात्—चाण्डाल से वैदेही में उत्पन्न 'पाण्डु सोपाक' कहलाते हैं, जो उस समय त्वक्सार (बाँस) के शिल्प का काम करते थे। बाँस का एक नाम 'त्वक्सार' भी है—

वंशे त्वक्सारकर्मारत्वचिसारतृणद्रुमा (अमरकोश-२, वनौषधि वर्ग, १६०)।

वाल्मीकीय रामायण में भी बाँस की चर्चा है। रामचन्द्र वनवास के काल में एक दिन 'शैलोदा' नामक नदी के तीर पर पहुँचे, जिसके दोनों तटों पर 'कीचक' जाति के बाँसों का जंगल लगा था—

तं तु देशमतिक्रम्य शैलोदा नाम निम्नगा।
उभयोस्तीरयोस्तस्याः कीचका नाम वेणवः।

इतना ही नहीं, भगवान् राम को अपने वनगमन के समय जब यमुना नदी पार करना पड़ा, तब उन्होंने सूखे बाँसों का बेड़ा बनाया और उसी बेड़े से यमुना को पार किया—

शुष्कैर्वंशैः समास्तीर्णमुशिरैश्च समावृतम्।
ततो वेतसशाखाश्च जम्बूशाखाश्चवीर्यवान्॥—अयो० ५५, १५

महाभारत-काल में बाँस के ऐसे बाजे बनाये जाते थे, जो विजय या उल्लास के समय और अन्य बाजों के साथ बजाये जाते थे—

भेरीमृदङ्गनिनदैः शंखवैणवनिस्वनैः।—महा० ५, ६०, १६,

'हरिवंश पुराण' के 'भविष्य पर्व' के ३६वें श्लोक में अन्य शिल्पों के साथ वेणु-शिल्प का भी नाम आया है—

पश्येदं बहुधादेव भिन्नं-भिन्नं सहस्रशः।
शिक्यञ्च दारवं पात्रं द्विदलान् वेणुकान् बहुम्॥

उपर्युक्त वेणु-शिल्प-सम्बन्धी उल्लेख प्रागैतिहासिक काल का है। ऐतिहासिक काल में लगभग चार सौ वर्ष ईसा-पूर्व बौद्धकालिक ग्रन्थ 'महावग्ग' के 'कट्ठपादुका-परिक्खेपो' (५, ७, १५) प्रकरण में भिक्षुओं के धारण करने के लिए जूते और खड़ाऊँ का विधान किया गया है। भिक्षुओं के लिए चमड़े के जूते का निषेध था, इसलिए बल्वज, हिंताल-पत्र, कमल-पत्र, कम्बल, ताड़पत्र और बाँस के पत्रों से बननेवाले जूते पहनने का विधान किया गया है। बाँस के पत्तोंवाले जूते की चर्चा इस प्रकार है—

वेणुतरुणे छेदापेत्वा वेणुपत्तोपादुकयो धारेन्ति।
तानि वेणुतरुणानि छिन्नानि मिलापयन्ति॥

इतना ही नहीं, महावग्ग के अनुसार बुद्ध ने भिक्षुओं के लिए बाँस की बनी आटा चालने की चलनी और आँख में आँजन करने के लिए बाँस की सलाई के रखने की अनुमति दी थी। इसी तरह 'चुल्लवग्ग' के 'खुद्दकवत्थुक्खन्धक' (५, ६, १४-१५) में बाँस की अलगनी, कनखोदनी, पंखा, चीवर सीने की सुई आदि का उल्लेख है। भिक्षुओं के लिए बाँस की बनी बहँगी पर भार ढोने का निषेध किया गया है।

सम्राट् अशोक के पितामह मौर्य चन्द्रगुप्त के मंत्री 'चाणक्य' ने 'कौटलीय अर्थशास्त्र' का निर्माण किया था, जिसका समय लगभग ३०० ईसा-पूर्व था। 'कौटलीय अर्थशास्त्र' में शिल्पों की चर्चा की भरमार है। उस समय भिन्न-भिन्न शिल्प के काम करनेवालों की श्रेणियाँ सुव्यवस्थित हो गई थीं और 'चाणक्य' ने उनसे दण्ड तथा कर-ग्रहण की सुदृढ व्यवस्था कर दी थी। ये शिल्पी राज्य के प्रमुख अंगों में से थे; जिनके निवास और रोजी की समुचित व्यवस्था राज्य की ओर से होती थी। उस समय राज्य की सम्पत्ति में अन्य वृक्षों के साथ बाँस का महत्त्वपूर्ण स्थान था। वनस्पतियों के वर्ग की चर्चा करते हुए 'चाणक्य' लता-

वर्ग, वल्क-वर्ग, दारु-वर्ग, ओषध-वर्ग के साथ-साथ वेणु-वर्ग की भी चर्चा करता है। उसने बाँसों की विभिन्न जातियों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

उटजचिमियचापवेणुवंशसातीनकराटकभाल्लूकापि वेणुवर्गः।
—कौटलीय० अधि० २, अध्या० १७

इस सूत्र की टीका इस प्रकार है—

उटजो महासुषिरस्तनुकराटकः कर्कशपृष्ठः। चिमियो निस्सुषिरो मृदुत्वकः। चापवेणुः स्वल्पसुषिरोऽतिखरश्च, निष्कराटकश्चापयोग्यः। वंशा दीर्घपर्वकः सरन्ध्रः सकराटकश्च। सातीन-कराटकौ वेणुभेदौ। भाल्लूकः स्थूलदीर्घो महाप्रमाणो निष्कराटकः।

अर्थात्—उटज बाँस खूब पोला और काँटेदार होता है तथा उसका छिलका कठोर होता है। चिमिय बाँस निश्छिद्र और कोमल त्वचावाला होता है। चापवेणु में छिद्र छोटा होता है और यह कड़ु और काँटे से रहित एवं धनुष बनाने के योग्य होता है। वंश-जाति के बाँस का पोर दूर-दूर पर होता है और यह छिद्रवाला एवं काँटेदार होता है। सातीन और काँटा बाँस के सम्बन्ध में टीकाकार का ज्ञान नहीं हैं, इसलिए बाँस के दो भेद कहकर ही वह संतोष करता है। भाल्लूक बाँस के पोर काफी लम्बे होते हैं और इसकी लम्बाई सबसे बड़ी होती है और यह काँटों से रहित होता है। आज भी इस जाति के बाँस उत्तर-बिहार और असम में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

इस तरह मौर्य-काल के आरम्भ में ही बाँसों की जातियों का विश्लेषण हमें प्राप्त होता है। उस समय बाँस के अनेक शिल्प तैयार होते थे। आज का बल्लम या बर्छे उस समय में भी बाँस की लम्बी लाठी में लगा कर बनाये जाते थे—

कार्याः कार्मारिकाः शूलवेधनाग्राश्च वेणवः।—अधि० २, अध्या० ३

अर्थात्—लुहारों से लाठियों के अग्रभाग में शूल ठोकवाकर शस्त्रागार में रखना चाहिए।

उसी 'कौटलीय अर्थशास्त्र' के 'दुर्ग-निवेश'-प्रकरण में बतलाया गया है कि मुख्य दुर्ग के पश्चिमोत्तर भाग में यान-रथशाला और उसके पीछे पश्चिम भाग में ऊर्णा-सूत्र, वेणु, चर्म, वर्म और शस्त्राच्छादन के शिल्पियों की शाला की स्थापना करानी चाहिए।

पश्चिमोत्तरं भागं यानरथशालाः ततः परं ऊर्णासूत्रवेणुचर्मवर्मशस्त्रावरणकारवः

शूद्राश्च पश्चिमां दिशमधिवसेयुः।—अधि० २, अध्या० १५

रसोई घर के मुख्य उपकरणों में तराजू, मापने के बरतन, दाल दलने की चक्की, मूसल, ऊखल, ढेंकी, आटा पीसने की चक्की, पत्तल, सूप, चलनी, चँगेरी, पिटारी, बढ़नी आदि का उल्लेख भी कौटलीय शास्त्र करता है—

तुलामानभाराडं रोचनीदृषन्मुसलोलूखलकुट्टकरोचकयन्त्रपत्रकशूर्पचालनिका-
कराडोलोपिटकसम्मार्जन्यश्चोपकरणानि।—अधि० २, अध्या० १५

इससे पता चलता है कि इस पुस्तक में दिये गये बाँस से बननेवाले सूप, चलनी, चँगेरी, भात रखने की पिटारी आदि उस समय भी बनते थे। चलनी की चर्चा तो हमें ऋग्वेद में भी मिलती है, जिसका उल्लेख पहले किया गया है।

उस समय बाजार में जिन शिल्पों की बिक्री होती थी, उन पर २०वाँ या २५वाँ हिस्सा 'कर' के रूप में लिया जाता था, जिनमें से एक वेणु-शिल्प भी था—

वस्त्रचतुष्पदद्विपदसूत्रकार्पासगन्धभैषज्यकाष्ठवेणुवल्कलचर्ममृत्भाण्डानां धान्यस्नेहक्षारलवणमद्य-पक्वान्नादीनां च विंशतिभागः पञ्चविंशतिभागो वा।

इसी तरह यदि कोई वेणु-शिल्प की छोटी चीजों की चोरी करता था, तो उसपर १२ पण और बड़ी वस्तु की चोरी करने पर २४ पण का दण्ड लगता था—

चर्मवेणुमृद्भाण्डादीनां क्षुद्रकद्रव्याणां द्वादशपणावरश्चतुर्विंशतिपणपरो दण्डः।

— अधि० ३, अध्या० १७

वर्षाकाल में लोग नदियों का संतरण काठ या बाँस के बेड़े बनाकर भी करते थे, जिसकी चर्चा 'चाणक्य' भी करता है—

काष्ठवेणुनावश्चावगृह्णीयुः। —अधि० ४, अध्या० ३

हमारे कविकुलगुरु कालिदास ने भी वाल्मीकीय रामायणवाले कीचक-बाँसों की चर्चा 'रघुवंश' (२।१२) में की है, जिसमें कहा गया है कि जंगली बाँसों के रन्ध्रों में तेज वायु के प्रवेश से जो मधुर ध्वनि उत्पन्न होती थी, वह मानों वन-देवता बंशी बजा-बजाकर दिलीप-वंश की कीर्त्ति का गान करते थे, जिसे दिलीप ने सुना—

सकीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्।
सुश्राव कुंजेषु यशः समुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः।

कालिदास ने बाँस के कठोर और लम्बे पोरों का भी उल्लेख किया है, जिसमें बतलाया गया है कि 'शूर्पणखा' की अँगुलियाँ बाँसों के लम्बे और मोटे-मोटे पोरों की तरह थीं—

सा वक्रनखधारिण्या वेणुकर्कशपर्वया। —रघु० १२, ४१

स्वयं 'शूर्पणखा' शब्द ही बतलाता है कि वेणु-शिल्पयों द्वारा धान-चावल फटकने के लिए सूप का निर्माण प्रागैतिहासिक काल में ही हो चुका था।

बौद्धधर्म की महायान-शाखा का ग्रन्थ 'ललित-विस्तर' है, जिसका निर्माण सम्राट् कनिष्क से पहले और ईसा के आरम्भ-काल में हुआ था। उसमें वेणु-शिल्प के निर्माताओं की एक जाति की ही चर्चा है। उसमें प्रश्न किया गया है कि भगवान् बुद्ध ने शुद्ध वंश क्षत्रिय-कुल में क्यों जन्म लिया? उसमें जिन हीन कुलों की चर्चा की गई है, उनमें वेणुकार और रथकार-कुल भी है—

किं कारणं भिक्षवो बोधिसत्वः कुलविलोकितं विलोकयतिस्म? न बोधिसत्वा हीनकुलेषूपपद्यन्ते। चाण्डालकुलेषु वा वेणुकारकुले वा रथकारकुले वा पुष्पसकुले वा। — अध्या० ३

भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' के निर्माण-काल के सम्बन्ध में विवाद है। फिर भी तीसरी सदी के बाद उसका समय नहीं आ सकता। उस 'नाट्यशास्त्र' में वेणु-शिल्प की

अनेक चर्चाएँ हैं। उस समय के वाद्यों में बाँस से बननेवाला 'शुषिर' नामक वाद्य है, जिसे आज वंशी या मुरली कहते हैं—

ततः तन्त्रीगतं वाद्यं वंशाद्यं शुषिरं तथा।

इस 'शुषिर' के भी कई भेद थे, जिनके नाम पारी, मधुरी, तित्तिरी, काहल, तोड़ही, मुरली, बुक्का, शृङ्गिका, स्वरनाभि आदि हैं—

वंशोऽथ पारीमधुरीतित्तिरीशुद्धकाहलाः।
तोड़हीमुरलीबुक्काशृंङ्गिकास्वरनाभयः॥
शृंगं कापालिकं वंशश्चर्म्मवंशस्तथा परः।
एते शुषिरभेदास्तु कथिताः पूर्वसूरिभिः॥

इससे ज्ञात होता है कि बाँस के द्वारा बननेवाले ये वाद्य 'भरत' के बहुत पहले से बनते आ रहे थे, जिसके सम्बन्ध में भरत ने कहा है कि इन भेदों को पूर्व के ही विद्वानों ने बतलाया है।

पाँचवीं सदी में अमरसिंह ने 'नामलिंगानुशासन' कोश की रचना की है। उसमें भी बाँस और उसकी जातियों की तो चर्चा है ही, वेणु-शिल्प की अनेक वस्तुओं का भी उल्लेख है। जैसे—अनाज फटकनेवाले सूप, सत्तू और आटे चालनेवाली चलनी, चँगेरी, पिटारी, वंशी आदि।

प्रस्फोटनं शूर्पमस्त्री चालनी तितउः पुमान्।
स्यूतप्रसेवौ कण्डोलपिटौ कटकिलञ्जकौ॥ —३, वैश्य वर्ग, २६

संस्कृत में राजनीतिशास्त्र का एक ग्रन्थ है—'शुक्रनीति'। यह ग्रन्थ छठी शताब्दी का निर्मित बताया जाता है; क्योंकि गुप्त शासन व्यवस्था के अनुसार ही इसमें मन्त्रि-परिषद् आदि का उल्लेख है। इसमें जहाँ ६४ कलाओं की चर्चा है, वहाँ उनमें एक वेणु-शिल्प भी है। इनमें शिल्प के दो भेद किये गये हैं। एक का नाम 'कृतिज्ञान-कला' और दूसरे का नाम 'विज्ञान-कला' है। उनमें वेणु-शिल्प और तृण-शिल्प को 'कृतिज्ञान' कहते हैं और काच आदि धातु-शिल्प को 'विज्ञान' कहते हैं।

वेणुतृणादिपात्राणां कृतिज्ञानं कला स्मृता।
काचपात्रादिकरणं विज्ञानं तु कला स्मृता॥ —४, ३३३

'शुक्रनीति' बतलाती है कि अन्य कई वस्तुओं की तरह बाँस भी मौक्तिक का जन्म-स्थान है—

मत्स्याहिशंखवाराहवेणुजीमूतशुक्तितः।
जायते मौक्तिकं तेषु भूरिशुक्त्युद्भवं स्मृतम्॥ —४, १७३

इसी शुक्रनीति से पता चलता है कि गुप्तकाल में भी आजकल की तरह मछली पकड़ने की बंसी बन चुकी थी, जिससे मछलियाँ आसानी से पकड़ी जाती थीं। अन्तर इतना ही था कि आजकल जहाँ चारा और आँटे की गोलियाँ अंकुश में लगाई जाती हैं, वहाँ मछलीमार उस समय अंकुश में मांस-खण्ड लगाते थे।

अगाधसलिले मग्नो दूरोऽपि वसतो वसन्।
मीनस्तु सामिषं लोहमास्वादयति मृत्यवे॥ —१, १०५

सातवीं सदी के सम्राट् 'हर्ष' के दरबारी कवि 'बाणभट्ट' के काव्यों में भी वेणु-शिल्प की चर्चा है। बाणभट्ट लिखता है कि 'हर्षवर्द्धन' के पूर्वज 'पुष्यभूति' ने अपने दरबार में जब 'भैरवाचार्य' के शिष्य मस्करी परिव्राजक को देखा, तब उसके कन्धे पर एक डंडा था, जिसमें मिट्टी चालनेवाली बाँस की कमची की बनी चलनी टँगी थी और उसके हाथ में खजूर के पत्रों का बना भिक्षाकपाल लटक रहा था। वह वाक्य है—

बद्धमृद्परिशोधनवंशत्वक्तितउनाकौपीनसनाथशिखरेण खर्जूरपुटसमुद्गकगर्भीकृतभिक्षाकपालकेन योगमारकेणाध्यासितस्कन्धम्॥ —हर्षचरित, उच्छ्वास-३

इसी तरह 'पुष्यभूति' ने जब 'भैरवाचार्य' को देखा, तब उस आचार्य के पास बाँस की एक वैशाखी भी थी, जिसके ऊपरी भाग में लोहे का कीलनुमा अंकुश ठोका हुआ था—

शिखरनिखातकुब्जकालायसकण्टकेन वैणवेन
विशाखादण्डेन..................विराजमानम्॥ —उच्छ्वास-३

सातवीं सदी के अन्तिम भाग में रचित दण्डीकृत 'दशकुमारचरित' में अनेक शिल्पों का प्रसंग मिलता है। इसमें चर्मशिल्प (चर्मभस्त्रिका), वेत्र-शिल्प (वङ्केरिका), मृद्-शिल्प (शराव=कुरवा), व्याघ्र-चर्म की पेटी (व्याघ्र-त्वचोद्दतीश्च), मुसल, ऊखल, लौह-शिल्प (कैंची, सँड़सी) आदि अनेक शिल्पों की चर्चा है। उसी में वेणु-शिल्प के शूर्प का भी उल्लेख है—

असकृदंगुलीभिरुद्धृत्योद्धृत्यावहत्य शूर्पशोधितकणकिंशारुकाँस्तण्डुलान् प्रक्षाल्य।
—छठा उच्छ्वास

अर्थात्—कन्या ने बार-बार अँगुलियों से चावल को चुना और सूप से फटककर भुस्सी को निकाल दिया तथा चावल को धो दिया।

वेणु-शिल्प की इतनी लम्बी परम्परा पर एक विहंगम दृष्टि डालने के बाद इधर के वेणु-सम्बन्धी शिल्पों की चर्चा अनावश्यक है। इससे तो यह नितान्त सिद्ध है कि भारत में वेणु-शिल्प अतिप्राचीन काल से स्थित है और अन्य किसी भी शिल्प का समकक्षी है। एक ओर जहाँ यह दुर्भाग्य रहा कि भारत में धातु-शिल्प और मृद्-शिल्प की तरह यह वेणु-शिल्प अपना उत्तरोत्तर विकास नहीं कर सका, वहाँ इसे यह सौभाग्य भी प्राप्त है कि अपनी उपयोगिता के बल पर मुमूर्षु होकर भी अस्तित्व बनाये रहा, नष्ट नहीं हो सका।

बाँस की उपयोगिता गरीब और अमीर—सबके लिए एक समान है। भारत-जैसे देश की गरीब जनता के लिए तो यह प्राणाधार ही है। इसके सहारे शिल्प-निर्माण करके गरीब अपनी रोजी भली भाँति चला सकते हैं। बच्चों के लिए खेल के मैदान में, युवकों के लिए संग्राम-क्षेत्र में और बूढ़ों के लिए टेकनेवाली लकुटी के रूप में बाँस बहुत बड़ा सम्बल है। गृहस्थी और वाणिज्य में तो बाँस का योगदान विशेष महत्त्व रखता ही है; व्रत, त्योहार, उपनयन, विवाह, मरघट, श्राद्ध आदि में भी बाँस एक बन्धु की तरह सहायक होता है। बाँस की व्यापक महिमा कैसी है, इस पुस्तक में आप कुछ-कुछ देख सकेंगे।

भारतीय जीवन में जिस वेणु-शिल्प की इतनी बड़ी प्राचीन महिमा है, उसपर एक भी पुस्तक भारतीय भाषा में मुझे देखने को नहीं मिली। विशेषतः राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त करनेवाली हिन्दी में इस विषय की पुस्तक न होना, खलने की बात थी। हिन्दी-जैसी राष्ट्रभाषा में अभी अनेक हस्तशिल्पों पर पुस्तकों का अभाव है और इन विषयों पर अभी दर्जनों पुस्तकों की आवश्यकता है। विश्वास है, हमारे कलाविद् शिल्पी इस अभाव की पूर्त्ति में अपना पूर्ण सहयोग देकर राष्ट्रभाषा को समृद्ध बनायँगे।

मैं न तो लेखक हूँ या न हिन्दी का विद्वान् ही। इसलिए यदि पुस्तक में कोई त्रुटि हो तो विद्वान् सज्जन क्षमा करेंगे। इसके अतिरिक्त वेणु-शिल्प-विषयक इस पुस्तक के तैयार करने में अन्य ग्रन्थों से मुझे किसी प्रकार का साहाय्य नहीं प्राप्त हो सका। दुर्भाग्य यह रहा कि अँगरेजी-जैसी समृद्ध भाषा में भी इस विषय की एक भी ऐसी पुस्तक मुझे देखने को न मिली, जिससे कुछ सहायता ली जा सकती। यूरोप में बाँस की उपज नहीं होती, शायद इसीलिए यूरोपीय लेखकों ने इस विषय पर अपनी लेखनी नहीं उठाई है। मैंने अपने जापान-प्रवास-काल में वेणु-शिल्प के सम्बन्ध में जो कुछ सीखा और समझा, केवल उसी के आधार पर इस पुस्तक का निर्माण किया। हाँ, कुछ जापानी वेणु-शिल्पियों से मैंने सहायता अवश्य प्राप्त की है। मैं जापानी भाषा का भी पूरा जानकार नहीं था, अतः जैसा चाहिए, उन शिल्पियों से पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा सका। मुझे इस पुस्तक के निर्माण में विशेषतः अपने ही ज्ञान का भरोसा रखना पड़ा है, इसलिए त्रुटियाँ स्वाभाविक हैं। फिर भी इससे यदि भारतीय शिल्पियों को थोड़ा भी लाभ पहुँच सका, तो मैं अपना परिश्रम सार्थक समझूँगा।

९ गार्डिनर रोड,
पटना–१
५–१–६१

उपेन्द्र महारथी

भूमिका

वेणु-शिल्प के सम्बन्ध में मेरी थोड़ी-बहुत आस्था बचपन से ही थी। इस बात का अनुभव मैं बहुत पहले से ही करता रहा कि भारत-जैसे देश में गरीबों के लिए बाँस से बढ़ कर उपकारी दूसरी वस्तु नहीं है। जन-साधारण में बाँस का अत्यन्त व्यापक व्यवहार देखकर कोई भी व्यक्ति इस तथ्य को आसानी से समझ सकता है। जिस देश में बाँस उपलब्ध नहीं है, वहाँ के निवासी भी बाँस के अभाव का अनुभव करते हैं। अतः भारत के लिए बाँस की उपलब्धि ईश्वरीय वरदान है। यद्यपि मैं कोई अर्थशास्त्री नहीं हूँ, तथापि सुदीर्घ काल से, एक हस्तशिल्प-विभाग से सम्बद्ध रहने के कारण, इतना तो अनुभव मैंने किया ही है कि भारतीय समाज में, आर्थिक दृष्टि से, बाँस अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है और गरीबों का यह सर्वोत्तम बन्धु है तथा रहेगा।

अपनी छोटी उम्र में ही मुझे चित्र और हस्तशिल्प से अनायास प्रेम हो गया और तभी मैं बाँस से कुछ-न-कुछ वस्तुएँ तैयार करने लगा था। किन्तु, बाँस के शिल्प-वैशिष्ट्य का प्रभाव तो तभी जाना, जब मैं जापान गया। मैंने जापान में देखा कि कोई ऐसा घर नहीं है, जहाँ वेणु-शिल्प ने अपना प्रभाव न जमा लिया हो। वस्तुतः बाँस ने वहाँ के जन-समुदाय के जीवन के साथ एक विशिष्ट प्रकार से तादात्म्य स्थापित कर लिया है। वहाँ के गृह-उद्योगों और लघु-उद्योगों का तो यह एकमात्र जीवनाधार ही है। लगभग ३००० प्रकार के केवल व्यावहारिक वेणु-शिल्प जापान में तैयार होते हैं और उसी तरह कलात्मक वेणु-शिल्प की भी अनगिनत वस्तुएँ बनती हैं। इस शिल्प के लिए छोटे-बड़े अनेक प्रकार के औजार भी वहाँ तैयार कर लिये गये हैं, जिनमें बहुतेरे औजार तो कारीगर अपने ही घर में तैयार कर लेते हैं। इस तरह वहाँ के व्यापक वेणु-शिल्प का मुझपर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि मैं आश्चर्यचकित हो गया। मैं बार-बार सोचने लगा कि हमारे देश में भी तो बाँस प्रायः सर्वत्र और प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है, तब क्यों न इसका शिल्प-व्यवसाय यहाँ भी उन्नत किया जाय? इस शिल्प से भारत का गृह-उद्योग अत्यन्त उन्नत अवस्था में लाया जा सकता है और गरीबों की रोजी-रोटी की समस्या भी हल हो सकती है। अन्ततोगत्वा, मैंने निश्चय किया कि मुझे वेणु-शिल्प में दक्षता स्वयं प्राप्त करनी चाहिए और उसका उपयोग अपने देश में करना चाहिए। फिर तो मैंने इस शिल्प के अध्ययन और अभ्यास में अपनेको एकान्त निष्ठा से लगा दिया।

मैंने जापान के कई प्रमुख स्थानों और संस्थाओं में वेणु-शिल्प की शिक्षा प्राप्त की, जिनमें टोकियो, ताकासाकि, सिज़ुओका, ओदोआरा, कीवटो, वेपु, तोकसीमा, माच्छुवामा, ताकामाच्छु, सेंदाई. ओमोरी, ओगी, सादो टापू आदि स्थान विशेष

रूप से उल्लेखनीय हैं। मेरी शिक्षा का प्रबन्ध जापान-सरकार की ओर से हुआ, अतः वहाँ के प्रसिद्ध शिल्पियों के तत्त्वावधान में शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे मिला। इसलिए, मैं अनेक विख्यात शिल्पियों के सम्पर्क में आया और उनसे वेणु-शिल्प-सम्बन्धी बहुत-सी वस्तुओं की जानकारी हासिल की। वहाँ मैंने यह भी देखा कि देश के प्रत्येक शिल्प-केन्द्र में बाँस की जो भी वस्तुएँ बनती हैं, उनमें सर्वत्र विभिन्नता और अपना-अपना वैशिष्ट्य है। उनके आकार-प्रकार, व्यावहारिकता और शिल्प में एक-दूसरे से कहीं साम्य नहीं है, फलतः व्यावसायिक दृष्टि से इन उत्पादित वस्तुओं में परस्पर प्रतियोगिता का कहीं प्रश्न ही नहीं उठता है। अगर व्यावहारिक दृष्टि से इनमें समानता भी है, तो बनावट और आकृति में इतनी विभिन्नता है कि इनमें प्रतियोगिता की टक्कर हो ही नहीं पाती है। ये शिल्प-केन्द्र अपनी-अपनी विशिष्टता के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध हैं और सबका अपना एक मौलिक स्थान है—उनमें एकरूपता और पिष्टपेषण का दोष कहीं दृष्टिगत नहीं होता। यह देखकर मेरे लिए आवश्यक हो गया कि जितना ही ज्यादा शिल्प-केन्द्रों के सम्पर्क में आऊँ, उतना ही मुझे शिल्प-शिक्षा-क्रम में लाभ होगा। अतः प्रायः सभी विख्यात वेणु-शिल्प-केन्द्रों तथा प्रसिद्ध शिल्पियों से मुझे सम्पर्क स्थापित करना पड़ा और उनसे वेणु-शिल्प की विशेषज्ञता हासिल करनी पड़ी। इस क्रम में मुझे नोटबुक रखनी पड़ती थी और जानकारी की वस्तुओं का नोट लेना पड़ता था। इस तरह अपने-आप वेणु-शिल्प-सम्बन्धी एक विस्तृत नोट तैयार हो गया।

अपने देश में बाँस की प्रचुरता मैं देख चुका था और इससे उत्पादित शिल्पों का लाभ भी तबतक मैं अच्छी तरह समझ चुका था। इसलिए मेरे मन में अब यह भी विचार आया कि वेणु-शिल्प-सम्बन्धी अपने इन नोटों के आधार पर यदि मैं हिन्दी में एक पुस्तक तैयार करूँ, तो भारतीय शिल्पियों का बहुत बड़ा कल्याण हो सकता है। मैं झट इस काम में जुट भी गया। किन्तु, पुस्तक तैयार करने के क्रम में मुझे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और मैं निरुत्साह होने लगा। उसी समय जापान के प्रख्यात रसायनशास्त्री और 'सिमोमारुको टोकियो इंडस्ट्रियल आर्ट इन्स्टीच्यूट' के रसायन-विभाग के प्रधान 'श्रीआयोकी' से जान-पहचान बढ़ गई। 'श्रीआयोकी' बड़े ही सहृदय और उदार विद्वान् हैं। उन्होंने पुस्तक-लेखन में मेरी इतनी सहायता की, जिससे मेरी सारी कठिनाइयाँ दूर हो गईं। उनके सहयोग के विना केवल अपने नोटों के आधार पर मुझसे पुस्तक कभी तैयार नहीं हो सकती थी, इसलिए मैं श्रीआयोकी के प्रति जितना आभार प्रकट करूँ, थोड़ा होगा। सर्वप्रथम वेणु-शिल्प की शिक्षा का श्रीगणेश मैंने जिस गुरु से किया और अधिकांश ज्ञान भी जिनसे प्राप्त किया, वे भी 'सिमोमारुको इंडस्ट्रियल आर्ट इंस्टीच्यूट' के वेणु-शिल्प-विभाग के प्रधान अध्यापक हैं। इनके प्रति तो कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए शब्द ही मेरे पास नहीं हैं। इनका वात्सल्य और शिष्य-प्रेम भारत के प्राचीन गुरुओं की परम्परा में मुझे प्राप्त हुए। फिर मैंने 'कुरमे' जिले के 'ताकासाकि' में स्थित 'इंडिस्ट्रयल आर्ट इंस्टीच्यूट' के वेणु-शिल्प के प्रधान अध्यापक श्री आर० हारादा के पास भी इस शिल्प की शिक्षा ग्रहण की और इन्होंने भी अँगुली पकड़-पकड़कर वेणु-

शिल्प का ज्ञान मुझे कराया था। उसके बाद 'सादो' द्वीप के 'आकादमारी' स्थान में स्थित 'बम्बू रिसर्च केन्द्र' के निर्देशक तथा वहाँ के प्रधान अध्यापक 'श्रीकुसुये' एवं श्री 'आन्दोसान' आदि शिल्प-विशेषज्ञों से भी मैंने इस शिल्प की शिक्षा ली थी। आज अपने इन सभी गुरुओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनसे ज्ञान प्राप्त करके इस पुस्तक को मैंने तैयार किया। इनके अतिरिक्त भी मैंने जापान के जिन अनेक शिल्पियों से वेणु-शिल्प का ज्ञान प्राप्त किया था, उन सभी का चिरकृतज्ञ हूँ।

उपर्युक्त व्यक्तियों के अतिरिक्त 'बेपु' के वेणु-कारपोरेशन स्कूल और वेणु-शिल्प औद्योगिक संस्थान के निर्देशक तथा अध्यापकों से भी मैंने शिक्षा ली। कुरु में स्थित इंडस्ट्रियल आर्ट स्कूल के निर्देशक और प्रधान अध्यापक से एवं सिजुओका, ओदोआरा, कीवटो, सेन्दाई, सेतो आदि स्थान को वेणु-अनुसंधान-संस्थाओं के निर्देशकों तथा वेणु-शिल्प-विभाग और रसायन-विभाग के अध्यापकों के प्रति भी मैं पूर्ण कृतज्ञ हूँ, जिनका साहाय्य मुझे सर्वदा प्राप्त होता रहा। प्रोफेसर सुजुकी आदि मित्रों के सान्निध्य और प्रेम को तो कभी भूल ही नहीं सकता हूँ, जिनसे विभिन्न प्रकार की सहायता मुझे सुलभ हुई।

अपने देश भारत में, सबसे ज्यादा मैं कृतज्ञ हूँ—केन्द्रीय आकाशवाणी के प्रधान डाइरेक्टर श्रीजगदीशचन्द्र माथुर का, जो उन दिनों बिहार-सरकार के शिक्षा-सचिव थे। श्रीमाथुर जैसे गुणग्राही मित्र ने ही जापान के यूनेस्को सेमिनार में योगदान करने के लिए, भारतीय प्रतिनिधि के रूप में, मेरा नाम प्रस्तावित किया था। यदि श्रीमाथुर न होते, तो मेरा जापान जाना न तो सम्भव हो पाता और न आप लोगों के समक्ष मैं यह पुस्तक ही प्रस्तुत कर पाता। अतः, इस पुस्तक के निर्माण का सारा श्रेय माथुर साहब को ही है। पुस्तक-प्रकाशन का श्रेय मेरे अग्रज-तुल्य आचार्य श्रीशिवपूजन सहायजी को है, जो उन दिनों बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के संचालक थे। उनके प्रोत्साहन और बार-बार के तकाजे ने पुस्तक के हिन्दी-रूप देने में गुरु की छड़ी की तरह मेरे लिए काम किया और तब कहीं मुझमें तत्परता आई। अखिल भारतीय गृहशिल्पोद्योग-संस्थान की अध्यक्षा श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय का मैं विशेष कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक के लिए प्राक्कथन लिखने की कृपा की है। हिन्दी-पाण्डुलिपि तैयार करने में सर्वप्रथम दैनिक 'नवराष्ट्र' (पटना) के सहायक सम्पादक श्रीकृष्णानन्दजी से मुझे पूरी सहायता मिली, जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। मेरे मित्र श्रीवंकिमचन्द्र बनर्जी ने भी उल्लेखनीय योगदान किया है। किन्तु, पाण्डुलिपि तैयार करने तथा उसके संशोधन-सम्पादन में सबसे अधिक साहाय्य प्रिय भाई श्रीहवलदार त्रिपाठी 'सहृदय' ने पहुँचाया है। वे मेरे साथ बैठकर तथा एकाकी भी पाण्डुलिपि दुरुस्त करने में अथक परिश्रम करते रहे। उनके घोर परिश्रम के परिणामस्वरूप ही यह पुस्तक आपके समक्ष प्रस्तुत है। अतः, अपने इन बन्धुओं के प्रति मैं अपना शतशः आभार प्रकट करता हूँ। पुनः मैं तपन प्रिंटिंग प्रेस (पटना-४) के संचालक के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मेरे अनुरोध पर ही पुस्तक के मुद्रण का भार स्वीकार कर इसे सुन्दर रीति से मुद्रित कर दिया।

उपेन्द्र महारथी

फाल्गुन महाशिवरात्रि २०१७वि०
सोमवार, १३-२-६१

वेणु-शिल्प

प्रथम भाग

मानव-जीवन और वेणु-शिल्प

मनुष्य जब कृषि-कर्म में पूर्ण दक्ष नहीं था, और वह जंगली जीवन व्यतीत करता होगा, तभी उसका सम्बन्ध बाँस से स्थापित हुआ होगा, यह निश्चित है। अपनी आत्म-रक्षा और प्रहार इन दोनों में बाँस उसके लिए उपयोगी सिद्ध हुआ था—डंडा, धनुष और कुल्हाड़ी के रूप में। बाँस ही एक ऐसा पौधा है, जिसमें दृढ़ता के साथ लचीलापन भी है। इसे इच्छानुसार सीधा और टेढ़ा किया जा सकता है। भीषण आँधी के झकोरों में भी जब वह उखड़ता और टूटता नहीं होगा—केवल झुककर रह जाता होगा—तब आदिम मानव-जाति ने इसके लचीलेपन के वैशिष्ट्य को समझा होगा।

मनुष्य ने लौह-युग में धनुष और कुल्हाड़ी का ज्ञान प्राप्त किया; पर उससे भी पहले प्रस्तर-युग में ही उसे डंडे का ज्ञान हुआ। लोहे की कुल्हाड़ी और छुरी जब तैयार होने लगी, तब उसने धनुष और वाण बनाना सीखा। किन्तु, यह सब अरण्य-निवासकाल में ही—जब न तो कृषि-कार्य-का पूरा विकास हो पाया था और न जब जनपद बसाये गये थे।

कुल्हाड़ी से बाँस को काटकर और छुरी से तराशकर जब धनुष-बाण का निर्माण हुआ, तब एक साथ कई बाणों को रखने की समस्या भी उसके सामने आई। इस कार्य के लिए भी उसे बाँस ही उपयोगी जँचा। बाँस स्वतः खोखला होता है, अतः एक पोर का बाँस काटकर शिकारी ने उसका तरकस भी बना लिया। इसके बाद वह उसमें तीरों को रख और उसे पीठ पर बाँधकर घने जंगलों में निर्भीक विचरण करने लगा।

मानव जब समाज-रूप में संगठित हुआ और गृह बनाकर जनपद बसाने लगा, तब बाँस की फाड़ी गई फराठी टट्टी और छप्पर बनाने के काम में आने लगी। इस टट्टीवाले गृह से तत्कालीन मानव को इस बात की सुविधा थी कि वह जब चाहे, आसानी से उसे छोड़ दे और तोड़कर जहाँ चाहे, ले भी जाय और फिर घर बना ले। यह उस समय की बात है, जब मनुष्य स्वच्छन्द एवं विचरणशील था। स्थायी सम्पत्ति उसके पास नहीं होती थी। बाद में जब कृषि का विकास हुआ, तब पशुओं से उसकी रक्षा करने के लिए बाँस के बेड़े बनने लगे। इतना ही नहीं, पालतू पशुओं को बाँधने के लिए खूँटे की आवश्यकता भी उसे पड़ी और उसने इस काम के लिए बाँस को ही सर्वोपयोगी पाया; क्योंकि मजबूती और ठोंकने पर नहीं फटने का गुण अन्य लकड़ियों के बनिस्बत बाँस में अधिक है। इसी तरह गोले, आयताकार, त्रिभुजाकार आदि सभी प्रकार के छप्पर बाँस की फराठियों से बनाये जा सकते हैं और मानव ने अपनी सुविधा और सुन्दरता के खयाल से

सभी प्रकार की विधियों में इसे अपनाया। घास-पात से भरे तथा ढेले या कीचड़दार खेतों में रहने की जब समस्या आई, तब भी बाँस ही मचान बनाने के काम में सर्वसुलभ प्रमाणित हुआ। वह अपने घर को भी बाँसों के बेड़े से घेरकर वन्य पशुओं के भय से रहित हुआ। नदी की तेज धारा से गृह या खेतों का कटाव रोकने के लिए उसने बाँस के लम्बे-लम्बे खूँटे गाड़कर, घास-पुआल देकर मिट्टी से भर दिया और उन्हें कटाव से बचाया। मनुष्य जब फराठियों को जोड़कर दीवार खड़ी करने लगा और उसके छिद्रों से जब विषैले कीड़े घुसने लगे, तब बाँस की पतली कमचियाँ बनाकर उसने चटाई बनाई और दीवार में लगाकर उस पर मिट्टी का गाढ़ा लेप दिया और घर को सुघड़ तथा सुरक्षित बनाया।

यह पहले कहा गया है कि आदिम मानव पूर्ण विचरणशील था और स्थायी सम्पत्ति उसके पास नहीं थी। किन्तु, वर्षा, हिमपात या अन्य आपत्तिकाल में जब उसका विचरण रुक जाता था, तब भोजन प्राप्त करने की समस्या उपस्थित हो जाती थी। इसके अतिरिक्त जब कृषि-कर्म का विस्तार हुआ और अतिरिक्त भोज्य पदार्थ पैदा होने लगा, तब उसके संचय की भी चिन्ता मानव को सताने लगी। उसने घर में या द्वार पर कोठी या बखार बनाने को सोचा, और इस काम में भी बाँस की फराठियों तथा उसकी कमचियों से बनी चटाइयाँ बड़ी ही उपयोगी साबित हुईं और इन सामानों से अन्न की कोठियाँ भी बनने लगीं। साथ ही अन्नों को यहाँ से वहाँ ले जाने के लिए उसने बाँस की छोटी-बड़ी टोकरियाँ बनाईं और उन्हें वह व्यवहार में लाया। घर के अन्दर भी सामानों के संचय करने में बाँस के बने मचान बड़े काम के प्रमाणित हुए। मचान पर रखे गये अनाज में चूहों के आक्रमण और सील लगने के भय की आशंका नहीं रही। इस प्रकार क्रमशः बाँस-शिल्प में कालक्रम से अधिकाधिक विकास होता गया और वह जीवन और समाज का प्रमुख अंग बन गया।

हम देखते हैं कि धातु-शिल्प और कृषि-कार्य जैसे-जैसे विकसित होते गये, वैसे-वैसे बाँस से बननेवाले सामानों में सुरुचिपूर्ण शिल्प का विकास होता गया। हम यह भी देखते हैं कि जंगलों को काटकर या ऊँची-नीची जमीन को बराबर कर खेत बनाये गये और उसपर अधिकार प्राप्त करके मानव ने अचल सम्पत्ति का निर्माण आरम्भ किया। सिंचाई की व्यवस्था कर कृषि में विकास किया। तब अचल सम्पत्ति के लोभ से मानव ने समूह में रहकर स्थिर निवास की आदत अपने में डाली और इससे टिकाऊ सभ्यता का विकास हुआ। समूहों, उपसमूहों और कुलों के बसने से गाँव तथा जनपद का विकास हुआ और इस स्थिरीकरण से आवश्यकता तथा उपयोगिता के आधार पर बाँस-शिल्प के विकास में बहुत बड़ी मदद मिली। इस तरह बाँस-शिल्प द्रुत वेग से छलाँग मारता हुआ (मंडूकप्लुत गति से) विकास के शिखर पर पहुँच गया।

हमारे लिए यह बतलाना कठिन है कि बाँस से बननेवाली प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति-कथा का तथा इसके सिलसिलेवार विकास का इतिहास क्या है? ऐसा इतिहास न तो किसी पुस्तक में प्राप्त है और न राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास की तरह शिला-लेखों में। मिट्टी, प्रस्तर तथा अन्य धातु-सामग्रियाँ जिस तरह अपने शिल्प-कथा का इतिहास

बतलाती हैं, उस तरह बाँस के प्राचीन शिल्प भूगर्भ से हमें सुलभ नहीं हैं, जिनसे हम उनका इतिहास प्राप्त कर सकें। हाँ, थोड़ा-सा इतिहास हमें धार्मिक तथा साहित्यिक ग्रन्थों में तथा आदिम वन-जातियों की अर्द्धसत्य दंत-कथाओं में सुरक्षित मिलता है। संक्षिप्त रूप में इतना जान लेना चाहिए कि वेदों, आरण्यकों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, धर्मशास्त्रों, बौद्ध-साहित्य के निकायों, जातकों तथा कालिदास और बाणभट्ट के साहित्यों में हमें बाँस-शिल्प की सामग्रियों की थोड़ी चर्चा मिलती है। पुराणों में तो बाँस-शिल्प के अनेक उदाहरण भरे हैं। इसपर विस्तार से चर्चा करने के लिए अलग ग्रन्थ की आवश्यकता है।

आदिम वन-जातियों के यहाँ बननेवाले वेणु-शिल्प स्वयं उनके यहाँ अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा में गवाह हैं। आज भी साधारण औजारों की सहायता से जैसी सामग्री ये वन-जातियाँ प्रस्तुत करती हैं, वैसी सामग्री इस युग के बने सुन्दर और सूक्ष्म औजारों से भी बड़े-बड़े शिल्पी नहीं कर सकते। इन जातियों के ऐसे शिल्प ही बतलाते हैं कि उनके रक्त में वेणु-शिल्प का परम्परागत इतिहास निहित है।

बाँस-शिल्प के विकास का इतिहास धातु-शिल्प के विकास के साथ परस्पर गुँथा हुआ है। लौह या ताम्र-शिल्प के क्रमिक विकास के अनुसार ही वेणु-शिल्प का भी विकास हुआ, इसमें जरा भी संदेह नहीं। लोहे के बने औजारों में जैसे-जैसे विकास होता गया, वैसे-वैसे वेणु-शिल्प में भी उपयोगिता के आधार पर विकास होता गया। यह भी पहले कहा गया है कि कृषि-कार्य के विकास के आधार पर बाँस-शिल्प का भी उत्कर्ष होता गया और उसमें सूक्ष्मता और सुन्दरता, औजारों के विकास के अनुसार, दिन-प्रतिदिन आती और बढ़ती गई। ऐसे औजारों के विवरण आदिम-जातियों के प्रचलित इतिहासों में, कहानियों के रूप में, सुरक्षित हैं। ऐसी कहानियाँ हमें अस्त-व्यस्त और असम्बद्ध रूप में उपलब्ध होती हैं। इन कहानियों में वर्णित औजारों का विवरण किस काल तक रहा, यह बतलाना भी कठिन है; पर इतना अवश्य कहा जायगा कि औजारों के विकास में आदिम-जातियों और अग्नि का प्रयोग जाननेवाली आर्य-जातियों के पारस्परिक सहयोग का काल एक क्रान्तिकारी पद-विक्षेप का काल रहा है। इस तरह अग्नि के प्रयोग के द्वारा मानव ने औजारों के विकास में अद्भुत सफलता प्राप्त की और औजारों के विकास के साथ ही वेणु-शिल्प की भी चरमोन्नति हुई।

हमारे समाज में श्रेणियों का विभाजन इस बात का साक्षी है कि हस्त-शिल्प के विकास के आधार पर ही यह विभक्तीकरण की योजना लागू की गई, वैदिक साहित्य और बौद्ध-जातकों के आधार पर हम यह अच्छी तरह कह सकते हैं कि इनके निर्माण तक हमारे देश के हस्त-शिल्प उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच गये थे। इन्हीं शिल्पों के विकास के कारण देश में बड़े-बड़े नगर बस गये। ऐसे नगरों में एक-एक शिल्प के आधार पर लोगों का अपना संगठन हो गया। ऐसे संगठन को उस समय 'श्रेणी' कहा जाता था और प्रत्येक श्रेणी की अपनी परिषद् या सभा होती थी। इन्हीं श्रेणियों के आधार पर लौहकार, स्वर्णकार, चर्मकार, कर्मकार, कुम्भकार, वेणुकार, वड्ढ़की (रथकार), तन्तुवाय आदि जातियाँ संगठित की गईं। आगे चलकर इन शिल्पों के आधार पर ही श्रेणियों में ही उपश्रेणियाँ बनीं।

भगवान् बुद्ध के समय तक, आज से ढाई हजार वर्ष से भी पहले, ऐसी श्रेणियों का विभाजन हो गया था, जिनसे शिल्प के विकास की परम्परा हमें मालूम होती है। इन श्रेणियों का समाज में प्रमुख स्थान था और इन लोगों ने नगरों की व्यवस्था का भार अपने ऊपर अलग-अलग ले लिया था। व्यापारिक स्थानों में ऐसी श्रेणियों का संगठन-प्रबन्ध सुदृढ़ हो गया था। प्रत्येक के लिए, इनकी देख-रेख में राज्य की ओर से एक-एक अधिकारी नियुक्त था। यह अधिकारी अपने अधीनस्थ शिल्प के विकास के लिए यथाशक्ति प्रयास करता था। शिल्पों के ऐसे विशेषज्ञ नित्य-प्रति अनुसंधान का कार्य करते थे और छोटी-छोटी वस्तुओं के निर्माण में दत्तचित्त थे। जिन वस्तुओं को अत्यन्त क्षुद्र समझकर हम फेंक देते हैं, शिल्पी उन वस्तुओं से सुन्दर, कलापूर्ण तथा उपयोगी वस्तुएँ तैयार कर समाज की आर्थिक समस्या का हल करते थे।

ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व बुद्धकाल में ऐसी अठारह श्रेणियों का पता हमें लगता है। इनमें वेणुकार-श्रेणी का प्रमुख स्थान था। बाँस का शिल्प करनेवाला व्यक्ति समाज में नीच नहीं माना जाता था और अन्य शिल्पकारों का भी स्थान बराबर होता था। इन शिल्पियों में सेठ-साहूकारों तथा राजाओं के लड़के भी होते थे, जिनका स्थान अन्य शिल्पियों के समान ही माना जाता था। शिल्प के प्रशिक्षण में जात-पाँत और ऊँच-नीच का बर्त्ताव नहीं होता था। एक श्रेणी का शिल्पकार दूसरी श्रेणी की शिल्प-विद्या सीखकर उसमें जा मिलता था और वह उसी श्रेणी का हो जाता था।

समाज में आई अनेक आपदाओं के कारण जब छोटे-छोटे जनपद मिलकर एक हो गये तथा एक ने दूसरे को जीतकर अपने में आत्मसात् कर लिया, तब कालक्रम से महाजनपदों का निर्माण हुआ। ऐसी अवस्था में भी भावना के पारस्परिक आदान-प्रदान से शिल्पों के विकास में बहुत बड़ा गुणात्मक परिवर्त्तन हुआ। गुणात्मक परिवर्त्तन के साथ उत्पादन में भी सामूहिक प्रयास के चलते, संख्यात्मक विकास भी चरम सीमा तक पहुँच गया। फलतः, गृह-निर्माण-कला में तथा कच्चे माल के उत्पादन में क्रान्ति आ गई। गृह-निर्माण और कृषि-कार्य के विकास के कारण बाँस-शिल्प दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ा। यह हम अच्छी तरह देखते हैं कि मानव ने अपने सांस्कृतिक विकास के लिए जिन अंगों का श्रीगणेश किया, उनमें बाँस का प्रयोग की जानेवाली गृह-निर्माण-कला का प्रमुख स्थान रहा है। मानव के चक्कर लगे पैरों को गृह और गृहस्थी ने ही स्थिरता दी और गृह तथा गृहस्थी के विकास में बाँस और उसकी बनी वस्तुओं ने भरपूर सहायता की है।

वेणु-शिल्प या काष्ठ-शिल्प ऐसे हैं, जो अन्य स्थापत्य-कला की तरह चिरस्थायी नहीं हो सकते, किन्तु अन्य शिल्पों के नमूने, जो हमें माता पृथ्वी के गर्भ से प्राप्त हैं, और जो निश्चित रूप से वेणु-शिल्प से प्राचीन नहीं हैं, उनसे मिलान करने पर बहुत-कुछ इस शिल्प की उन्नति का भी पता हमें अच्छी तरह लग जाता है। इन अन्य शिल्पों के द्वारा हम वेणु-शिल्प के सम्बन्ध में कुछ अनुमान कर सकते हैं। मोहेनजोदड़ो, हड़प्पा, चानूदड़ो, नालन्दा, पाटलिपुत्र आदि स्थानों में पाये गये मिट्टी के खिलौनों, प्रस्तर की मूर्त्तियों आदि की वेश-भूषा एवं ईंटों, दीवारों, नींवों, सड़कों, कुओं, स्नानागारों,

कोष्ठागारों, पुष्करिणियों, स्तम्भों, आभूषणों आदि को देखकर वेणु-शिल्प के विकास का भी हमें भली भाँति ज्ञान प्राप्त होता है। गृहस्थी के काम में आनेवाले मिट्टी के बरतनों पर की गई कारीगरी तो हमें और भी आश्चर्यविमूढ़ कर देती है और तत्कालीन कला-प्रेम का रूप सामने खड़ा कर देती है। इन मिट्टी के बरतनों और खिलौने में जो कला-शिल्प हमें दिखाई पड़ते हैं, उनमें बाँस का साहाय्य नितान्त अपेक्षित था। चाक के छिद्र में बाँस के डंडे का प्रयोग और मृद्-शिल्प (सूख जाने पर कच्ची अवस्था में) के सुधार में चाकू-सदृश बाँस की छोटी कमची का प्रयोग—दोनों इस बात के साक्षी हैं कि उस काल में वेणु-शिल्प विकसित था। इस तरह वेणु-शिल्प मानव के जीवन-काल में ही नहीं, मरण-काल तक अपेक्षित था। इसका उदाहरण शव के गाड़नेवाले पात्रों में हम पाते हैं। ऐसे पात्रों के ऊपर ज्यामितिक आकृतियोंवाली सरल रेखाओं, कोणों, वृत्तों और वृत्तांशों से बनी विभिन्न कला-कृतियाँ हमें बरबस लुभा लेती हैं। कुछ मिट्टी के पात्रों पर पुष्प-पत्तियों और पशु-पक्षियों के रूप भी हमें मोहते हैं। इन प्राप्त कला-कृतियों के द्वारा हम अच्छी तरह समझ सकते हैं कि उस समय वेणु-शिल्प का भी विकास इसी तरह अपनी चरम सीमा पर पहुँचा होगा। आज से पाँच हजार वर्ष पहले की ये कला-कृतियाँ जब हमारे समक्ष अपनी जवानी की कहानी बतलाती हैं, तब इनके बचपन के कथा-सूत्र को ढूँढ़ना हमारे लिए बिलकुल असम्भव-सा लगता है।

बौद्धधर्म के विकास-काल में वेणु-शिल्प की हम खूब उन्नति पाते हैं। यही कारण रहा कि जिधर-जिधर भारत से बौद्धधर्म गया, उधर-उधर वेणु-शिल्प भी अपना विस्तार करता गया। भारत में इस शिल्प का ह्रास भी, बौद्धधर्म के ह्रास के साथ ही आरम्भ हुआ। बौद्धों ने बाँस को समाज के जीवन का अंग मानकर अपने प्रत्येक कर्म में उसे व्यवहृत किया और उसे सर्वोच्च स्थान दिया। उन्होंने मानव-जीवन के साथ बाँस के घनिष्ठ सम्बन्ध को अच्छी तरह समझा था। यहाँ तक कि बड़े-बड़े बौद्धप्रेमी सेठ और राजा 'यष्टिवन' तथा 'वेणुवन' बौद्धों को दान कर यश का भागी बनते थे। यही कारण रहा कि इस संस्कृति से प्रभावित होकर गृहस्थों ने भी अपने घर के आस-पास वंश-रोपण की परम्परा जारी रखी। किन्तु जब भारत में बौद्धधर्म पर प्रहार हुआ, तब बाँस को दूषित ठहराया गया और निकट स्थानों में बाँस को लगाना अशुभ माना गया। इतना ही नहीं, वेणु-शिल्पसाधकों को भी समाज में नीच बतलाया गया, जिससे वेणु-शिल्प की बहुत बड़ी क्षति हुई। अतः, कुलीन वर्ग ने वेणु-शिल्प की शिक्षा लेना त्याग दिया और यह शिल्प दरिद्र और उपेक्षित वर्ग में ही सिमटकर रह गया। फिर भी, अपनी उपयोगिता के कारण भारत में वेणु-शिल्प मरा नहीं—भले ही इसका विकास रुक गया और दायरा संकुचित हो गया।

वेणु-शिल्प का अतीत हमारे देश में कैसा था, इसका अनुमान हम उन बौद्ध देशों से कर सकते हैं, जहाँ भारत से बौद्धधर्म के साथ वेणु-शिल्प गया। यह केवल हमारा अनुमान ही नहीं है, बल्कि आज भी भारत के विभिन्न प्रदेशों में वेणु-शिल्प की जो कलाकृतियाँ हमें मिलती हैं, उनसे जब हम एसिया के विभिन्न बौद्ध देशों के वेणु-शिल्प का मिलान करते हैं,

तब दोनों की एकरूपता पर हमें आश्चर्य होता है। ये वेणु-शिल्प ही इस बात के प्रमाण हैं कि भारत से बौद्धधर्म के साथ ही उन देशों में वेणु-शिल्प गया। इन देशों में वेणु-शिल्प के व्यवहार का विस्तार और उनके उच्च कलापूर्ण नमूने इस बात के साक्षी हैं कि भारत में इस शिल्प का अतीत कितना उज्ज्वल था। उन देशों में जापान, चीन, स्याम, फारमोसा, इण्डोचाइना, इण्डोनेसिया, कम्बोडिया, मलाया, बर्मा आदि देश हैं। केवल जापान में ही ३००० किस्म के बाँस के व्यावहारिक शिल्प बनते हैं। वहाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बाँस का स्थान सर्वोपरि है। पूजा-पाठ तथा पर्वोत्सवों के समय भी इसका व्यवहार अनिवार्य है। हमारे देश में भी ऐसे अवसरों पर इसकी अनिवार्यता मानी गई है। वेणु-शिल्प के अनिवार्य विकास तथा सुरक्षा के लिए ही जापान में यह प्रथा प्रचलित है कि प्रत्येक अविवाहित कन्या, अपने विवाह के पूर्व इस कला में दक्षता प्राप्त कर ले। वहाँ जो कन्या इस शिल्प में जितना ही ज्यादा निपुण होती है, उतना ही उत्तम, रूप-गुण-सम्पन्न, वर उसे प्राप्त होता है। जापान की इस व्यवस्था को मैंने अपनी आँखों देखा है। जिस तरह हमारे देश में अच्छे वर प्राप्त करने के लिए पहले प्रत्येक लड़की को घर-गृहस्थी (चूल्हा-चक्की, कसीदा और सीकी-शिल्प) के काम में निपुण होना अनिवार्य था और जैसे आजकल स्कूली शिक्षा, नृत्य-संगीत आदि आवश्यक हो गये हैं, उसी तरह जापान में वेणु-शिल्प की जानकारी अत्यन्त आवश्यक है। वहाँ वेणु-शिल्प गृहस्थी के प्रमुख कार्यों में सर्वोपरि माना गया है। हमारे देश में जिस कला का जितना ही ज्यादा महत्त्व होता था, उसकी सुरक्षा के लिए ऐसा ही नियम लागू था। हमारे पूर्वजों ने ऐसी वस्तुओं को अपने जीवन और संस्कृति के अंग के रूप में समाविष्ट कर लिया था।

वेणु-शिल्प के प्राचीन इतिहास और सांस्कृतिक एकात्मता का एक उदाहरण ही यहाँ देना अधिक होगा और वह है—बाँसुरी। बाँसुरी का इतिहास ईसवी सन् से लगभग १५०० वर्ष पहले महाभारत-काल में, भगवान् कृष्ण के जीवन के साथ, हमें मिलता है। इस बाँसुरी में दूसरी किसी वस्तु का साहाय्य अपेक्षित नहीं है। यह मानी हुई बात है कि जिस कला में जितने कम साहाय्य-आधारों की अपेक्षा होगी, वह कला उतनी ही महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। अतः, वाद्य में बाँसुरी सर्वोपरि है। साथ ही हमारी भागवत संस्कृति का एकमात्र आधार बाँसुरी है। भगवान् कृष्ण की सम्पूर्ण कोमल कला बाँसुरी से आच्छादित है। अतः, वेणु-शिल्प का विकास हम उस काल से ही कुछ समझ सकते हैं।

बाँस एक ऐसी वस्तु है, जो ज्यादा पूँजी के विना भी सर्वसुलभ है और विना पूँजी लगाये सुन्दर-से-सुन्दर वस्तुएँ बना ली जा सकती हैं। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे विभिन्न प्रदेशों—जैसे मणिपुर, आसाम, त्रिपुरा, विहार, उड़ीसा, मद्रास आदि—में आज भी प्राप्य हैं। इन स्थानों में कम पूँजी की लागत से बाँस की उत्कृष्ट और कलापूर्ण वस्तुएँ बनाई जाती हैं, जो जापान के वेणु-शिल्प से टक्कर ले सकती हैं। किन्तु साधारण तौर पर हमारे देश में बाँस का वही शिल्प जीवित है, जो गृहस्थों के दैनिक जीवन में अथवा संस्कृति में निष्ठ कर लेने के कारण पूजा-पर्वों में व्यवहृत होता है। बाँस की अपनी यह विशेषता है कि दैनिक जीवन से इसे कभी हटाया नहीं जा सकता। विवाह आदि उत्सवों के समय

इसका व्यवहार अनेक प्रकार से होता है। धनी हो या गरीब—सबको बाँस का मंडप (मँड़वा) बनाना ही पड़ता है। मँड़वे के बाँस इतने ऊँचे होते हैं कि दूर से ही राहगीरों को विवाह सम्पन्न होने की सूचना देते हैं। इसके अतिरिक्त विवाह में बाँस की कमचियों का बना 'डाला' सजाया जाता है, जिसमें मांगलिक कपड़े और मिष्टान्न सजकर जाते हैं। यह वर-पक्ष की ओर से लड़की के यहाँ भेजा जाता है और उस पर आलंकारिक रूप दिया रहता है। विवाह की घड़ी में, भाँवरें भरते समय, धान का भूँजा (लावा) बाँस की बनी सुपली के सहारे ही गिराया जाता है। विवाह के पहले जिस रात्रि को 'मटकोड़' (शुद्ध मिट्टी खोदकर लाने की विधि) होती है, उसी दिन मंडप में एक और विधि होती है, जो 'हरवंशकड़ी' कहलाती है। मंडप के बीच में जहाँ केले का थम्भ गड़ा रहता है, वहीं पत्ते-समेत बाँस की हरी करची भी गाड़ी जाती है और वहाँ एक प्रकार की पूजा होती है। कहीं-कहीं विवाह में 'सँपदेवी-पूजा' भी होती है, जिसे बाँस की पाँच करचियों से सम्पन्न करते हैं। यज्ञोपवीत में भी जब लड़का ब्रह्मचारी का वेष धारण करता है और गुरुगृह में शिक्षा लेने जाने का स्वांग रचता है, तब उसके पास पलाश-दण्ड के साथ बाँस की हरी करची भी होती है।

औषधों के रूप में बाँस की उपयोगिता

वंशलोचन—वर्षा-ऋतु में जब बादल गरजते हैं, तब बाँस की कोंपलें जड़ से निकलती हैं। नर-मादा भेद करके बाँस की दो जातियाँ होती हैं। नर बाँस ठोस होते हैं और मादा बाँस पोले होते हैं। आयुर्वेद-शास्त्र का कहना है कि जब स्वाति-नक्षत्र का पानी मादा बाँस के भीतर प्रवेश करता है, तब वही जमकर वंशलोचन बन जाता है। बाँस जब पककर सूख जाता है, तब उसे फाड़कर वंशलोचन निकाल लिया जाता है। यह बड़े-बड़े औषधों के काम में लाया जाता है। विशेषकर पक्षाघात के उपचार में यह रामबाण का काम करता है। संस्कृत में इसके कई नाम हैं। जैसे—वंशलोचन, त्वक्क्षीरी, क्षीरिका, कर्पूररोचना, तुङ्गा, रोचनिका, पिंगा, वंशशर्करा और वंशकर्पूर।

वंशलोचन एक खास जाति के बाँस के भीतर से निकलता है। उस बाँस का नाम 'नजला बाँस' है। इस बाँस की जाति मादा है। इसमें एक प्रकार का मद जम जाता है, जो बाँस के पकने और सूखने के बाद निकाला जाता है। इसी को हिन्दी में वंशलोचन और गुजराती में वाँसकपूर कहते हैं। आजकल बाजार में नकली वंशलोचन की भरमार हो गई है। असली वंशलोचन का रंग बिलकुल सफेद होता है; उसपर कुछ नीले रंग की झाईं दिखाई पड़ती है। इसको जब लकड़ी या पत्थर पर घिसते हैं, तब किसी प्रकार की लकीर नहीं उभरती। यह हाथ की चुटकी से दबाने पर टूटता नहीं है और न मुँह में रखने से घुलता है। इसमें पानी सोखने की शक्ति है। पानी सोख लेने के बाद असली वंशलोचन पारदर्शक हो जाता है। किन्तु, नकली वंशलोचन के घिसने पर लकीर खिंच जाती है और पानी में डालने से वह घुल जाता है।

वंशलोचन के गुण-दोष—आयुर्वेदिक मतानुसार यह रूखा, कसैला, मधुर, रक्त को शुद्ध करनेवाला, शीतल, वीर्यवर्द्धक और कामोद्दीपक होता है। यह क्षय, श्वास, खाँसी,

रुधिर-विकार, मन्दाग्नि, रक्त-पित्त, ज्वर, कुष्ठ, कामला, पांडु, दाह, तृषा, व्रण, मूत्रकृच्छ्र और वात को नष्ट करता है। इसमें ७० प्रतिशत सेलिसिक एसिड और ३० प्रतिशत पोटाश तथा चूना रहता है।

जिस वंशलोचन में जितनी अधिक सेलिसिक एसिड रहती है, वह उतना ही उत्तम होता है। इसके प्रयोग से श्वासेन्द्रिय की श्लेष्म-त्वचा को बल मिलता है तथा श्वास-नालिका में उत्पन्न होनेवाले कफ का क्षय हो जाता है। इस कार्य के लिए सितोपलादि का चूर्ण उत्तम प्रमाणित हुआ है।

आयुर्वेदिक ग्रन्थ 'राजनिघंटु' के अनुसार दोनों प्रकार के बाँस (नर और मादा) खट्टे, कसैले, किंचित् कड़वे, शीतल तथा मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, बवासीर, पित्त, दाह और रक्त-विकार को शमन करनेवाले हैं।

मादा बाँस अग्नि को दीप्त करनेवाला, अजीर्णनाशक, रुचिवर्द्धक, पाचक, हृदय-पुष्टिकारक तथा शूल और गुल्म को नष्ट करनेवाला होता है।

बाँस के चावल भी होते हैं। कभी-कभी बाँस में जौ के बराबर फल निकल आते हैं। इन्ही फलों से चावल के दाने निकलते हैं। इन्हीं दानों को बाँस के चावल कहते हैं। ये चावल कसैले, मधुर, पौष्टिक, बलवर्द्धक तथा कफ, पित्त, विष और प्रमेह को दूर करनेवाले हैं।

गर्भाशय के ऊपर बाँस का प्रयोग विशेष रूप से लाभदायक है। इसके प्रयोग से गर्भाशय का संकोचन होता है। इसीलिए प्रसूति के समय इसके कोमल पत्तों का काढ़ा स्त्रियों को पिलाया जाता है। इससे प्रसूता के गर्भाशय की गन्दगी बिलकुल साफ हो जाती है और गर्भाशय अपनी पूर्वावस्था में आ जाता है। बच्चा जनने के पश्चात् जानवरों को भी बाँस के पत्ते इसीलिए खिलाये जाते हैं कि उनका गर्भाशय शुद्ध हो जाय।

प्रसूता के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों को भी, मासिक शुद्ध न होने पर, बाँस के कोमल पत्तों तथा कोंपलों का, अन्य ओषधियों के मिश्रण से बनाया काढ़ा पिलाया जाता है, जिससे उनका मासिक-धर्म शुद्ध हो जाता है।

प्रमेह और सुजाक में भी बाँस के पत्तों और अनन्तमूल का काढ़ा बनाकर देने से लाभ होता है। बाँस की फूटनेवाली कोंपलों की पुल्टिस यदि 'नारु' (एक प्रकार की छूतवाली फुंसियाँ) के ऊपर बाँधी जाय, तो शीघ्र फायदा पहुँचता है। मिस्टर वॉट ने अपने 'इकनामिक प्रोडक्ट्स ऑफ इण्डिया' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि बाँस की कोमल कोंपलों की पुल्टिस नारु के ऊपर बाँधने से 'नारु' निकल जाता है। बाँस की कोंपल के ऊपर की छाल हटाकर भीतर के कोमल हिस्सों का यदि रस निकाला जाय और उस रस के बराबर उसमें पानी मिला दिया जाय, तो इनसे निम्नलिखित प्रकार के कीड़े मर जाते हैं—नारु के कीड़े, श्लीपद (फीलपाँव) के कीड़े, मक्खियों के अण्डे, मच्छड़ तथा मच्छड़ों के अण्डे।

१. बाँस की कोंपल के रस में नारु के कीड़े बारह-साढ़े बारह मिनट में मरते हैं।

२. बाँस की कोंपल की रस-प्रवाही में श्लीपद रोगों के जन्तु दस मिनट में मरते हैं।

३. मक्खियाँ और उनके अण्डे वंश-करीर की ऐसी प्रवाही में ४५ मिनट में मर जाते हैं।

४. ऐसा देखा गया है कि टेस्ट-ट्यूब में मच्छड़ों को रखकर उसमें बाँस की कोंपड़ के रस में भिंगोया रूई का फाहा डाला गया, तो मच्छड़ ३ से ५ मिनट में मर गये। विना पानी मिलाये रस से वे ही मच्छड़ १५ मिनट में मरे। इससे ज्ञात होता है कि बाँस की कोमल कोंपड़ के रस में हाइड्रोस्पानिक-एसिड और पोटासियम-सायनाइट के समान जहरीली ओषधियों की अपेक्षा अधिक कृमिनाशक शक्ति है।

बाँस की राख में सेलेसिक एसिड २८ प्रतिशत, चूना ४ प्रतिशत, मेगनेसिया ६ प्रतिशत, पोटासियम ३४ प्रतिशत, सोडियम १२ प्रतिशत, फ्लोरिन २ प्रतिशत और गन्धक २ प्रतिशत पाया जाता है।

यूनानी मतानुसार बाँस सर्द और खुश्क होता है और जला देने के बाद गरम और खुश्क हो जाता है। जली हुई बाँस की जड़ और छाल को सिरके में मिलाकर बाल उड़े हुए स्थान पर यदि लगाया जाय, तो उस स्थान पर बाल जम जाते हैं। बाँस की राख से मलने पर गंदे दाँत साफ हो जाते हैं। बाँस की जलाई हुई जड़ और छाल के बराबर भाग में मेंहदी ले ली जाय और इन्हें पीसकर यदि बालों में लगाये जायँ, तो बालों की जड़ें मजबूत होती हैं और जहाँ से बाल गिर गये हैं, वहाँ फिर बाल उग आते हैं। बाँस का कोयला पीसकर यदि घाव पर भुरभुराया जाय, तो जखम भी भर जाता है। बाँस की कोंपड़ को सिरके के साथ पीसकर कमर और कूल्हों पर लगाने से दर्द आराम हो जाता है। बाँस तथा उसके पत्तों पर जमी चिकनई यदि आँख में लगाई जाय, तो आँख का जाला कट जाता है। बाँस को पानी में जोश देकर पीने से रुका हुआ मासिक धर्म और पेशाब जारी हो जाता है। इसके हरे पत्तों को पानी में खूब मलकर साफ करके यदि पीया जाय, तो मुँह से आता हुआ खून बन्द हो जाता है। इसके पत्तों को जलाकर यदि उसका लेप सूखी या तर खुजली पर लगाया जाय, तो खुजली अच्छी हो जाती है। बाँस की जड़ को जलाकर उसकी राख को पानी में घोलकर उसका निखरा पानी यदि पीया जाय, तो आमाशय और यकृत् की गरमी शान्त हो जाती है। बाँस की जड़ को जलाकर चमेली के तेल में मिलाकर लगाने से दाद मिट जाती है और माथे का गंजापन जाता रहता है। बाँस के पत्तों का अर्क यदि शहद के साथ मिलाकर पीया जाय, तो खाँसी में भी लाभ होता है।

इसके अतिरिक्त बाँस हमारे जीवन का कैसा सहचर और सहायक है, इसका ज्वलन्त उदाहरण तो जीवन-काल में प्राप्त होता ही है, हमारे बुढ़ापे में भी इसकी लकुटी जीवनाधार होती है। साथ ही मरने के बाद भी यह सच्चे बन्धु की तरह सहारा देता है। इसकी बनी 'रथी' (अरथी) पर शव मरघट तक ले जाया जाता है, जिसमें चार भाई कंधे लगाकर ढोते हैं। यह रथी हरे बाँस की ही बनती है और अभाव की अवस्था में इसके लिए सूखे बाँस व्यवहृत होते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि बाँस की उपयोगिता मानव-विकास के जीवन में एक

महत्त्वपूर्ण अंग है। यह बचपन में हमारे लिए गुली-डण्डा, जवानी में लाठी-भाला, तीर-धनुष, बुढ़ापे में लकुटी और मरघट तक ले जाने में रथी बनता है और क्रमशः आनन्द, साहस, सहारा और साथी बनकर सहायता करता है। तब अपने ऐसे सच्चे बन्धु बाँस को हम कैसे भूल सकते हैं! हमारे गृह-कार्य और पर्व-पूजाओं के कार्य भी इसके विना कभी पूरे नहीं हो सकते। हमारे पूर्वजों ने, बाँस की ऐसी उपयोगिता और महत्ता जानकर ही, सामाजिक जीवन और संस्कृति में इसे इतना महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।

वेणु-कार्य की प्रामाणिकता

भारत किसानों का देश है। षड्ऋतुओं के प्रभाव के कारण इसकी जलवायु यूरोप आदि शीत-प्रधान देशों से बिलकुल भिन्न होती है। भारत की जलवायु पर ग्रीष्म का अधिकार तो है ही, लेकिन शीत और वर्षा के कारण जलवायु में न तो अधिक शुष्कता आती है और न वह अधिक गीली ही होती है। हिमालय और विन्ध्य पहाड़ों की शृंखला समस्त देश में व्याप्त रहने के कारण भारत की मिट्टी में अद्भुत उर्वरा-शक्ति पाई जाती है। इसलिए हम देखते हैं कि भारत की पहाड़ी और समतल भूमि, विभिन्न प्रकार के असंख्य वृक्षों की खान है—एक बृहत् भाण्डागार है।

भारतीय किसानों की बराबर यह दृष्टि रही है कि गाँवों में उपलब्ध सामग्री से ही प्रतिदिन के सभी उपयोगी कार्यों को सम्पादित किया जाय। अर्थात्, किसान स्वतः उत्पन्न उन वृक्षों, पौधों और लताओं का उपयोग करते आ रहे हैं, जो सहज में उपलब्ध हैं, मजबूत और टिकाऊ हैं और जो आसानी से उनके अधिक-से-अधिक कार्यों में उपयोगी सिद्ध होते हैं। वे उन्हें आसानी से अपने गाँवों में लगाकर उनका विस्तार भी करते हैं। शताब्दियों से किसानों के कार्यों में वैसे व्यवहृत होनेवाले वृक्षों में बाँस का स्थान हम विशेष रूप से पाते हैं। जान पड़ता है, मानों बाँस उनके जीवन की हर अवस्था में एक सच्चा सहायक मित्र है। इसीलिए हम यह भी देखते हैं कि भारत के नागरिकों ने बाँस को बरगद, पीपल, पाकड़, आम आदि वृक्षों की तरह ही पवित्र मान लिया है और अपने धार्मिक और मांगलिक कार्यों में भी हरे बाँस और उसके पत्तों तथा टहनियों का रखना शास्त्रीय विधि बना दी है। हमारे देश में बाँस की उपयोगिता प्रकट करने के लिए ही एक कहावत भी चल पड़ी है—'बाँस गरीबों का बन्धु है।' अर्थात्, बाँस एक ऐसी वनस्पति है, जो अन्य वृक्षों और वनस्पतियों की अपेक्षा अधिक उपयोगी है तथा गरीब-से-गरीब और धनी-से-धनी व्यक्ति भी बाँस का उपयोग समान रूप से करते हैं।

किसी भी वृक्ष को कार्य में लाने के समय काटने-फाड़ने आदि के लिए विशिष्ट प्रकार के अस्त्र की तथा उन अस्त्रों के शिक्षित संचालकों की जरूरत होती है। सामूहिक रूप से उन अस्त्रों को बनानेवाले तथा व्यवहार में लानेवाले भी नहीं प्राप्त होते हैं। उन अस्त्रों के प्रयोग के लिए भी खास तौर-तरीके से शिक्षा लेने की आवश्यकता होती है। लेकिन, बाँस एक ऐसी वनस्पति है, जिसके लिए विशेष अस्त्र की आवश्यकता नहीं है। एक मामूली अस्त्र या काँते आदि से बाँस काटे जाते हैं और उससे महीन-से-महीन कमचियाँ बनाई जाती हैं तथा उन कमचियों से तरह-तरह की कलात्मक सुन्दर चीजें बनाई जाती हैं। भारतीय बच्चे, जवान और बूढ़े अपने-अपने ढंग से बाँस का उपयोग अनेक कार्यों में करते हैं।

यों तो, दुनिया में ७०० प्रकार के बाँस हैं; पर भारत में १३६ प्रकार के बाँस पाये जाते हैं। यथा—सुन्दर-चिकनी त्वचावाले बाँस, नल की आकृतिवाले हलके बाँस, लचीले

किन्तु मजबूत बाँस, जो किसी भी ओर मोड़े जा सकते हैं या जिन्हें किसी भी आकार में विभक्त किया जा सकता है अथवा बहुत ही पतली-पतली कमचियाँ बनाई जा सकती हैं। इसी कारण प्राचीन काल से ही गृह-सम्बन्धी अनेक कार्यों में, वास्तुकला अथवा कृषि-सम्बन्धी वस्तुओं में तथा औद्योगिक कला-कृतियों में बाँस व्यवहृत होता आ रहा है। हमारे देश में बाँस से काम करनेवाले कारीगरों की कमी नहीं है। कहीं-कहीं ऐसे भी कारीगर हैं, जो बाँस से उत्तम-से-उत्तम बहुमूल्य शिल्प-सामग्री बनाते हैं। बाँस के कार्यों का इतना विस्तृत रूप है, जो भारत के सभी प्रान्तों में बाँस के काम करनेवालों की अलग जाति ही बन गई है। साथ ही ऐसा कोई गाँव नहीं है, जिसमें या जिसके आस-पास यह जाति नहीं हो। ये लोग केवल बाँस के पेशे से ही अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करते हैं। लेकिन वे अभी तक जिस रूप में बाँस का काम करते आ रहे हैं, उसका रूप कलात्मक नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि, जापान आदि जगहों से बाँस की बनी वस्तुओं के जो नमूने हमारे देश में आ रहे हैं, उन नमूनों के सामने हमारे यहाँ के पेशेवर कारीगरों की चीजें बराबरी में नहीं टिक पातीं। उनकी बराबरी में नहीं आने के कारण ही बाजार में भारतीय कारीगरों की चीजों की माँग तेज नहीं होती है। हाँ, एक जमाना था कि भारतीय कारीगरों द्वारा बनाई बाँस की सामग्री सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और उच्च कोटि की होती थी। आज भी कई प्रान्तों में उनके नमूने हमें उपलब्ध होते हैं। इनमें आसाम, त्रिपुरा, बिहार, मद्रास आदि प्रमुख हैं। आज भी यदि भारतीय कारीगरों को आधुनिक औजारों के व्यवहार की शिक्षा दी जाय और उन्हें वस्तुओं को कलात्मक बनाने की ओर आकृष्ट किया जाय, तो इसमें संदेह नहीं कि बाँस के कार्य का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल हो जाय और हमारी आर्थिक दुरवस्था भी सुधर जाय।

बाँस और उससे बननेवाले सामान

बाँस पोले नल के आकार के होते हैं। उनमें 'सिलिकेट ऑक्साइड' (पाषाणमय प्राणतत्त्व) होता है, जिससे बाँस की मजबूती में स्थायी शक्ति स्वतः काम करती है। यही कारण है कि बाँस हलका होते हुए भी अपने से कई गुना अधिक वजन को वहन कर लेता है। बाँस की मजबूती के आधार पर कुछ बाँसों के और उनसे बननेवाली वस्तुओं के नाम नीचे दिये जा रहे हैं। इनकी मजबूती के साथ इनकी उपयोगिता की जानकारी प्राप्त हो सकती है। हरौती, चाभ, पहाड़ी, मकोर, फूलबाँस, बसहा, जोन्हिया आदि जाति के बाँस अपनी मजबूती के लिए प्रसिद्ध हैं। उपयोगिता की दृष्टि से भी इनकी अपनी अलग विशेषता है। जैसे—

१. मकोर से—कूँची, छड़ी, बुनने की सामग्री आदि।

२. चाभ से—घर-गृहस्थी के व्यावहारिक सामान।

३. हरौती से—छप्पर के कोरे, बीम, बर्गा, खूँटा, बैलगाड़ी के बल्ले, लाठी, मछली मारने की लग्गी, सीढ़ियाँ आदि।

(क) नलाकार बाँसों और गाँठों से बननेवाली वस्तुएँ; जैसे—चिमटा, पेंसिल, दाँत-खोदनी रखने के सामान, राख झाड़ने की तश्तरी, कम्पास आदि।

(ख) बाँस वाद्य-यन्त्र बनाने में भी व्यवहृत होता है। यथा—बाँसुरी, एकतारा, बाँसतरंग आदि। पहाड़ी तथा वन्य जातियों में इससे अनेक प्रकार के वाद्य-यन्त्र बनाये जाते हैं।

४. लचीले तथा आसानी से मोड़े जानेवाले बाँस से तौलिया, कोट आदि टाँगने की खूँटी, धनुष-तीर और तरकस, कुर्सी, टेबुल, मेहराब तथा खेल-कूद के सामान भी बनाये जाते हैं।

५. मजबूत तथा चमकदार सतहवाले बाँस से घर के भीतरी भाग के घेरा, छप्पर आदि सामान बनाये जाते हैं।

६. स्प्रिंग की तरह मुलायम और लचीले बाँस से सजावट-सम्बन्धी जाफरी, बिनाई के काम में आनेवाली चीजें, तराजू, पिंजड़े, खिलौने, स्केल, कम्पास, फ्रेम आदि सामान बनाये जाते हैं।

७. बाँस का सबसे अधिक महत्त्व यह है कि वे आसानी से मोड़े और फाड़े जाते हैं और उनसे पतली और छोटी-से-छोटी कमचियाँ बनाई जा सकती हैं। अन्य वृक्षों तथा वनस्पतियों में ये गुण नहीं होते।

हलके तथा लचीले बाँस पिंजड़े तथा टोकरियों के लिए बहुत उपयुक्त होते हैं। इन कार्यों के लिए बाँस से बढ़कर उपयुक्त अन्य कोई वस्तु नहीं है।

बाँस व्यावहारिक वस्तुओं अथवा कला-कृतियों के लिए भी उपयुक्त वस्तु है। बाँस के कार्य करने के हथियार भी बहुत साधारण होते हैं। केवल चीरनेवाली छुरी और आरी की ही जरूरत पड़ती है। जब कभी कोई व्यक्ति बाँस का कार्य करना चाहेगा, तब वह इन औजारों के द्वारा आसानी से विभिन्न प्रकार के कार्य कर सकता है तथा कलात्मक वस्तुएँ तैयार कर ले सकता है।

बाँस से तैयार होनेवाले अनेक प्रकार के कारू-कार्य में, केवल एक तेज छुरी से ही, विभिन्न कार्यों के लिए सूक्ष्म-से-सूक्ष्म कमचियाँ बनाई जा सकती हैं। जापान ने बाँस-शिल्प में आशातीत उन्नति की है और वैज्ञानिक दृष्टि से वेणु-शिल्प का अत्यन्त विकास भी किया है। इस वेणु-शिल्प के लिए समस्त संसार में जापान उन्नत है। बाँस के काम के लिए जापान ने एक-से-एक विशिष्ट औजारों का, कार्य की सुविधा की दृष्टि, से निर्माण किया है। लेकिन, भारत-जैसे देश में साधारण औजार से ही बढ़िया-से-बढ़िया काम होता रहा है। चूँकि, बाँस भारत के विभिन्न प्रान्तों में उपलब्ध है, इसीलिए बाँस-शिल्प को अधिक-से-अधिक आगे बढ़ाने के लिए हमें औजारों के निर्माण में भी निपुणता लाने की आवश्यकता है।

भारत में बाँस के प्रयोग

भारत में बाँस के निम्नलिखित प्रयोग होते हैं—(१) भारत में बाँस मकान बनाने के काम में अधिक आता है। मकान के शहतीर आदि के लिए लम्बे-गोले बाँस

काम में लाये जाते हैं और फर्श तथा दीवार बनाने के लिए इसे फाड़कर चटाई की तरह बुन लेते हैं। ईंटों से मकान बनाते समय मचान के लिए बाँसों की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त सीढ़ी, नावों के मस्तूल, पहिये की धुरी (axle), खटिया, लाठी, टेण्ट के खम्भे, ब्रश (brushes), पाइप (pipes), पंखा, छाते की बेंट, खिलौना, तीर, टोपी, टोकरी, चटाई, टिफिन के लिए बक्स (tiffin-boxes), कुर्सी-टेबुल वगैरह वस्तुएँ भी बाँस से बनती हैं।

२. Oxytenenthera monostigma (ओक्सिटेनेन्थेरा मोनोस्टिग्मा) तथा Pseudostachyam polymorpha (सीउडोस्टाकियम पोलिमोर्फा) से छाते की बेंट (umbrella handle) बनती है।

३. Arundinaria falcata (अरुण्डिनारिया फाल्केटा) से टोकरी, हुक्के की नली (Hookah-tubes) और मछली मारने की लग्गी (fishing rod) बनती है।

४. बाँस के फल, धान के फल की तरह पर कुछ बड़े होते हैं और अकाल के समय खाद्य-पदार्थ की तरह उपयोग में आते हैं।

५. बाँस की पत्तियाँ जानवरों के लिए खाद्य पदार्थ हैं। जंगलों में बाँस की पत्तियाँ हाथियों का प्रमुख भोजन होती हैं।

६. नवजात बाँस का कोमल भीतरी भाग तरकारी और अँचार बनाने के लिए उपयोग में आता है।

७. भारतवर्ष में बाँस का सबसे बड़ा उपयोग कागज बनाने के काम में होता है, जो इसके सर्वनाश का कारण है।

८. आजकल बाँस से रेयन (rayon) भी बनने लगा है।

बाँस द्वारा बननेवाली शिल्प सामग्री के निर्माण में आवश्यक जानकारी—

१. बाँस का उत्पादन करना अथवा खरीदना।

२. कार्यों के अनुसार बाँस का चुनाव।

३. वस्तुओं के योग्य बाँस को काटना, रँगना तथा कमचियाँ बनाना।

४. कमचियों से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाना।

बाँस—एक अध्ययन

बाँस की वस्तुएँ बनाते समय अपनी साधारण बुद्धि का उपयोग करना जरूरी है। जिस व्यक्ति को बाँस का अच्छा ज्ञान है, वह बाँस के कार्य के लिए तरह-तरह के उत्तम हथियार बना सकता है और उसमें वस्तु-निर्माण के लिए आसान और सरल तरीके काम में लाकर सुन्दर वस्तुएँ तैयार कर सकता है।

भारत-जैसे देश में जगह-जगह बाँस का काम अधिकतर डोम जाति के लोग करते हैं। उन्हें ही बाँस का समुचित ज्ञान है। हम यह भी देखते हैं कि लोहे की प्राप्ति की सुलभता के अनुसार जगह-जगह के औजार अपने ढंग के होते हैं। इसे देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्थान-विशेष के शिल्पी अपनी सुविधा के लिए, जब

कभी उन्हें किसी नये औजार की आवश्यकता पड़ती है, तब वे उसे बना लिया करते हैं। जापान में भी मुझे इसी तरह की बातें देखने को मिलीं। वहाँ बाँस-शिल्प-संस्थाओं तथा किसानों में जगह-जगह उनकी सुविधाओं के लिए अलग-अलग औजार व्यवहार में लाये जाते हैं। अतः, बाँस-शिल्प में उन्नति प्राप्त करने के लिए बाँस का पूर्ण ज्ञान तो अपेक्षित है ही, साथ ही शिल्पी एवं बाँस-शिल्प-संस्थाओं को यह ध्यान में रखना चाहिए कि वे बाँस-शिल्प की विभिन्न वस्तुओं के निर्माण के लिए उपयुक्त औजारों का भी आविष्कार कर लें।

बाँस-उत्पादन के लिए भूमि

संसार में ७०० से अधिक प्रकार के बाँस पाये जाते हैं। गर्म तथा सर्द दोनों प्रकार के क्षेत्रों में ये उपलभ्य हैं। लेकिन, अधिकतर बाँस के विभिन्न प्रकार, गर्म क्षेत्र में ही उत्पन्न होते हैं। हमारे यहाँ नया बाँस लगाने का मौसम जेठ और आषाढ़ है।

उष्ण कटिबन्ध के बाँस बहुत लम्बे होते हैं। उनकी गाँठों के बीच की दूरी भी लम्बी होती है। ये बाँस बहुत अधिक मुलायम होते हैं, पर कलात्मक वस्तुओं के बनाने योग्य नहीं होते हैं। इस तरह के बाँस, दक्षिण-पूर्व एशिया में अधिकतर उत्पन्न होते हैं। हमारे देश में भी ऐसे बाँस सर्वत्र उत्पन्न होते हैं।

बाँस के प्रकार

बाँस लम्बाई और मुटाई के अनुसार दो से अधिक प्रकार के होते हैं। हम यह भी देखते हैं कि कोई बाँस ठोस होता है और कोई पोला होता है। ठोस बाँस का उपयोग अधिकतर काठ की तरह गृहादि-निर्माण में होता है और पोले बाँस का उपयोग घरेलू शिल्प के उपयोग में आता है। यह सही है कि बाँस-शिल्प में जापान ने विशेष रूप से अनुसंधान किया है। जापान के शिल्पियों ने बाँस को नर और मादा—दो प्रकार का बतलाया है। अक्सर वे लम्बे तथा मोटे बाँस को नर कहते हैं और छोटे तथा पतले बाँस को मादा कहते हैं। जैसा हमारे देश में ठोस और पोले के अनुसार बाँस का उपयोग होता है, उसी तरह जापान के बाँस-विशेषज्ञों ने भी स्वीकार कर लिया है कि बाँस से दो तरह के काम सम्पन्न होते हैं। ठोस बाँस से गृह-निर्माण आदि कार्य और पोले बाँस से शिल्प-उद्योग-धंधे के कार्य होते हैं।

हमारे यहाँ 'चाभ' और 'हरौती' लम्बे बाँस होते हैं। कहीं-कहीं 'मकोर' बाँस भी लम्बे पाये जाते हैं और उनकी मुटाई अधिक होती है। जैसा ऊपर कहा गया है, ठोस और पोले बाँस का उपयोग अलग-अलग होता है। उसी के अनुसार जापान के शिल्प-विशेषज्ञों ने भी पोले बाँस की संख्या, उसके विभिन्न नामों के अनुसार, ७० तरह की बताई है। जापान में अलग-अलग जाति के बाँस के अलग-अलग नाम हैं और उनकी उपयोगिता भी अलग-अलग है।

हमारे देश के विभिन्न प्रान्तों में बाँस के विभिन्न नाम हैं। संस्कृत-भाषा में तो, इसकी उपयोगिता के आधार पर कई नाम आये हैं। जैसे—बहुपल्लव, धनुर्द्रुम,

बृहत्तृण, धानुष्य, दृढग्रन्थ, दृढकाण्ड, दुरारोह, कमठ, कंटकी, कंटालु, कीचक, मृत्युबीज, मस्कर, वंश, वेणु, यवफल आदि।

हिन्दी में—बाँस, काँटा बाँस, मगर बाँस, मल बाँस, कंटक। (जो बाँस विशेषतः औषध के कार्य में, आयुर्वेदानुसार, व्यवहृत होता है, उन्हीं बाँसों के नाम यहाँ दिये गये हैं।)

बंगाल में—बाँस, बेहुर बाँस।

बम्बई में—दोंगी, कलक, माडमे।

मध्यप्रदेश में—कंटक।

गुजरात में—बाँस तीनकोर।

महाराष्ट्र में—कलक, बाबु।

पंजाब में—नल, मगर, मगेरी।

तमिल में—अवल, अवु, वेणु।

तेलुगु में—बोंगु, बोगूवद्दे स।

सन्थाली में—मद।

फारसी में—नाई।

उर्दू में—बाँस।

अँगरेजी में—स्पेनी बम्बोसा (Spiny Bambosa), थॉर्नी बम्बू (Thorny Bamboo)।

लैटिन में—बांबुसा आरंडीनेसिया (Bambusa arundinacea)।

भारत में जो १३६ प्रकार के बाँस पाये जाते हैं, उनमें निम्नलिखित बाँस अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके हिन्दी नाम उपलब्ध नहीं हो सके, अतः अँगरेजी नामों के साथ संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

१. Arundinaria wightiana (अरुण्डिनारिया वाइटियाना)—इसकी लम्बाई ६ से १० फुट तक होती है और यह नीलगिरि पहाड़ पर पाया जाता है।

२. Arundinaria recemosa (अरुण्डिनारिया रेसिमोजा)—इसे नैपाली में मालिंग कहते हैं। यह पूर्वीय हिमालय में ६,००० से १०,००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

३. Arundinaria falcata (अरुण्डिनारिया फाल्काटा)—जौनसार (टेहरी-गढ़वाल) में इसे रींगल कहते हैं। ६ से १० फुट तक इसकी लम्बाई होती है। पश्चिमी हिमालय में ४,००० फुट से ७,००० फुट तक की ऊँचाई में यह पाया जाता है।

४. Arundinaria spathflora (अरुण्डिनारिया स्पैथिफ्लोरा)—इसकी लम्बाई १२ से २० फुट तक होती है। यह सतलज नदी से नैपाल तक ७,००० से ६,००० फुट की ऊँचाई तक में पाया जाता है।

५. Bambusa tuldat (बम्बुसा टुल्डा)—हिन्दी में इसे पेका तथा बँगला में टुल्डा, मिटेंगा या जोवा कहते हैं। यह करीब ७० फुट लम्बा होता है। इसकी प्रत्येक गाँठ से शाखाएँ निकलती हैं। यह बंगाल, विहार और आसाम में पाया जाता है।

६. Bambusa polymorpha (बम्बुसा पोलीमोर्फा)—यह बाँस ८०-६० फुट लम्बा होता है और इसकी मोटाई करीब ६ इंच होती है। यह बाँस सुन्दर, सीधा और प्रायः शाखा-रहित होता है। यह पूर्वी बंगाल और आसाम में पाया जाता है।

७ Bambusa arundinaria (बम्बुसा अरुण्डिनारिया)—यह बाँस कँटीला होता है। मध्यप्रदेश में इसे कटंग कहते हैं। यह ८०-१०० फुट लम्बा तथा ६-७ इंच मोटा होता है। यह कुमाऊँ, उत्तरी कनारा (मैसूर), नीलगिरि, मध्यप्रदेश, विहार और उड़ीसा में पाया जाता है।

८. Oxytenenthra nignociliata—यह ३०-५० फुट लम्बा और करीब ४ इंच मोटा होता है। यह बिलकुल हरा होता है। कहीं-कहीं पर पीले रंग का लम्बा धब्बा बाँस पर लगा होता है। यह गारो पहाड़ तथा अन्दमान में पाया जाता है।

६. Oxytenenthra monostigna (अक्सीटेनेन्थरा मोनोस्टिग्ना)—यह करीब २० फुट लम्बा और करीब १ इंच मोटा होता है और पश्चिमी घाट के पहाड़ों में पाया जाता है।

१०. Dendrocalamus strictus (डेण्ड्रोकैल्मस स्ट्रीक्टस)—इसे हिन्दी में केवल बाँस कहते हैं। यह करीब-करीब बिलकुल ठोस होता है। इसकी लम्बाई २०-२५ फुट तक तथा मुटाई १ से ३ इंचों तक होती है। प्रथम तथा द्वितीय वर्ष में इसका रंग हरा होता है, पर तृतीय वर्ष के बाद इसका रंग पीला हो जाता है। यह आसाम और उत्तरी-पूर्वीय बंगाल को छोड़कर करीब सभी प्रान्तों में पाया जाता है। विहार के गाँवों में जो बाँस पाये जाते हैं, वे सभी इसी प्रकार के होते हैं। इसे रोपा बाँस कहते हैं।

११. Dendrocalamus homiltonii (डेण्ड्रोकैल्मस होमिल्टोनिआई)—हिन्दी में इसे कंघी बाँस कहते हैं। यह ८०-६० फुट लम्बा तथा ६-७ इंच व्यास का मोटा होता है। यह बाँस वहुत ही पोला होता है; क्योंकि इसकी दीवार की मुटाई वहुत ही पतली होती है।

१२. Dendrocalamus giganteus (डेण्ड्रोकैल्मस जाइगेण्टियस)—यह ८०-१०० फुट तक लम्बा होता और ८-१० इंच व्यास तक का मोटा होता है। यह भारतीय बाँसों में सबसे बड़ा होता है। आसाम, बंगाल तथा विहार के नैपाल तराईवाले भाग में और दक्षिणी भारत में पाया जाता है।

१३. Cephalostachyum pergracile (सेफालोस्टाकियम परग्रेसाइल)—यह ४०-५० फुट लम्बा तथा ३ इंच व्यास का होता है। यह भी बहुत पोला होता है। इसकी कोंपल (जिसे हम लोग गाँवों में सिपुली कहते हैं) नारंगी रंग की या ईंट के रंग की तरह लाल होती है। यह सिंहभूमि, छोटानागपुर और नागा पहाड़ में पाया जाता है।

१४. Melocanna bambusoides (मेलोकाना बैम्बुसाइडिस)—इस बाँस की विचित्रता है कि यह करीब २-२ फीट की दूरी पर जमीन के अन्दर से निकलता है। ये बाँस बिलकुल सीधे ३०-५० फुट लम्बे और १½-२½ इंच मोटे और पोले (फोंफड़े) होते हैं। ये गारो, खासी और लुसाई पहाड़ों में पाये जाते हैं।

१५. **चाभ**—चाभ सबसे मजबूत बाँस होता है। यह जितना अधिक मोटा और पोला होता है, उतना ही अधिक पानी और धूप सहन करता है। इसके आसानी से बहुत पतले भाग बनाये जा सकते हैं और चाहे जिस रूप में इसे मोड़ भी सकते हैं। इसलिए मुख्यतः यह पिंजड़े, टोकरी, डगरा, डलिया, पेटी आदि के लिए उपयुक्त होता है।

'चाभ' बाँस के लिए न अति शीत और न अति उष्ण जलवायु की जरूरत पड़ती है। यह भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में पाया जाता है। यह जापान के मध्य तथा दक्षिण के जिलों में उपजता है। चाभ बाँस जापान के क्योटो सादो-द्वीप, किशु और सिकोकु में उपजाया जाता है। यह भारत के उन हिस्सों में अधिकतर उत्पन्न होता है, जहाँ की जलवायु समशीतोष्ण होती है। पहाड़ी तराई में यह बाँस उत्तम प्रकार का पाया जाता है; क्योंकि वैसे स्थानों की मिट्टी मजबूत होती है और उसे आँधी आदि से सर्वदा बचाव मिलता है। ऐसे स्थानों में बाँस काफी लम्बे होते हैं और उस बाँस की अच्छी उपज के लिए छाया भी मिल जाती है।

सबसे लम्बे किस्म का चाभ ६० फुट तक का होता है। ऐसे चाभ बाँस की गाँठों के बीच की दूरी २ फुट तक की होती है। जलवायु के अनुसार, कहीं-कहीं चाभ की गाँठों की दूरी और लम्बी होती है।

जापान में बाँसों के विभिन्न नामकरण किये गये हैं, लेकिन भारत में उपयोगिता के आधार पर अभी तक वैसा नहीं हो सका है। जापान के ही समान भारत में भी अनेक प्रकार के 'चाभ' बाँस लम्बे, पतले और मोटे होते हैं। वहाँ की तरह यहाँ बिना गाँठ के बाँस उपलब्ध नहीं हैं। वहाँ तो ऐसे बाँस पाये जाते हैं, जिनके सिरे पर ही कुछ गाँठें होती हैं। ऐसे बाँस भारत में बहुत कम हैं। ऐसे बाँस का हरेक भाग उपयोग में आता है।

चाभ बाँस करीब-करीब जापानी 'मादाके' बाँस के समान ही होता है, बल्कि उससे थोड़ा अधिक मुलायम होता है। दोनों बाँसों की कमच्चियाँ बनाकर परीक्षण किये जाने पर पाया गया है कि 'मादाके' कमची मोड़ते समय टूट गई। कारण यह है कि चाभ में 'मादाके' से अधिक स्निग्धता है। लेकिन, जापान के बाँस अधिक चमकदार होते हैं। इस कारण रँगे जाने पर जो चमक उसमें आती है, वह भारतीय बाँसों में नहीं आ पाती।

'चाभ' की जाति का एक दूसरा बाँस जापान में होता है, जिसे 'हातिकु' कहते हैं। 'हातिकु' की कोंपल भारतीय 'चाभ' और जापानी 'मादाके' की कोंपल से अधिक तेजी के साथ बढ़ती है। 'हातिकु' की कोंपलों की त्वचा पर रोम नहीं होते हैं।

चाभ की ही जाति का एक दूसरा बाँस, 'चाभ' से आकार में छोटा होता है, जिस पर मोम की तरह मुलायम एक प्रकार की रेणु पाई जाती है। इसे अत्यन्त आसानी से चीरकर पतली-से-पतली कमचियाँ बनाई जा सकती हैं। लेकिन, यह बहुत बड़ा होता है। इस कारण मजबूत कामों के लिए इसका व्यवहार खूब होता है। मुख्यतः इससे ताजिये, आकाशदीप के ढाँचे तथा 'चिक' बनाये जाते हैं। पतंग उड़ाने की लटाई भी ऐसे ही बाँस की कमचियों से बनती है। इस प्रकार चाभ की कई जातियाँ होती हैं। सामान्यतः, मकोर आदि भारतीय बाँस जापानी बाँस के समान ही होते हैं। किन्तु, भारतीय बाँसों में यही भिन्नता पाई जाती है कि वे जापानी बाँसों से अधिक मुलायम और रसीले होते हैं। इस कारण कीड़े इनमें बहुत जल्द लग जाते हैं।

१६. **मकोर**—यह भी 'चाभ' श्रेणी का ही बाँस है; लेकिन चाभ की तरह लम्बा और मोटा नहीं होता है। यह जल्दी बढ़कर तैयार होता है। इसकी गाँठों में रेशे नहीं होते। इसके ऊपर एक तरह की रेणु पाई जाती है। यह बाँस कड़ा होता है। धनुष आकाशदीप, ताजिये के ढाँचे, मेहराब, चिक आदि बनाने के कार्य में इस बाँस का भी उपयोग विशेष रूप से होता है।

१७. **हरौती**—'चाभ' की पैदावार के लिए जो स्थान उपयुक्त है, हरौती के लिए भी वही स्थान उपयुक्त है। अर्थात्, हरौती के लिए भी समशीतोष्ण जलवायु की आवश्यकता है।
हरौती बाँस गठीला होता है। इस बाँस में छेद बहुत छोटा होता है। इसकी गाँठ की दूरी निकट-निकट पर होती है। यह बहुत मजबूत होता है। इसका उपयोग गृह-निर्माण के कार्य में विशेष रूप से होता है। इसके कोरे, बीम आदि लोहे की तरह टिकाऊ होते हैं। किन्तु कमचियों से बननेवाले सामान में इसका व्यवहार कम होता है; क्योंकि आसानी से यह फाड़ा नहीं जा सकता। हमारे देश में भी ऐसे बाँस हैं, जिनकी कोंपलों का भीतरी भाग भोजन के काम में आता है। इसके लिए हरौती मुख्य है। जब यह बाँस जमीन से निकलता है, उस समय इसकी कोंपलों के भीतरी भाग का अँचार भी बनाया जाता है।

१८. **रोपा बाँस**—यह भारत के प्रायः सभी स्थानों में पाया जाता है। इसका आकार छोटा होता है। इसकी ऊँचाई प्रायः ३० से ३५ फुट तक और इसका व्यास २ से ३½ इंच तक होता है। यह चिकना और लचीला होता है। इसकी गाँठों की दूरी बहुत कम होती है। यद्यपि यह आसानी से नहीं फाड़ा जा सकता है, तथापि इसकी पतली कमचीदार परतों से छींटा, बेनी, चटाई, पानी उलीचने की सैर, बड़ा दौरा, टोकरी मौनी, सूप आदि सामान खूब बनते हैं। इसकी लाठी और सोंटे अच्छे होते हैं।

मकोर की एक दूसरी जाति के बाँस को जापान में 'सिज़ुताके' कहा जाता है इसकी ऊँचाई केवल १० से १५ फुट तक और व्यास आधे इंच से एक इंच तक होता है यह बाँस भी मुलायम होता है। इससे पिंजड़े, टोकरियाँ आदि बनते हैं। इसका भीतरी भाग अधिकतर खोखला होता है।

१९. **पहाड़ी बाँस**—यह भारत के पहाड़ी भागों में पाया जाता है। इसके पत्ते लम्बे-लम्बे होते हैं। इसकी ऊँचाई भी १० से १५ फुट तक और व्यास आधे इंच से एक इंच तक होता है। यह कुछ टेढ़ा होता है, अतः किनारा मढ़ने का काम इससे बहुधा लिया जाता है। इससे पिंजड़े और टोकरियाँ भी बनती हैं। यह लचीला और मजबूत होता है और पथरीली तथा कड़ी भूमि में उपजता है। मकोर जातिवाले उपर्युक्त बाँस से यह ज्यादा मजबूत तथा निसन (छिद्र-रहित) होता है। इसकी फराठी से घर के छप्पर बिटे जाते हैं और विना फाड़े बाँस से भी मजबूत छप्पर बनाये जाते हैं। इसकी लाठी बड़ी मजबूत होती है। भारत में यही बाँस अधिकतर कागज बनाने के काम में लाया जाता है।

२०. **फूल बाँस**—लम्बाई में यह छोटा होता है और इसमें छिद्र बहुत पतला होता है। यह बहुत मुलायम तथा हल्का भी होता है। इसकी कमचियों से आकाशदीप के ढाँचे, बाँसरी, मछली पकड़ने की बंसी, ताजिया, गुड्डी, लटाई इत्यादि बनाये जाते हैं। प्राचीन काल में इससे लिखनेवाली कलम भी बनती थी। इस बाँस से छाते की डंटी बनाई जाती है।

आसाम के बाँसों के नाम और विवरण

१. **माखल**—इस बाँस में दूर-दूर पर गाँठें होती हैं। अन्य बाँसों की अपेक्षा इसकी यह विशेषता है कि इसमें किसी तरह के कीड़े नहीं लगते। बाँस के कारीगर इसे ज्यादा पसन्द करते हैं।

२. **गेन्हिया**—यह बिलकुल ठोस और पतला होता है। इसका उपयोग विशेषतः छड़ी और लाठी के लिए होता है।

३. **बसहा**—इसकी उपज भारत के पड़ोसी देश नैपाल में बहुतायत से होती है। यह खूब मोटा होता है। प्रायः नैपाली लोग कँटिया—तेल नापने और गाय-भैंस दुहने के बरतन—बनाने के काम में लाते हैं।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित बाँस त्रिपुरा (आसाम) के आसपास में होते हैं, जिनका विवरण नीचे दिया जाता है—

४. **मूली बाँस**—इसकी लम्बाई लगभग ८० से ८६ फुट तक की होती है। यह जड़ से आरम्भ कर $\frac{2}{3}$ (दो-तृतीयांश) पर्यन्त एक समान मोटाई का होता है। इसकी गाँठें ऊँचाई लिये होती हैं। यह सीधा और पतला होता है। प्रायः इसका उपयोग प्रत्येक कार्य में होता है। इसका ऊपरी भाग ८ फुट से १२ फुट तक बराबर मोटाई में होता है। घर की छत में देने के लिए इसका व्यवहार अधिक होता है। कृषक इसे विशेष तौर पर पसन्द करते हैं; क्योंकि उनके दैनिक व्यवहार के कामों में खूब आता है। छत में लगाने पर औसतन इसकी आयु दो वर्ष की होती है। सात से नौ महीने के बाँस का ही व्यवहार प्रायः छत में देने के लिए किया जाता है।

५. **माखालि**—यह छह से आठ इंच मोटा होता है। यह लम्बाई में ६० से ६० फुट तक का होता है। यह मूली बाँस की तरह सीधा होता है, पर इसकी गाँठें उसकी तरह ऊँची नहीं होतीं। इसकी विशेषता यह है कि इसकी त्वचा सफेद, चमकदार, पर कड़ी होती है। इससे मोढ़ा, कुर्सी, टोकरी आदि आसानी से बनते हैं, जो मजबूती में अपने ढंग के होते हैं। इन कामों में एक वर्ष से ढाई वर्ष की आयु के बाँस लिये जाते हैं।

६. **मिरतिंगा**—यह भी माखालि की ही जाति का है। इसके भीतरी भाग का रंग गुलाबी होता है। यह ऊपर-नीचे समान आकार का होता है। यह छप्पर बनाने तथा खूँटा आदि के काम में आता है। इसकी कमचियों की अच्छी और मजबूत फूलदानी बनती है। किन्तु इस काम में इसके मूल भागों का ही व्यवहार किया जाता है। इसमें अलंकरण के लिए खुदाई का काम सुन्दर होता है।

७. **वराक**—इसकी लम्बाई १६० फुट की और मुटाई १६ इंच तक की होती है। यह उपर्युक्त सभी बाँसों से बड़ा, मोटा और सशक्त होता है। इसमें भी छिद्र अत्यन्त कम होता है और गाँठें ऊँची तथा घनी होती हैं। यह खूब ठोस होता है। इससे बनी टोकरी, फूलदानी आदि अच्छी होती है। दैनिक व्यवहार की वस्तुओं के लिए यह बहुत ही उपयोगी है। अपनी ठोस प्रकृति के कारण यह लकड़ी की जगह व्यवहार में आता है।

८. **वारी**—इसकी लम्बाई १६० से २०० फुट तक होती है। वराक की तरह इसकी गाँठें ऊँची नहीं होतीं। मुटाई तो इसकी २० इंच तक की होती है। अपनी मुटाई के अनुसार यह फोंफला भी खूब होता है। सामानों के रखने के लिए इसका चोंगा अच्छा बनता है। पेंसिल, ब्रस, अलंकार, सिगरेट आदि रखने के लिए छोटा खोल-बक्स भी सुन्दर बनता है। इसके अगाड़ी भाग से खिलौने आदि भी बनते हैं।

९. **वोम**—यह अधिकांश तौर पर माखालि बाँस से मिलता-जुलता है। यह लम्बाई में १०० फुट तक और मुटाई में १२ इंच तक का होता है। अन्य बाँसों की अपेक्षा यह नरम होता है और इसकी चटाई सुन्दर होती है।

१०. **कनक कँइच**—यह लम्बाई में २५ से ३० फुट से बड़ा नहीं होता। इसकी मुटाई सिर्फ ३ से ४ इंच तक की होती है। यह मछली पकड़नेवाली बंसी बनाने के काम में बहुत आता है। यह मद्रासी और सिंगापुरी बेंत की तरह अनेक कामों में व्यवहृत होता है। इससे कुर्सी, टेबुल, टोकरी तथा बक्स अच्छे बनते हैं।

११. **खलाई या पहाड़ी**—इसकी लम्बाई ४० फुट तक की होती है तथा छप्पर छाने के काम में अधिकतर व्यवहृत होता है।

१२. **ढाल**—अन्य बाँसों के अतिरिक्त त्रिपुरा (आसाम) का यह पतला बाँस १०० फुट तक लम्बा होता है। इसकी गाँठों की दूरी ३ फुट की होती है। इतनी दूरी पर होनेवाली गाँठ दूसरे किसी बाँस में नहीं होती। तीन या चार मास के बाँस का व्यवहार बेंत के सदृश उत्तम होता है। यह चटाई, पटिया आदि बनाने में परम

उपयोगी साबित हुआ है। किन्तु, आजकल कागज बनाने के काम में यह अधिक व्यवहृत हो रहा है, अतः इसके नष्ट हो जाने का भय है।

पंजाब प्रदेश के बाँसों का विवरण

कुछ बाँस के नामों के साथ उनकी उपयोगिता का उल्लेख पहले किया जा चुका है। लेकिन, ऐसे बहुत-से बाँस हैं, जिनका उपयोग, उनके गुणों के आधार पर, अभी तक नहीं हुआ है और न उनका नामकरण ही हुआ है। प्रायः यह देखा गया है कि जिन बाँसों के नामकरण हो गये हैं और जिनका व्यवहार हो रहा है, वे ही बाँस प्रायः भारत में सर्वत्र व्यवहृत होते हैं। व्यवहार करने का ढंग भी एक ही जैसा है और वस्तुएँ भी प्रायः एक ही जैसी बनती हैं।

पंजाब प्रदेश में लगभग १०० प्रकार के बाँस उपलब्ध हैं, पर वहाँ भी प्रायः आठ-दस प्रकार के ही बाँस व्यवहार में लाये जाते हैं। इनमें से कुछ बाँसों के विवरण अँगरेजी नामों के साथ नीचे दिये जा रहे हैं—

१. Dendrocalamus strictus—यह बाँस प्रायः प्रत्येक कार्य में व्यवहृत होता है। इसकी जाति मादा है और व्यापार-कार्य में अधिकतर इसका उपयोग होता है। किन्तु, मजबूतीवाले कामों में इसका व्यवहार विशेष रूप से होता है।

इसका बाहरी और भीतरी दोनों भाग अत्यन्त चिकना और चमकदार होता है। किसी-किसी भूमि का यह बाँस बहुत लम्बा होता है। यह अत्यन्त गठीला और इसमें डालियाँ अधिक होती हैं। यह अकेले १४-१५ प्रकार का होता है।

२. Bambusa Arundinacea—यह एक प्रकार का जंगली बाँस है और भारत के प्रायः सभी स्थानों में पाया जाता है। कहीं इसकी जड़ रोपी भी जाती है। किसी-किसी जगह इसे 'रोपा' बाँस कहते हैं। इसकी लम्बाई भूमिविशेष के कारण ५० से १२० फुट तक की होती है और मुटाई ५ इंच से ७ इंच। जब यह कोठ में होता है, तब कोठ के सभी बाँस ऐसे सटे और परस्पर उलझे होते हैं कि वहाँ से एक बाँस बड़ी कठिनाई से निकाला जा सकता है। बाँस के भीतर छेद छोटा होता है, अतः इसकी गठन ठोस होती है। इसलिए, इसका व्यवहार टेंट खड़ा करनेवाले बाँसों, खूँटे और टोकरी बनाने के सामानों में होता है। इसके पत्ते सद्यःप्रसूता भैंस और अन्य पशुओं के खाने के काम में भी आते हैं।

बंगाल प्रदेश के बाँसों का विवरण

१. Bambusa Tehda—यह बाँस बंगाल-प्रान्त के निचले हिस्से में बड़ी संख्या में पाया जाता है। इसमें हरापन और बाँसों से अधिक रहता है। पकने पर इसका रंग सुनहला हो जाता है। इसकी लम्बाई २० से ७० फुट तक की होती है और मोटापन में यह दो से चार इंच व्यास का होता है। घरेलू कार्यों में इसका व्यवहार ज्यादा होता है। इसका अगला भाग सीधा नहीं होता और बाँस के भीतर छेद छोटा रहता है।

२. Dunda Calamus Hamiltonva—यह बाँस भी ज्यादातर बंगाल और आसाम में ही मिलता है। यह कद में छोटा और इसकी लम्बाई १८ फुट तक की होती है। इसकी मुटाई लगभग ४ इंच अथवा कुछ अधिक होती है। यह जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, इसके रंग में परिवर्त्तन होता जाता है। स्वभावतः यह कुछ टेढ़ा होता है।

३. Bambusa Nutans—यह बाँस पकने पर भी हरा ही रहता है। इसकी लम्बाई २० से ४० फुट तक की होती है और मुटाई $१\frac{१}{२}$ से ३ इंच तक की होती है। इसका व्यवहार प्रत्येक कार्य में एक समान होता है।

४. Bambusa Balcooa—यह बाँस काफी मजबूत और बड़ा होता है। इसकी लम्बाई ३० से ७० फुट और मुटाई ३ से ६ इंच की होती है। रंग इसका भी हरा ही होता है। इसकी त्वचा मोटी होती है और भीतर का छेद $\frac{१}{३}$ इंच होता है। इसकी भी प्राप्ति बंगाल में ही होती है। इसकी त्वचा बहुत मोटी होती है, अतः इसे सीजन (Seasan) करना कठिन होता है। फाड़ने में भी कठिनाई होती है। समय से पहले काट लेने पर इसका व्यवहार किसी मजबूत काम में नहीं हो सकता।

इसकी कुछ विशेषताएँ हैं, जो इस प्रकार हैं—(क) नीचे से ऊपर तक की मुटाई प्रायः बराबर होती है। (ख) गाँठों के पास लगता है, जैसे जोड़ा गया हो। (ग) जहाँ दो गाँठें होती हैं, मालूम पड़ता है, जैसे यहाँ विभाजन किया गया है। (घ) इसकी कोंपलें ऐसी सटी रहती हैं कि दीवार जैसी लगती हैं और डालियाँ एक से दूसरी लिपटी होती हैं। (च) इसकी डालियाँ वसन्त की पतझड़ जैसी पत्रहीन होती हैं। (छ) डालियाँ निकलनेवाली गाँठ के पास का रंग तप्त लोहा-जैसा होता है।

उत्कल-प्रदेश के बाँस और उनका विवरण

उड़ीसा में अनेक प्रकार के बाँस होते हैं; किन्तु दूसरे प्रान्तों की तरह यहाँ भी न तो बाँस के सम्बन्ध में किसी तरह का अनुसन्धान हुआ है और न व्यावहारिक दृष्टिकोण से सबका नामकरण ही हुआ है। प्रायः बाँस के सम्बन्ध में भारतीय प्रदेशों की स्थिति एक-जैसी है। उड़ीसा में भी बाँसों की लम्बाई और मुटाई स्थान और जलवायु की प्रकृति पर ही निर्भर है। इस प्रान्त के 'बाणपुर' के जंगलों और देशी राज्यों के जंगलों के बाँस प्रायः अधिक मोटे और लम्बे पाये गये हैं।

उड़ीसा में प्रायः जो बाँस व्यवहार में लाये जाते हैं उनका विवरण निम्नलिखित है—

१. **काँटा बाँस**—इसकी जड़वाला भाग अत्यन्त गठीला होता है, और भीतरी भाग में बारीक छोटा छेद होता है। अपनी इस ठोस प्रकृति के कारण ही मजबूतीवाले कामों में यह व्यवहृत होता है। जैसे—घर के छप्पर बनाने, खम्भे और पशु बाँधने के खूँटे के काम में आता है। इसके अगले भाग में छेद बड़ा होता है और यह भाग ज्यादा फोंफड़ा होता है। इसको उड़ीसा में 'इवा' बाँस कहा जाता है। इसकी कमचियाँ बनाकर

बेड़ा तैयार किया जाता है। इससे मछली पकड़ने के विभिन्न प्रकार के जाल, मोढ़ा, बैलगाड़ी का ढाँचा आदि बनते हैं। इस बाँस की लम्बाई ५० और ६० फुट तक की होती है और मुटाई १½ फुट की होती है। इसके अगले भाग की गाँठों की दूरी डेढ़-डेढ़ फुट तक की होती है। इसे काँटा बाँस इसलिए कहते हैं कि इसकी डालों में काँटे होते हैं।

२. **सुन्दर कणिया बाँस**—यह बाँस बहुत बड़ा और लम्बा होता है और इसकी गाँठें काफी दूर-दूर पर रहती हैं। यह बहुत नरम प्रकृति का बाँस है और बहुत फोंफड़ा होता है, अर्थात् इसमें बड़ा छिद्र होता है। इससे चटाई, नाव आदि के बेड़े बनते हैं, जिसे तलेई कहते हैं। इससे डगरा, टोकरी, डाला इत्यादि भी बनाये जाते हैं।

३. **सालिम्ब बाँस**—इससे बारीक और कलापूर्ण वस्तुएँ बनाई जाती हैं। पेटी, तलारी, छाता, छाते की बेंट आदि इससे विशेष रूप से बनते हैं। इसके भीतर छिद्र छोटा होता है। इसकी मुटाई कम होती है और फाड़ने पर इसमें चिकनापन दिखाई पड़ता है। यह बाँस जितना सीधा होता है, उतने सीधे दूसरी जाति के बाँस नहीं होते हैं। अन्य बाँसों की अपेक्षा इसकी गाँठें भी नजदीक-नजदीक होती हैं।

४. **बलागी बाँस**—यह मसृण और सुन्दर होता है। इसकी मुटाई कम और गाँठें दूर-दूर पर होती हैं। अन्य बाँसों की अपेक्षा यह अधिक पतला होता है। बहुधा इससे बाँसुरी आदि वाद्य-यन्त्र बनते हैं। चूल्हा फूँकनेवाली फोंफी भी इससे बनती है। इस बाँस से पक्षी पकड़ने का कम्पा (काँडिआकाठी) भी बनाते हैं। अन्य बाँसों की अपेक्षा इसमें लचक भी अधिक होती है और इसकी गाँठें डेढ़-डेढ़ फुट की दूरी पर होती हैं। मुटाई चार से पाँच इंच की होती है।

यहाँ एक बात कहनी आवश्यक है कि उपर्युक्त बाँसों से मिलते-जुलते अनेक प्रकार के बाँस भारत में उपलब्ध हैं, जिनका विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं है। उन अनेक प्रकार के बाँसों का अभी नामकरण भी नहीं हो पाया है। उपर्युक्त विवरणों में कुछ बाँस एक होते हुए भी नाम-भेद से वर्णित हैं।

बाँस की प्रकृति

बाँस की प्रकृति तथा उसके मूल्यांकन का अर्थ यह है कि औद्योगिक तथा कलात्मक वस्तुओं के निर्माण में बाँस का उपयोग किस सीमा तक होता है। बाँस के प्राकृतिक गुणों में उसकी उपज के स्थान-भेद से अन्तर आता है। इसीलिए उसके ऐसे गुणों की विषमता तथा उपयोगिता के तारतम्य के कारण उसके मूल्य में भी अन्तर आता है। इसके अतिरिक्त इसकी उपयोगिता का समुचित मूल्यांकन नहीं होनेवाले स्थान में भी इसके मूल्य में अन्तर आ जाता है। उपजवाले क्षेत्र और बाँस की प्रकृति में जो सम्बन्ध है और उस सम्बन्ध के विषय में बाँस के विशेषज्ञ जो विश्वास रखते हैं, वे नीचे दिये जाते हैं—

(१) उस क्षेत्र के बाँसों की त्वचा, जहाँ सूर्य का कड़ा और सीधा प्रकाश आता है, ललाई लिये होती है तथा बाँस अत्यन्त कड़ा होता है। लेकिन, बाँस के बड़े-बड़े बागीचों में,

जहाँ बाँस अत्यन्त घने उपजते हैं, केवल चारों तरफ के बाहरवाले बाँसों में यह गुण पाया जाता है।

(२) उस क्षेत्र के बाँस, जहाँ तेज हवा बहती है, उसकी जड़ें कमजोर हो जाती हैं। अतः, उनका विकास खूब नहीं होता और अच्छी तरह सीधे खड़े भी नहीं रह पाते। वे छोटे और टेढ़े हो जाते हैं। वे कड़े भी हो जाते हैं। इसलिए, जब उनके बारीक विभक्तीकरण का अवसर आता है, तब कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। अच्छे बाँस जंगल में उपजते हैं, जहाँ बाँसों को सीधी और तेज हवा नहीं लग पाती।

(३) आर्द्र तथा अँधेरे स्थान में लगाये गये बाँसों की गाँठें निकट-निकट होती हैं और ये बाँस कम मजबूत होते हैं।

(४) पहाड़ी क्षेत्र के बाँस की त्वचा पतली और हरी होती है और उसके भीतर का भाग कड़ा होता है। लेकिन, उपजाऊ स्थान के बाँस की त्वचा की हरीतिमा गाढ़ी और मुलायम होती है। ये बाँस लचीले और मजबूत नहीं होते और इनकी गाँठें भी नजदीक-नजदीक होती हैं। इस कारण इस बाँस को कारीगर विशेष पसन्द नहीं करते।

(५) आसाम और नेपाल की तराई के जंगलों में उपजनेवाले बाँस बहुत अच्छे होते हैं। ये बाँस लम्बे, सीधे लचकदार और वस्तुओं के बनाने में अधिक योग्य होते हैं; लेकिन देवदारु के जंगलों में उपजनेवाले बाँस अच्छे नहीं होते।

(६) स्थान-भेद से 'रोपा-बाँस' की प्रकृति में बहुत अन्तर आ जाता है। देखा गया है कि एक ही स्थान पर लगाये गये रोपा-बाँस एक ही उम्र में एक समान नहीं होते तथा उनके काटने का समय भी एक नहीं होता।

(७) बाँस के कार्य करनेवाले के लिए बाँस की लम्बाई और उसका व्यास दोनों ही बहुत महत्त्व रखते हैं। उदाहरण के लिए, ५, ६, ७, ८ इंच व्यासवाले 'चाभ' बाँस सभी प्रकार के कार्यों के लिए विशेष उपयुक्त होते हैं।

(८) बाँस के खेत में कितनी संख्या में बाँस होने चाहिए, इस बात पर भी बाँस की प्रकृति बहुत-कुछ निर्भर करती है। सम्पूर्ण खेत के ६ प्रतिशत भाग में ही बाँस को लगाया जाता है और लगाया जाना चाहिए। प्रत्येक ६ वर्गफुट में बाँस की एक 'कोठ' होनी चाहिए और उसमें कितने बाँसों को बढ़ावा दिया जाय, इसका ब्योरा नीचे दिया जाता है।

एक कोठ में ३ इंचवाले व्यास के बाँस ३०; ४" वाले बाँस १७; ५" वाले ११; ६" वाले ८; ७" वाले ६; ८" वाले ५; ९" वाले ४; १०" वाले ३ और ११" वाले व्यास के बाँस २ होने चाहिए।

किन्तु सामान्यतः बाँस निम्नलिखित रूप में रोपे जाते हैं—

'चाभ' ३ से ५ तक प्रति ६ वर्गफुट में; 'चाभ' जाति का दूसरा बाँस ४ से ६ तक प्रति ६ वर्गफुट में और 'हरौती' २ से ४ तक प्रति ६ वर्गफुट में।

शुष्क और आर्द्र जलवायु के अनुसार बाँस मोटा और पतला होता है। बाँस की लम्बाई, चौड़ाई, मुटाई (व्यास) आदि के अनुसार कारीगर अलग-अलग कार्य के लिए बाँस का चुनाव कर लेते हैं।

उत्तम कोटि के बाँस

(क) जिस बाँस की गाँठें अधिक दूरी लिये और बेंत की तरह समतल होती हैं, अर्थात् ऊँची नहीं होतीं, वह बाँस अत्यन्त उपयोगी होता है। ऐसा बाँस इसलिए उत्तम कोटि का होता है कि फाड़ने में और कमचियाँ बनाने में आसान होता है।

(ख) जो बाँस सीधे हैं, वे भी उत्तम कोटि के हैं; क्योंकि ये आसानी से बराबर फट जाते हैं।

(ग) गाँठों पर से निकलनेवाली डालियाँ ऊपर जाकर बहुत दूर पर निकले, तो वह बाँस उत्तम होता है।

(घ) जिस बाँस का शीर्ष भाग सीधा हो और टूटा न हो, वह भी उत्तम कोटि का बाँस है।

(च) जिस बाँस में किसी तरह का खरोंच या अन्य प्रकार के किसी तरह के दाग नहीं हों, वह भी उत्तम कोटि का बाँस है।

(छ) आर्द्र और अधिक उर्वर भू-भाग के बाँस अच्छे नहीं होते। समशीतोष्ण भूभाग के बाँस ही उत्तम कोटि के होते हैं।

(ज) उत्तम कोटि के बाँस के लिए अत्यन्त खुला मैदान नहीं होना चाहिए; क्योंकि वहाँ आँधी-तूफान उसकी जड़ों को कमजोर करते हैं।

(झ) अच्छे बाँस जहाँ हों, वहाँ दूसरे पेड़ न हों, जिससे जमीन का बढ़िया रस बाँस को ही मिलता रहे। इसके साथ चार साल की आयुवाले बाँस काम की दृष्टि से उत्तम कोटि के होते हैं।

कामों के लिए वैसे ही बाँस चुने जायँ, जो आसानी से मुड़ सकें और फट सकें। उनके चुनने का सरल तरीका यह है—

हरे बाँस को काटने के बाद उसके शीर्ष भाग को नीचे कर और जड़ को ऊपर करके रख देना चाहिए, जिससे जड़ की तरफ का रस शीर्ष-भाग की ओर—उसकी डालियों और पत्तों में—चला आवे। इस तरह करने से जड़वाले हिस्से रस-रहित और मुलायम हो जाते हैं। उसमें कीड़े नहीं लगते। जो बाँस पतला और नरम होता है, वह मुड़ने में अच्छा होता है और जो मोटा और कड़ा होता है, वह ठीक से नहीं मुड़ पाता। इसके साथ जो बाँस सिरे पर सूख गया है या मर गया है, उसके मोड़ने में अत्यन्त कठिनाई होती है।

बाँस की खेती का तरीका

जमीन का चुनाव

१. उचित गीली और बालू से भरी हुई जमीन।

२. ऐसी जमीन, जो आसानी से सींची जा सके।

३. जहाँ सीधी धूप न पड़ती हो और हवा से बचाव हो।

जमीन की तैयारी

१. भूमि के भीतर का तना (Under-ground-stem) अच्छी तरह विकसित हो सके, इसके लिए १-२ फुट गहरा खोदकर सफाई कर लेनी चाहिए।

२. उस गड्ढे में पत्ता, सूखी घास, भूसा (Straw) और खाद डालकर भर देना चाहिए।

समय

१. वर्षा ऋतु के आरम्भ में बाँस की जड़ रोपना अच्छा होता है।

लगाने की पद्धति

१. बाँस को भीतरी जड़ के साथ (Under-ground-stem) लगाना चाहिए।

२. केवल बाँस की जड़ (खूँटी) लगाने की पद्धति भी प्रचलित है।

३. केवल भीतरी जड़ (Under-ground stem) लगाने की पद्धति भी है।

१. **भीतरी जड़ के साथ बाँस लगाने की पद्धति**—(क) पहली पद्धति में एक-दो साल का बाँस काम में लाना चाहिए।

(ख) मूल-बाँस का गिरदा (Round) ३-४ इंच का होना चाहिए।

(ग) लगाने के लिए ऐसे बाँस का चुनाव करना चाहिए, जिसकी गाँठें नजदीक-नजदीक हों।

(घ) मूल-बाँस की जड़ को एक-दो फुट नीचे गाड़कर (Under-ground-stem) लगाना चाहिए और बाजू के अंकुरों को नहीं तोड़ना चाहिए। इस तरह गाड़ना चाहिए, जिससे अंकुरों को किसी प्रकार आघात न पहुँचे।

(च) हवा से बचाव के लिए बाँस को नीचे से ४-५ गाँठ (Node) को छोड़कर उसके ऊपर का भाग काट देना चाहिए।

(छ) भीतरी जड़ को बराबर नरम करना चाहिए।

(ज) लगाने के पहले उचित गहराई तक खूब गड्ढा खोदकर पानी डालना चाहिए।

(झ) मूल बाँस के पास खम्भा खड़ा करना चाहिए।

(ट) लगाने के बाद, मिट्टी से ढकते समय, धूल न मिलानी चाहिए।

(ठ) जड़ में चारों तरफ से मिट्टी को अच्छी तरह भर देना चाहिए, जिससे बीच में खाली जगह न रहने पावे।

(ड) गड्ढे के भीतर (Under-ground-stem) को मोड़कर सीधा जमीन के अन्दर रखना चाहिए।

(ढ) मूल-बाँस को सीधा करने के लिए (Under-ground-stem) ढालुवा नहीं करना चाहिए।

(त) लगाने की संख्या ⅛ एकड़ के प्रति ६०-१००।

२. **केवल बाँस की जड़ लगाने की पद्धति**—(क) बाँस के तने (stem) को सतह के बराबर से काटना चाहिए।

(ख) बाकी सारी पद्धति पहले जैसी ही होती है।

३. **केवल Under-ground-stem को लगाने की पद्धति**—बड़े पैमाने पर बाँस-वन लगाने के समय जब मूल-बाँस का अभाव मालूम होता है, तब इस पद्धति को अपनाया जाता है।

बाँस तैयार करने में अधिक समय लगता है। इसलिए नीचे लिखित विषय पर ध्यान रखना चाहिए—

(क) वर्षा ऋतु के आने के पहले ही दो-तीन साल की खूँटी (Under-ground-stem) चुन लेनी चाहिए।

(ख) यदि उसमें नये अंकुर आ गये हों, तो बाँस को सतह के ऊपर दो फुट पर काटना चाहिए।

(ग) जो जमीन उचित गीली और बालू से भरी हो, वहाँ लगाना चाहिए। इसके लिए नीचे लिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

(क) दो फुट के फासले पर और ४ इंच गहराई वाली नारी में ५-६ इंच के फासले रखकर बाँस को लगाना चाहिए।

(ख) जब नया बाँस पैदा हो, तब ४-५ गाँठ (Node) रखकर बाकी अंश को काट देना चाहिए।

(ग) बराबर पानी डालना चाहिए।

Under-ground-stem खींचने की पद्धति (Method of inducement)

बाँस-वन लगाने के अवसर पर अगर आस-पास में बाँस-वन मौजूद है, तो निम्नलिखित पद्धति अपनानी चाहिए। यह सबसे सुरक्षित और आसान है।

द्धति—बारिश शुरू होने के पहले मूल बाँस-वन की कतार में ५-६ फुट नीचे तक खोदकर उसमें खाद, मनुष्य का मल वगैरह भर देना चाहिए।

अगर ५-६ साल की उम्रवाले बाँस को नीचे की शाखा को ३-५ गाँठ रखकर काट दिया जाय, तो Under-ground-stem) का बढ़ाव (Growth) जल्दी होता है।

खाद
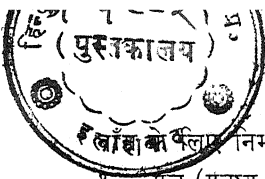
बाँस के लिए निम्नलिखित खाद उपयोगी हैं—

१. मल (मनुष्य की टट्टी और पेशाब)

२. कम्पोस्ट (Farm-yard Manure)

३. सूखी घास (Fallen Leaves)

४. राख (Ashes)

लेकिन इसमें (नमकीन खाद) या पानी नहीं डालना चाहिए; क्योंकि बाँस नमक पसन्द नहीं करता है।

हर साल में १/४ प्रति एकड़ मल-खाद ४००० पौण्ड तथा Compost वगैरह ४००० पौण्ड देना उचित होगा।

(क) जलमय-खाद (Liquid Manure) १/२० प्रति एकड़ २-६ स्थानों में हल्का गड्ढा खोदकर डालना चाहिए। बाद, मिट्टी से ढक देना चाहिए।

(ख) Under-ground-stem जिधर बढ़नेवाला हो, उधर ही गड्ढा बनाना चाहिए; क्योंकि Under-ground-stem इसी ओर बढ़ता है।

(ग) एकबार ज्यादा खाद देने की अपेक्षा साल में ५-६ बार खाद देना अच्छा होगा।

(घ) दो साल के बाद घास, भूसा (Straw), खाद वगैरह को चारों तरफ दो इंच तक डालकर भर देना चाहिए और उसके ऊपर दूसरी जगह से मिट्टी लाकर डाल देनी चाहिए। प्रति ३ या चार साल के बाद एक बार ऐसा करना चाहिए।

सुधार (Care-repair-Trimming)

(क) साल में दो बार घास निकालकर सफाई करनी चाहिए।

(ख) आबोहवा अगर सूखी है, तो पानी देना चाहिए।

(ग) जिस साल बाँस लगाया जायगा, उस साल लगभग नहीं उठेगा। दो साल के बाद ५-६ बाँस पैदा होंगे और ७-८ फुट तक बढ़ेंगे।

(घ) करीब ५ साल के बाद बाँस तैयार हो जायेंगे और ७-८ साल तक पूरी कोठ (बाँस-वन) तैयार हो जायगी।

बाँस के विषय में आवश्यक जानकारी

(१) काम की दृष्टि से बाँस काटने का हमेशा एक समय नहीं होता है। जिस बाँस का उपयोग केवल मजबूत कार्य के लिए होता है, उसे चार से छह वर्ष के होने पर काटा जाता है। ऐसे कामों के लिए 'चाभ' और 'हरौती' बाँस को, ५ से ६ वर्ष के हो जाने पर काटते हैं और काटना चाहिए। यह बाँस अत्यन्त मजबूत और कड़ा होता है; किन्तु पिंजड़े, टोकरियाँ आदि बनाने के लिए ३ साल के ही बाँस अधिक उपयुक्त हैं।

(२) शिशिर ऋतु में काटे गये एक या डेढ़ वर्ष के बाँस काम करने की दृष्टि से अत्यन्त मुलायम होते हैं और ये टूटते नहीं। इस कारण इसको वस्तुओं के किनारे मोड़ने अथवा बाँधने के काम में लाते हैं। इन्हें नरम बाँस कहते हैं। पिंजड़ा आदि बनाते समय कारीगर को चाहिए कि वह तानी में कड़े बाँसों का सामान व्यवहार में लावें और भरनी में नरम बाँसों के सामान का उपयोग करे।

(३) १० वर्ष से अधिक आयुवाले बाँसों को काटने पर उसकी त्वचा लाल तथा धब्बेदार हो जाती है। साथ ही, उसकी गाँठें काली हो जाती हैं। ऐसा बाँस विशेषकर उपयोगी नहीं होगा।

इस तरह हमने देखा है कि आयु के अनुसार बाँस के कड़ापन में भेद आ जाता है। अतएव, बाँस की उम्र के विषय में जानकारी रखना अत्यन्त आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। कारीगर त्वचा के रंग को देखकर बाँस की आयु को पहचान जाते हैं। फिर भी, तीन वर्ष से अधिक आयुवाले बाँस को इस प्रकार पहचानना कठिन हो जाता है। अतः, बाँस की उम्र पहचानने के लिए काली स्याही से बाँस पर लिख देना सर्वोत्तम तरीका है। इसी तरह बाँस की मुटाई का पता लगाने के लिए बाँस के निकलने के दो या तीन मास बाद उसपर एक प्रकार का चिह्न कर देना चाहिए, जिससे बाँस की बढ़ती मुटाई का पता चलता रहे।

(४) बाँस को काटने का सर्वोत्तम समय उसकी आयु का तीसरा या चौथा वर्ष है। बाँस के काटने के सम्बन्ध में जापान के बाँस-कृषकों की एक कहावत है, जिसका हिन्दी-रूपान्तर इस तरह है—

"तीन बरस तक छोड़ो सबको, चार बरस में काटो।
सात बरस से अधिक न छोड़ो, उसके भीतर ही काटो॥"

बाँस के व्यावहारिक कार्य तथा उसकी 'कोठ' की रक्षा, दोनों को दृष्टि में रखते हुए बाँस के काटने की उम्र पर ध्यान देना पड़ता है।

(५) जब हमें किसी कलात्मक टोकरी, आकाशदीप या ताजिया आदि के ढाँचे बनाने के लिए मजबूत और मुलायम बाँस की जरूरत पड़ती है, अथवा जब हमें कमची को उजला बनाना होता है, तब हमें अपेक्षाकृत कम उम्र (अर्थात् २ से ४ वर्ष तक) के बाँस काटने पड़ते हैं; लेकिन जब मजबूत और टिकाऊ वस्तुओं (धनुष, मेहराब आदि) के बनाने की जरूरत पड़ती है, तब हमें पुराने (४ से ६ वर्ष तक के) बाँस काटने पड़ते हैं। दो वर्ष की छोटी आयुवाला बाँस व्यवहार की दृष्टि से अत्यन्त मुलायम और कमजोर रहता है।

जब यह ७ या ८ वर्ष का हो जाता है, तब इसकी त्वचा लाल और धब्बेदार हो जाती है। इस समय इसके तेल का भाग कम हो जाता है और इसका चमड़ा रुखड़ा और टूटनेवाला हो जाता है। बाँस के बागीचे की रक्षा की दृष्टि से, हमलोग उन बाँसों को काटने के लिए चुनते हैं, जिनकी जड़ नष्ट हो रही हो। ऐसा बाँस, जिनकी जड़ नष्ट होने लगती है, कलात्मक कार्य के लिए अनुपयोगी हो जाता है। इस खयाल से ५ से ६ वर्ष की आयुवाला बाँस काटना चाहिए, जो सबसे अधिक उपयुक्त होता है। निष्कर्ष यह कि साधारण व्यवहार के लिए चाभ और रोपा-बाँस ५ वर्ष, पतला मकोर २ वर्ष तथा हरौती लगभग ६ वर्ष की उम्र में काटे जाने के योग्य होते हैं।

मकोर को २ वर्ष की ही उम्र में काटने का कारण यह है कि अक्सर भय बना रहता है कि इसका रंग फीका पड़ जायगा। अगर काटे जाने योग्य बाँस न काटे जायँ, तो न केवल बाँस कलात्मक दृष्टि से निम्न कोटि का हो जायगा, बल्कि बाँस का बागीचा पोषक तत्त्व की कमी के कारण नष्ट भी हो जायगा।

(६) बाँस की त्वचा के रंग से ही बाँस की उम्र पहचानी जाती है। छोटी उम्र का बाँस ताजा और हरा होता है। लेकिन आगे चलकर आयु के अनुसार उसका रंग गाढ़ा हो जाता है और अन्त में उसमें थोड़ा पीलापन भी आ जाता है। स्थान-भेद से इस नियम में भी अन्तर आता है। इस कारण बाँस की वास्तविक आयु क्या है, यह पता लगाना कठिन है। इसके लिए ही बाँस की उत्पत्ति के वर्ष में ही स्याही से उस पर लिख दिया जाता है। मौसम के आधार पर कीड़ों की उत्पत्ति स्वतः होती है। इसलिए बाँस काटने के समय मौसम की जानकारी भी आवश्यक है, अन्यथा काटे हुए बाँस में कीड़े लगने की सम्भावना रहती है। इस गलती से सावधानी बरतने की भी आवश्यकता है।

काटने का समय

(१) बाँस काटने के मौसम और उसमें कीड़ा के लगने में गहरा सम्बन्ध है। बाँस को अक्टूबर से दिसम्बर तक काटना अच्छा है। इसका कारण यह है कि बाँस के बढ़ने का जो समय है, वह उपर्युक्त समय के पूर्व ही समाप्त हो जाता है। जब बाँस बढ़ता रहता है, उस मौसम में यदि उसे काट लिया जाता है, तो उसमें कीड़े लगने का भय रहता है। ऐसे समय के कटे हुए बाँस लचीले या मुड़नेवाले नहीं होते, टूटनेवाले होते हैं। उनकी गाँठें कमजोर हो जाती हैं और उनमें अच्छी चमक भी नहीं रह जाती। अर्थात्, जब बाँस के बढ़ने का समय होता है, तब उसमें रस भरा रहता है और वह मीठा होता है तथा उस समय काटने पर बाँस की गाँठों में कीड़े अवश्य और अधिक लगते हैं।

(२) कुछ लोगों की राय में जो बाँस शीत ऋतु में काटा जाता है, वह बहुत ही कड़ा और टूटनेवाला होता है। इस कारण मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक बाँस काटने का सर्वोत्तम समय है।

(३) किन्तु बाँस काटने का दूसरा अच्छा समय सितम्बर से मार्च तक का होता है। इसी तरह यदि हरौती बाँस को २१ जुलाई (सबसे अधिक गर्मी के दिन) तक काट

लिया जाय, तो उसमें कीड़े लगने का भय नहीं रहता। जापान में २१ जुलाई के एक महीने बाद तक काटने की प्रणाली है, यानी बरसात शुरू होने के पहले ही काट लेना चाहिए।

(४) आम तौर पर वसन्त ऋतु की अपेक्षा शिशिर में तथा कृष्ण पक्ष में बाँस काटना उत्तम होता है। कृष्ण पक्ष में कटे बाँस में अधिक जल रहता है और आग में रखे जाने पर भी वह नहीं सूखता है। काफी देर तक आग में रखे जाने पर उसका सारा भाप पानी बनकर उड़ जाता है।

बाँस से इस प्रकार निकलनेवाले जल में चीनी के सदृश एक प्रकार की मिठास रहती है, जिससे उसमें कीड़े लगने का भय रहता है, उस रस में 'पेटोजिन' होता है, जिसे कीड़े बहुत पसन्द करते हैं। बाँस के प्रारम्भिक वर्ष में (वसन्त से शिशिर तक), बढ़ने के समय उसमें बहुत पुष्टिकारक रस रहता है, अतः उसमें कीड़े लग जाते हैं। गर्मी के दिन बाँस काटने के लिए उत्तम नहीं होते। भारत में बाँस काटने का सर्वोत्तम समय तो अक्टूबर से दिसम्बर तक रहता है।

इसके विपरीत राय यह है कि शीत-काल में बाँस का पुष्टिकारक रस जड़ में रहता है, इसलिए उन दिनों बाँस में कीड़े नहीं लगते। बाँस के जहाँ बागीचे हों, उसमें से गर्मी में बाँस काटना अच्छा होता है; क्योंकि गर्मी में गन्दगी (स्टफ) तुरत ही नष्ट होकर खाद बन जाती है। लेकिन लोगों का कहना है कि जाड़े में गन्दगी बनी ही रहती है और वह पोषक तत्त्व को बरबाद करती है।

(५) बाँस के बागीचे के मालिकों का और बाँस से काम लेनेवाले कारीगरों का हित एक-सा नहीं रहता है। बाँस का व्यवहार करनेवालों को बाजार में मिलनेवाले बाँस के सामानों पर ध्यान देना चाहिए कि बाँस उपयुक्त समय में कटा है कि नहीं।

(६) ऊपर की बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि कीड़ा लगना और बाँस के विभिन्न भेद—इन दो बातों के साथ बाँस काटने के समय की समस्या सम्बद्ध है।

(७) ऐसे बाँसों को काटने के लिए कोई निश्चित समय की चिन्ता नहीं करनी होती है, जिनके बने सामानों को रँगा जाता है।

(८) सितम्बर से नवम्बर तक का कटा बाँस साधारणतः कड़ा होता है और उसमें कीड़े नहीं लगते; क्योंकि इस बीच कीड़े अण्डे नहीं देते हैं।

(९) शिशिर ऋतु में नहीं काटे गये बाँस, मार्च और अप्रैल में अवश्य ही काट लिये जायँ, फिर भी ये बाँस शिशिर में कटे बाँसों के समान अच्छे नहीं होते। किन्तु जो स्थान बर्फीले नहीं है, वहाँ शीत ऋतु ही बाँस काटने का सर्वोत्तम समय है।

(१०) भदवा (पंचक) के दिन भारत में बाँस नहीं काटने का रिवाज है। जापान में भी इसी प्रकार की प्रथा है। भारत में तो भदवा के ५ दिन होते हैं, लेकिन जापान में भदवा १२ दिनों का होता है, जो वर्ष में ६ बार आता है। यह निश्चित है कि पंचक अथवा अन्य वर्जित दिनों में यदि बाँस काटा जाय, तो उसके बने सामानों में कीड़े अवश्य ही लग जायेंगे।

(११) भारत तथा अन्य देशों के किसान बाँस का रंग देखकर ही उसकी आयु बता देते हैं। खास उम्र में बाँस का खास रंग हो जाता है। इसलिए किसानों और बाँस के विशेषज्ञों के लिए आयु बता देना आसान है। बाँस की पैदावार में लगे हुए जापान के किसान बाँस की खेती में बड़े निपुण होते हैं। वे कई खेतों में बाँस लगाते हैं और उनका नक्शा बनाकर, पूरे ब्योरे के साथ लिखित रूप में रखते हैं। इस प्रकार वे बाँस की खेती-सम्बन्धी सारी बातें ठीक वक्त पर पूरा करते हैं।

मैंने जापान के 'सादो' द्वीप के 'अकादोमारी' गाँव में 'बाँस-अनुसंधान-प्रतिष्ठान' में काम करते हुए देखा कि एक किसान ने बाँस की खेती में खाद का व्यवहार करके बाँस के विकास में आशातीत सफलता प्राप्त की। खाद के व्यवहार से मोटी किस्म के बाँस उत्पन्न होने लगे।

(१२) जिन बाँसों या बाँस की कोठ में फूल निकल आता है, वे बाँस बेकार हो जाते हैं—किसी काम के नहीं होते। ऐसे बाँस केवल जलावन अथवा कागज बनाने के काम में ही आ सकते हैं। बाँस में फूल निकल आना हमारे देश में अशुभ माना जाता है और अकाल का लक्षण समझा जाता है। ऐसा विश्वास जापान में भी है। गत महायुद्ध के समय जापान में बाँसों में फूल निकल आये थे। इसका फल खाने के काम में भी आता है।

बाँस में लगनेवाले कीड़ों की रोक-थाम

बाँस में लगनेवाले अधिकांश कीड़े उसके अन्दर घुसकर उसे खा जाते हैं। इस कारण, बाँस के कटे और चीरे गये सामान सुरक्षित रखे जाने चाहिए। टोकरी अथवा पिंजड़ा बनानेवाले कारीगर, जो सालों-भर काम करते हैं, एक वर्ष के लिए शिशिर ऋतु में कटे बाँस खरीद लेते हैं। लेकिन जब उनका सामान खत्म हो जाता है और उन्हें शिशिर के पहले बाँस के सामान की जरूरत पड़ती है, तब शिशिर के लिए वे वसन्त में कटे बाँस खरीदते हैं। कारीगर बाँस को काट-फाड़ कर, कीड़ों से बचाने के लिए, एकत्र कर रख देते हैं। जब वे उन सामानों से टोकरी या पिंजड़े बनाने लगते हैं, तब उन्हें दो-तीन दिनों तक पानी में रख छोड़ते हैं। आर्थिक दृष्टिकोण से एक ही समय सामान को काट-फाड़ लेना और उन कटे-फटे सामानों से एक वर्ष के लिए वस्तुएँ तैयार कर लेना, सबसे अच्छा तरीका है।

अनेक अनुसंधानों से यह सिद्धान्त अस्वीकृत हो चुका है कि बाँस में जो रस रहता है, उसी के कारण उसमें कीड़े लगते हैं अथवा बाँस कृष्ण पक्ष में काटा जाना ही चाहिए।

बाँस के बने सामान अथवा वस्तुओं में कीड़े लगने और गर्मी में साइडिड (गेरुई रोग) लगने की समस्या कारीगरों के लिए बहुत जटिल है। लेकिन, इन समस्याओं के हल के लिए कृषि-विभाग तथा विभिन्न स्थानों की अनुसंधान-समितियों ने कई बातें बताई हैं।

बाँस का सभी रस निकल जाने पर ही उसे व्यवहार में लाया जाता है। अगर बाँस की आर्द्रता १२ से १५ प्रतिशत सुरक्षित रख ली जाय, तो उसमें अथवा उसकी बनी

वस्तुओं में न तो कीड़े लगेंगे और न वह खराब ही हो सकेंगी। बाँस का रस ऊपर लिखित परिमाण में रह जाने पर ही उससे बनी वस्तुएँ फटती नहीं हैं। यदि बाँस तथा उससे बनी वस्तुएँ ऐसे स्थान पर रखी जायँ, जहाँ उनकी आर्द्रता बनी रहे, तो वे वस्तुएँ फटेंगी नहीं, ज्यों-की-त्यों बहुत समय तक बनी रहेंगी। बाँस ऐसे स्थानों में रखे जायँ, जहाँ उसे पूरी हवा मिले और छाया भी हो।

ऊपर बताया जा चुका है कि बाँस काटने के समय में और कीड़े लगने में बहुत बड़ा सम्बन्ध है। लेकिन, आम तौर से लोग काटने के उपयुक्त समय से अनभिज्ञ होते हैं, इसीलिए बाँस में कीड़े नहीं लगें, इसका कोई उपाय ढूँढ़ना जरूरी होगा। हमलोग अपने घरों में बाँस की बनी जिन वस्तुओं को व्यवहार में लाते हैं, वे अगर ठीक समय पर कटे बाँसों की बनी हों, तो उसमें शायद ही कीड़े लगेंगे। अगर बड़ी संख्या में ये वस्तुएँ एक ही स्थान पर रखी जाती हैं और संयोगवश उनमें से एक भी वस्तु ठीक वक्त पर कटे बाँस से नहीं बनी है, तो उसमें कीड़े लग जाते हैं और वे कीड़े ठीक समय पर कटे बाँस से बनी सभी वस्तुओं में फैल जाते हैं। यह सबसे अधिक खतरनाक स्थिति है। इसलिए जब हम बड़ी संख्या में बाँस के सामान एकत्र कर रखते हैं, तब हमें उनकी सुरक्षा के विषय में भी सोचना चाहिए। बाँस में लगनेवाले कीड़े अनेक प्रकार के होते हैं, जिसमें प्रमुख एक कीड़ा होता है, जिसका चित्र यहाँ दिया गया है।

कीड़ों से बाँस को बचाने के लिए अब कई तरीके ज्ञात हो गये हैं, जिनसे लाभ पहुँच रहा है। लेकिन भिन्न-भिन्न स्थिति में उन तरीकों से लाभ और हानियाँ दोनों देखी गई हैं। इसलिए कीड़ों से बचाने के लिए सरल और अधिक उपयोगी तरीके नीचे दिये जा रहे है।

१. **पुताई**—वस्तुएँ तैयार करने के पहले सर्वप्रथम बाँस से तेल निकाल लेते हैं। उसके बाद बाँस के भीतरी भाग को लेप करके पूर्ण रूप से ढँक देते हैं। इस प्रकार, कीड़े उस पर आक्रमण नहीं कर सकते। इस मामले में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भाग भीतरी और दोनों छोर होते हैं। कीड़े शायद ही कभी बाँस के बाहरी धरातल से प्रवेश करते हैं, इस कारण उस पर लेप नहीं करते हैं; क्योंकि उसकी स्वाभाविक सुन्दरता नष्ट हो जाती है। इस विधि में भी कभी-कभी कीड़े उस स्थान पर प्रवेश कर जाते हैं, जहाँ से रंग हट जाता है।
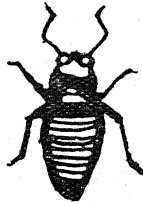
(चित्र १)

२. **रासायनिक तरीके**—कीड़ों की रोक-थाम के लिए निम्नलिखित द्रव्य लाभकारी होते हैं—

कॉपर सल्फेट (Copper Sulfate), जिंक सल्फेट (Zinc Sulfate), कारबोलिक (फिनौल)

(Phenol), एसिड। लेकिन ये वस्तुएँ विषैली हैं, इसलिए खाने के बरतन में इन्हें नहीं रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त एसिटिक अम्ल (Acetic Acid) और सॉल्ट, फिटकरी (Alum), कौरोसिव सब्लीमेट (Corrosive Sublimat), सोडियम फ्लोराइड (Sodium fluoride) भी कीड़ा मारने के लिए उपयोगी हैं। कॉपर सल्फेट सॉल्युशन भी कीड़ा मारने के काम में लाया जाता है। कभी-कभी गंध के कारण लगनेवाले कीड़े के लिए गरम पानी भी काम में आता है।

३. **गैस-प्रयोग**—फारमालिन (Formalin) तथा गंधक ०·८। कीड़े मारने का एक तरीका गंधक-गैस का प्रयोग भी है। जुलाई तथा अगस्त महीने में बाँस में (Aspijutious, Pancilium, Fizopin, Meneor) कीड़े लगते हैं। ये कीड़े औसतन प्रतिमास ५०-५० बच्चे देते हैं और हर तीसरे महीने बच्चे देते हैं। मादा कीड़े भीतर ही रहते हैं, लेकिन नर कीड़े बाहर चले जाते हैं। ये कीड़े ६० दिनों के बाद अण्डा देना शुरू कर देते है। एक वर्ष तक उसमें रहने के बाद वे कीड़े बाँस को छोड़ देते हैं; लेकिन बाँस तबतक बरबाद हो जाता है। अतः, कीड़ों से रक्षा के लिए जुलाई-अगस्त मास के पहले ही उपाय किये जाने चाहिए। कीड़े सूखे सामान में जाना नापसन्द करते हैं; क्योंकि उन्हें वहाँ रसीला द्रव्य नहीं मिलता।

(Nael Solution) को अगर बोरिक एसिड के साथ मिला दिया जाय और उसमें बाँस का सामान रखकर १५ से २० मिनट तक गरम किया जाय, तो उसमें भी कीड़े मर जाते हैं।

कीड़ों से सुरक्षा के लिए बाँस के बने कच्चे सामान में उपर्युक्त सॉल्युशन का अच्छी तरह लेपकर पचा देना काफी होगा, लेकिन इस सॉल्युशन में अगर वे सामान डुबो दिये जायँ, जिससे वह उनके भीतरी भाग में भी प्रवेश कर जायँ, तो यह और भी अच्छा तरीका होगा।

साधारण प्रेसर प्रोड्यूसिंग विधि

वैकुअम पम्प से बाँस में मिश्रित पदार्थ पचाया जा सकता है—

(क) सल्फेट ऑफ् कॉपर का सॉल्युशन ०·८ से १·२५%

(ख) एसिटेट का सॉल्युशन १·० से २·०%

(ग) फिनौल १·० से २·०%

हमें क, ख तथा ग का व्यवहार करना चाहिए। जिंक-सल्फेट बाँस के कच्चे सामान को थोड़ा रंगीन बना देता है, इसलिए इसका व्यवहार नहीं करना अच्छा होगा। जिंक सल्फेट तथा एसिटेट सॉल्युशन विषैले पदार्थ हैं, अतः इसमें व्यवहृत बाँस के बने

खिलौने अथवा ऐसे ही बने अन्य सामान इस लायक नहीं होते, जिन्हें हम तथा हमारे बच्चे अपने मुँह में रख सकें।

४. **रासायनिक द्रव्यों में डुबोना**—(क) पोटासियम बाइक्रोमेट १/२ प्रतिशत जल ६६% दोनों की मिलावट में बाँस को कुछ देर के लिए डुबोना चाहिए। थोड़ी देर बाद निकालकर कपड़े से बाँस को पोंछ देना चाहिए। इस विधि में थोड़ा यह अवगुण भी है कि इससे बाँस में कुछ लाली आ जाती है।

(ख) पेंटाक्लोरोफिनौल (P. C. P.)—बाँस को कीड़े से सुरक्षित रखने के लिए यह सर्वोत्तम द्रव्य है। यह अन्य लकड़ियों की रक्षा के काम में भी आता है। इस द्रव्य से कीड़े निश्चित रूप से मर जाते हैं। घाँस को खेतों से हटाने के लिए किसान इस द्रव्य का व्यवहार करते हैं। घर के खम्भे तथा चौखट आदि को कीड़ों से बचाने के लिए २ प्रतिशत (P. C. P.) लगाते हैं। ५ से ८ प्रतिशत तक (P. C. P.) में बाँस को उबालकर उसके बाद (Ba., Zn., Ag.) जैसे भारी द्रव्यों के लवण में पानी के साथ मिलाना चाहिए। यह विधि बहुत कठिन है। खासकर बड़े-बड़े बाँसों के लिए यह प्रयोग तो अवश्य ही कठिन है। इसके अतिरिक्त यह विधि अधिक खर्चीली भी है। बड़े बाँसों के लिए Soluble oil P. C. P. व्यवहार करना सरल होगा।

पी० सी० पी० (P. C. P.) को बाँस के बने सामान में लाकर उस पर से 'एनामेल' पेंट कर दें, तो समान में कीड़े नहीं लगेंगे; लेकिन केवल 'एनामेल' लगाया जाय, तो कीड़ों का लगना बन्द नहीं हो सकता। इससे कीड़े नहीं मर सकते। पी० सी० पी० पाउडर १ ग्राम में थोड़ा-सा पानी मिलाकर चला दिया जाता है। उसमें १०० ग्राम जल मिलाया जाता है, जिसमें बाँस को २४ घंटे तक रखा जाता है। फिर बाँस, को निकालकर उसे कपड़े से पोंछ दिया जाता है। बाद, उसे पाँच दिनों तक सूखने के लिए छोड़ देना पड़ता है।

तैयार सामान पर P. C. P. तथा B. H. C. दोनों को मिलाकर उससे छींटा दिया जाता है। इसके बनाने की विधि में इनका अनुपात P. C. P. १ ग्राम, B. H. C. १ ग्राम और जल १०० ग्राम होता है। उनको अच्छी तरह मिलाकर छींटा देते है और दो रोज तक सूखने को छोड़ देते हैं।

बाँस के सामान का परिमाण अधिक हो जाने पर रासायनिक पदार्थों तथा जल का अनुपात बढ़ा दिया जाता है।

पी० सी० पी० ३ ग्राम, जल ३०० ग्राम—दोनों को ठीक से मिलाकर उसमें बाँस को २४ घंटे तक रखते हैं। फिर सामान को निकालकर विना धोये-पोंछे धूप में सूखने को रख दिया जाता है।

५. **सामान को उबालना**—कीड़ों को हटाने का सबसे सरल और सस्ता तरीका
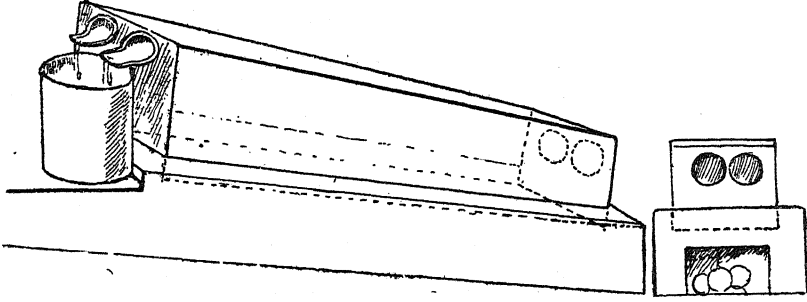
(चित्र २)
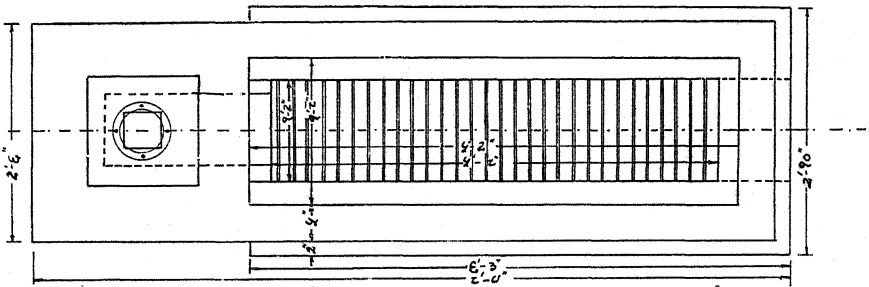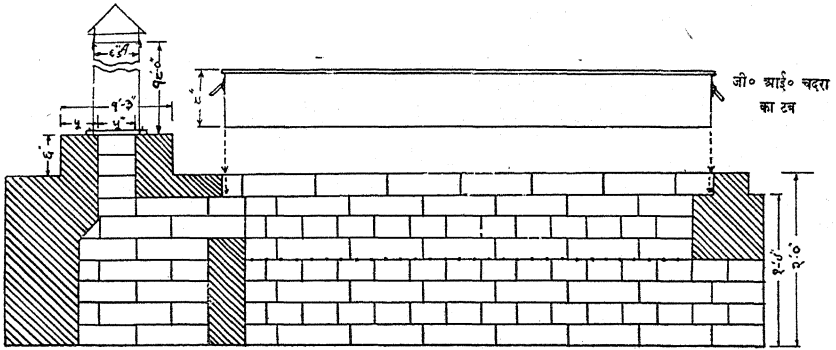
(चित्र २ क)

यह है कि बाँस के सामान को पानी में साधारण नमक रखकर या सल्फर सॉल्युशन रखकर

उबालते हैं। बिना नमक के पानी में भी सामान रखकर उबालते हैं। (देखिए, चित्र २) जापान में निर्धन किसानों में यही विधि प्रचलित है। पोलीसेक्राइड (Poly-sacharide) नामक एक प्रकार का रस, बाँस में रहता है। जिससे भी उसमें कीड़े लगते हैं। बाँस को उबाल देने से वह रस खत्म हो जाता है, इसलिए उसमें कीड़े लगने का भय नहीं रहता।

उपर्युक्त विधि एक साधारण तरीका है। उत्तम प्रणाली चित्र २ (क) में दिखाई गई है। चित्र २ में ऊपरवाले अंश में टब दिखाया गया है। इस प्रणाली के द्वारा बाँस से पानी भी निचोड़ा जा सकता है और रंग भी किया जा सकता है।

६. **रँगने की प्रणाली**—एसिड रंग (Acid dye) से रँगने से भी बाँस में कीड़े नहीं लगते। बिस्मार्क ब्राउन, मल्काईड ग्रीन (Malachite), औरामिन (Auramin)—ये सब चीजें कीड़ों से बाँस की रक्षा अच्छी तरह करती हैं। कारण यह है कि कीड़े रंग पसन्द नहीं करते। प्राचीन काल में, केवल रँगकर ही कीड़ों से बाँस के सामान की रक्षा की जाती थी। अन्य तरीके बहुत कम व्यवहार में थे।

फँफुदी से बाँस की रक्षा

जब सापेक्ष आर्द्रता ८५ प्रतिशत से अधिक हो जाती है, तब समस्त बाँस की सतह पर फँफुदी लग जाती है। दो या तीन मीटर प्रति सेकेण्ड चलनेवाली हवा को इसके कीड़े पसन्द नहीं करते। ये कीड़े बहुधा जुलाई से अगस्त तक बाँस को बरबाद करते हैं।

बाँस को कमरे में एकत्र करके अथवा रस्से से बाँधकर नहीं रखना चाहिए। बाँस को ऐसे स्थान पर रखना चाहिए, जहाँ काफी हवा आती-जाती हो। विश्लेषण करने पर पता चला है कि पेंटोजन (Pentosan) नामक द्रव्य बाँस में कुछ मात्रा में वर्त्तमान रहता है। कीड़े उन्हें पसन्द करते हैं। इसलिए Hydrosulphite या $H_2 SO_4$ रसायन द्रव्य को १ प्रतिशत लेकर पानी में घोल देना चाहिए और उसमें बाँस का सामान रखकर करीब २ से ३ घंटे तक औंटना चाहिए। इससे पेंटोजन निकल जायगा। पेंटोजन को बाँस से निकालना अत्यन्त आवश्यक है, कारीगरों को यह बात अवश्य जान लेनी चाहिए।

कोई-कोई कीड़ा पेंटोजन को पसन्द करता है और कोई-कोई बाँस में लगनेवाले बुकनी-जैसे पदार्थ को। बाँस पुराना हो अथवा नया; किन्तु उसमें रहनेवाली एक तरह की गंध होती है, जो कीड़ों को प्रिय है। इसलिए अगर बाँस को सुरक्षित रखने तथा

कीड़ों से बचाने की व्यवस्था नहीं की जाय, तो बाँस नया हो अथवा पुराना, उसमें उस गंध के चलते कीड़े जरूर ही लगेंगे।

क्रीयोसॉट ऑयल (Creosote oil) कीड़ों से बचाने के लिए बहुत ही प्रभावकारी होता है। दूसरा रासायनिक द्रव्य malmite होता है, जो sodium fluoride और डाइनाइट्रोफिनॉल (Dinitrophenol) का बना हुआ होता है। यह मिश्रित पदार्थ भी कीड़ों को भगाने के लिए बहुत ही उपयोगी होता है।

लकड़ियों से कीड़े भगाने के लिए हमेशा malmite व्यवहार किया जाता है। आम व्यवहार के लिए कपूर (Camphor) तथा गाभ के फल (F. A. Persimon Juice), (एक प्रकार का फल, जिससे निकाला गया रस[1], जो दो-तीन वर्षों से बोतल में बन्द हो) बहुत उपयोगी होता है। इस रस को जापान में चित्रकारी के काम में लाते हैं। इससे रँगने पर कीड़े नहीं लगते। इसी तरह, जापान में भोजन के समय काम में आनेवाले सामानों (छुरी, फॉर्क-स्टिक, चौक-स्टिक आदि) को कृमिहीन करने के लिए जापानी, बोरिक एसिड या सॉल्ट बाहर में रखकर उबालते हैं। ये द्रव्य विषाक्त नहीं होते।

यह कहा गया है कि काटे जाने के बाद बाँस का ऊपरी भाग नीचे की ओर करके रखा जाना चाहिए, ताकि उसका वह द्रव्य, जिसके कारण उसमें कीड़े लगते हैं, प्राकृतिक रूप में नीचे चला जाय। बाँस को काटने के बाद उससे Polysaccharide (चीनी-जैसा एक द्रव्य) हटाने के लिए उसकी शाखा तथा पत्ते-समेत बाँस को उसी स्थिति में कम-से-कम एक सप्ताह तक छोड़ देना चाहिए। इससे उक्त द्रव्य बाँस से निकलकर शाखा तथा पत्तियों में चला जाता है और बाँस में कीड़े लगने का भय नहीं रह जाता। यह पदार्थ अधिकतर बाँस की गाँठ में रहता है, जिससे बड़े-बड़े कीड़े बाँस के मुख्य भाग में लगते हैं।

फँफुदी (मोल्ड) का अध्ययन

स्परजिलस निगर (Aspergillus Niger) (नं० ४) नामक फँफुदी अत्यन्त साधारण होती है, जो विशेषकर बाँस में लगती है।

---

१. परसीमन रस बनाने की विधि—इसके कच्चे फल का छिलका निकालकर बीज-सहित भीतरी भाग को लकड़ी से पीसिए या कूटिए। बाद में उसे कपड़े में या टाट में छान लीजिए। इस विधि से संग्रह किये क्वाथ को लकड़ी या मिट्टी के बरतन में, अन्धकारपूर्ण और ठंडी जगह में, एक सप्ताह तक रख दीजिए, जहाँ वायु नहीं जा सके। इसके बाद भी उस क्वाथ को कपड़छान कर थोड़ा पानी मिला दीजिए और तब १५-२० मिनट तक आग पर औंटिए। इसके बाद दो से तीन बार कपड़छान कर लेना चाहिए। इसके बाद रस तैयार हो जाता है। इसका लेप कागज पर लगाने से वाटर-प्रूफ का काम देता है। बर्मा, स्याम, चाइना, कोरिया, जापान आदि देशों में कागज के बने जो छाते व्यवहार में आते हैं, उनपर इसी रस का लेप लगा होता है।—ले०

(चित्र ३)

बाँस में अन्य तीन प्रकार की फँफ़ुदी लगती हैं। उनके अँगरेजी नाम ये हैं—(क) Aspergillus glancels, (ख) Aspergillus oryac तथा (ग) Aspergillus Batate। अक्सर ये तीन किस्म की फँफ़ुदी चावल, गेहूँ, रोटी तथा चमड़े की वस्तुओं में लगती हैं। वहीं कीड़े अपना स्थान बना लेते हैं और वहीं अण्डे भी देते हैं। लेई, ग्लूकोज, रोटी आदि में स्पोर बहुत जल्द घर कर जाते हैं। (देखिए चित्र ३)। हवा में २०° सें० से ३०° सें० तक गर्मी रहने पर और आर्द्रता ८० से बढ़कर १०० प्रतिशत होने पर स्पोर बहुत तेजी से बढ़ते हैं। साथ ही स्वस्थ स्पोर अनेक रंग के होते हैं—जैसे सफेद, लाल, काला आदि। जब हवा का तापमान ५० सेंटीग्रेड या उससे कम हो जाता है, तब स्पोरों का बढ़ना बन्द हो जाता है और वे मर जाते हैं। जब तापमान कम हो जाता है, तब स्पोर मजबूत होकर बढ़ते हैं। जितनी ही अधिक वायु की आर्द्रता होगी, उतने ही ये पुष्ट होते हैं और इनकी वृद्धि शीघ्रता से होती है। इसलिए इनकी वंश-वृद्धि वर्षा ऋतु में अधिक होती है और ये अधिकतर बाँस में लगकर क्षति पहुँचाते हैं। यदि पूर्वकथित १००% तक आर्द्रता वायु में आ गई, तो केवल तीन दिनों में ही स्पोर बाँस को अत्यन्त कमजोर बना देते हैं। इसलिए, कभी बाँस को बन्द घर में या बाँधकर नहीं रखना चाहिए। बराबर इन्हें ताजी हवा मिलती रहनी चाहिए। फफुँदी के कीड़े (स्पोर) २ से ३ मि० तक की वायु-तरंग को पसन्द नहीं करते, जो बाहर में और खुले बाँस में मिलती रहती है। परीक्षण करके देखा गया है कि उपर्युक्त नियमानुसार यदि

बाँस रखे गये हैं, तो उसमें पेंटोंजन (बाँस का तेल) की मात्रा बहुत कम हो जाती है और जिसमें फफुँदी (मोल्ड) के कीड़े भी कम हो जाते हैं। इस कारण हमें चाहिए कि पूर्वकथित रीति से बाँस से पेंटोजन को निकाल दें।

स्पोर से बचने की कुछ विधियाँ

१. फॉरमलिन (Formalin) तथा सल्फर(Sulphur) के गैस की गंध से स्पोर मर जाते हैं। स्पोर को कौन कहे, इसके तेज गैस के प्रयोग से मनुष्य तक भी मर जाता है। जहाज से भेजी जाने-वाली चीजों में फँफुदी (मोल्ड) अधिक लगती हैं; क्यों कि समुद्र-जल की आर्द्रता का उन पर प्रभाव पड़ता है। इससे बचने के लिए एक बोतल में उपर्युक्त गैस को रखकर उसको कागज से बन्द कर देना पड़ता है। उस कागज में थोड़ा छेद रखना पड़ता है, ताकि उस होकर गैस धीरे-धीरे बाहर निकल सके। उसके बाद उस बोतल को उस बक्से में रख देते हैं, जिसमें फँफुदी लगी चीजें रखी हैं और फिर बक्से को बन्द कर छोड़ देते हैं। इससे फँफुदी नष्ट हो जाती है। इसकी विधि चित्र ४ में दिखाई गई है।
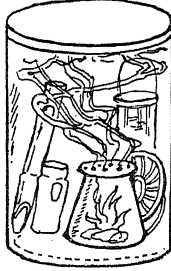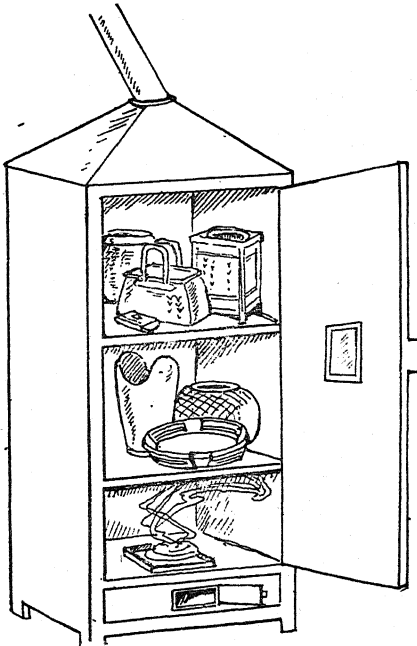
(चित्र ४)

(चित्र ५)

२. **गंधक** (Sulphur) **का प्रयोग**—इस कार्य के लिए एक पृथक् आलमारीनुमा कोठरी बनाई जाती है। यह कोठरी विशेष प्रकार की बनी होती है। उसके अन्दर बाँस की बनी सामग्री को रखकर बन्द कर देते हैं। बाँस के बने सामानों के सबसे नीचेवाली थोक के नीचे गंधक जला देते हैं। उसका धुँआ ऊपर तक जाता है। इससे सभी फँफुदी (मोल्ड) खत्म हो जाती है। गैस का निकलना बन्द हो जाने पर गंधकवाले बरतन के नीचे एक छेद होता है,

जिस होकर गंधक डालकर फिर उसे बन्द कर देना होता है। इस प्रकार, कमरे को २४ घंटे तक रखना चाहिए। देखिए चित्र ५ और ५(क)। ५(क) में कोठरी की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई का सही रूप दिखाया गया है।

फँफुदी लग जाने से बाँस कमजोर हो जाता है। अगर फँफुदी लगे किसी बाँस के टुकड़े पर दबाव डाला जाय, तो वह तुरत टूट जाता है।
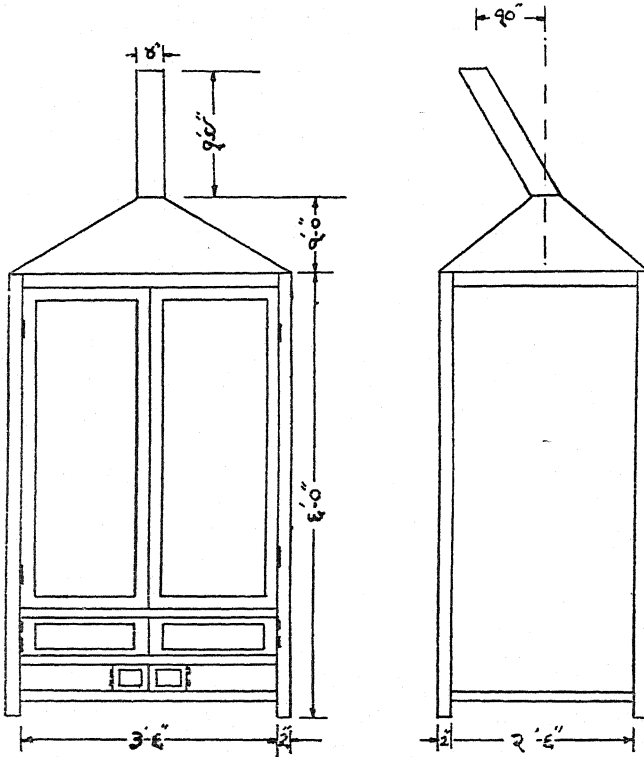
(चित्र ५क)
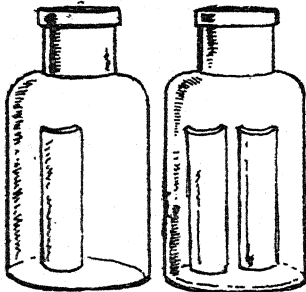
(चित्र ५ख)

२. **प्रयोग-प्रामाणिकता**—बाँस के समान भाग के दो टुकड़ों को लीजिए। एक को खड़ा करके किसी बोतल में रखिए। दूसरे टुकड़े में (Sodium) तथा पेंटाक्लोरोफिनॉल (P. C. P.) लगाकर उसे भी दूसरी बोतल में रखिए। दोनों को कम-से-कम एक महीने तक २८ से ३०

सेंटीग्रेड आर्द्रता में रहने दीजिए। उसके बाद देखने से पता चलेगा कि जिस टुकड़े में उपर्युक्त द्रव्य नहीं लगाया गया है, उसमें फँफुदी लग गई, लेकिन दूसरे में नहीं लगी।

फँफुदी (मोल्ड) से बाँस को सुरक्षित रखना

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, बाँस में मुख्यतः स्परजिलस (Aspergillus) नामक फँफुदी लगती है, लेकिन इसकी अपेक्षा रिजोपस पेनिसिलम (Rhizopus Penicilum) नामक फँफुदी (मोल्ड) कम हानि पहुँचानेवाली है।

स्पोर एक प्रकार के कीटाणु हैं, यह जितनी अधिक मात्रा में बढ़ते हैं, उसीके अनुसार फँफुदी (मोल्ड) की भी वृद्धि होती है। स्पोर को हम लोग देख नहीं सकते। ये कीड़े इतने सूक्ष्म होते हैं कि हवा में भी नहीं देखे जा सकते। अनुकूल वातावरण और वस्तु के पाने पर उस पर जम जाते हैं और अण्डा देना आरम्भ कर देते हैं।

(१) **विषाक्त वस्तुओं का प्रयोग**—पारदीय रसायन (Mercurial chemical) अनेक प्रकार के होते है, लेकिन द्विरदीय पारद (Mercuric chloride) इस काम के लिए प्रयोग किया जाता है। इस विलयन को पानी के साथ मिलाकर छिड़कते हैं। विलयन बनाने की विधि निम्नलिखित है—
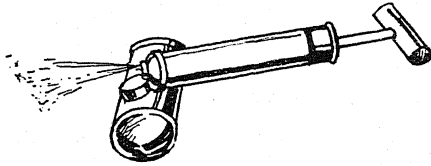
(चित्र ६)

(Mercuric chloride) ($HgCl_2$) ०·१ ग्राम और जल १०० ग्राम दोनों को मिलाकर विलयन बनाते हैं और साधारणतः तैयार वस्तुओं पर छिड़कते हैं। इसका छिड़काव उन्हीं वस्तुओं पर करना चाहिए, जो भोज्य पदार्थ नहीं हैं; क्योंकि यह विषैला होता है। छिड़काव करने की पिचकारी चित्र ६ में दिखाई गई है।

(२) **अन्य आरगेनिक रासायनिक का प्रयोग**—इसकी दो विधियाँ हैं : एक शीत-प्रणाली और दूसरी उष्म-प्रणाली।

(क) **शीत-प्रणाली**—घुलनेवाला पी० सी० पी० (Soluble P. C. P.) १ ग्राम और जल १०० ग्राम, दोनों को ठीक से मिलाकर उसमें बाँस की बनी वस्तुओं को २४ घंटे के लिए छोड़ देना चाहिए। फिर, उन्हें निकालकर धूप में सूखने के लिए कम-से-कम तबतक छोड़ देना चाहिए, जबतक उनका पानी सूखकर केवल १५% रह न जाय। लेकिन, यह विधि सूखे हुए बाँस की वस्तुओं के लिए है।

(ख) **उष्म-प्रणाली**—यह केवल कच्चे बाँस की बनी वस्तुओं में व्यवहार की जाती है। यह विधि बाँस से तेल-पदार्थ निकालने, सुखाने तथा फँफुदी से बचाने के काम में व्यवहृत होती है। घुलनेवाला (Soluble) P. C. P. १ ग्राम, सोपलेस सोप (Soapless soap) ०·८ ग्राम तथा जल १०० ग्राम, इन तीनों को मिलाकर और उसमें सामान रखकर २० मिनट तक उबाला जाता है। उसके बाद सामान को निकालकर सूती वस्त्र से पोंछ दिया जाता है। फिर, उन्हें कम-से-कम दो सप्ताह तक तबतक धूप में

सुखाते हैं, जबतक कि उनमें केवल १५ प्रतिशत ही जल न रह जाय। बाँस में जलीय परिमाण का पता लगाने का एक यंत्र होता है।

(ग) **अन्य उपाय**—कीड़े अधिकतर शिशिर ऋतु में लगते हैं। इस कारण इस ऋतु में बाँस के बने हुए सामानों को अगर पानी में डुबोकर रखा जाय, तो इससे उसमें कीड़े नहीं लगेंगे।

कीड़े से क्षतिग्रस्त सामान को अच्छा बनाने के उद्देश्य से सामान को सदा पानी में अथवा नमक मिले हुए जल में डुबोकर रखना चाहिए। इससे कीड़े लगना बन्द हो जाता है।

इसके लिए दूसरा उपाय भी काम में लाया जा सकता है। अगर वस्तु या बाँस पर शीशे का तरल लेप एक परत लगा दिया जाय, तो भी कीड़ों का डर जाता रहेगा।

इसी तरह यदि बाँस को गरम पानीवाले झरने के नीचे कुछ क्षण रख दिया जाय, तो उसमें भी कीड़े लगने की सम्भावना नहीं रहेगी।

अथवा सॉल्युशन ऑफ् एन्० ओ० एस्० और सल्फ्युरिक सॉल्युशन (Solution of N. O. S. & Sulphuric Solution) इन दोनों को मिलाकर लगा देने से कीड़े नहीं लगेंगे। यह भी गरम पानीवाले झरने की तरह ही उपयोगी होता है। जहाँ गरम पानीवाले झरने का इन्तजाम नहीं है, वहाँ इसे ही प्रयोग में लाना चाहिए।

अथवा

बोरिक एसिड सॉल्युसन में यदि १५ से २० मिनट तक बाँस को गरम किया जाय, तो कीड़े नहीं लग सकेंगे।

इस काम के लिए 'गाभ'[१] फल का रस (Persimon juice) भी व्यवहृत होता है। इसे यदि एक बोतल में बन्द करके दो-तीन वर्षों तक छोड़ दिया जाय और तब उसको बाँस पर लगा दिया जाय, तो उस बाँस से बनी वस्तुओं में कीड़े हरगिज नहीं लगेंगे।

इस तरह डी० डी० टी० और पी० सी० पी० रसायन के द्वारा भी कीड़े मारे जाते हैं। दोनों को बराबर भाग में मिलाकर पतला घोल बना लेना चाहिए। बाद,

---

१. 'गाभ' (Persimon) एक प्रकार का वृक्ष होता है और उसके फल का नाम भी 'गाभ' ही है। यह भारत में भी सर्वत्र पाया जाता है। पकने पर इसका फल कसैला-मीठा होता है। लोग खाते भी हैं। यह दवा के काम में भी आता है। जब यह कच्चा रहता है और इसका रंग सबुज होता है; तभी इसे संग्रह कर लकड़ी के पटरे पर लकड़ी से ही पीस देते हैं। बाद, कपड़छान कर लेते हैं। पश्चात्, इसे लकड़ी या मिट्टी के बरतन में उस स्थान पर रख छोड़ते हैं, जहाँ घना अन्धकार हो और वायु का प्रवेश भी नहीं हो तथा वह स्थान खूब ठंडा हो। एक सप्ताह बाद निकालकर पुनः इसे छान लेते हैं और पानी मिलाकर १५ या २० मिनट तक गरम करते हैं। बाद, इसे पुनः दो या तीन बार छानते हैं। इस विधि से जब जूस तैयार कर लेते हैं, तब इसका व्यवहार करते हैं। जापानी इसे चित्र बनाने के काम में भी लाते हैं।—ले०

इसके फुहारे (Spray) द्वारा यदि बाँस को भिगो दिया जाय, तो लगे हुए कीड़े भी नष्ट हो जायेंगे। ऐसे फुहारे दिये गये बाँस की बनी वस्तुओं में कभी कीड़े नहीं लगेंगे।

Sodium Silicate Solution को पानी में मिलाकर कूँची से वस्तुओं पर पोतना चाहिए और उसे तैयार माल पर लगाना चाहिए।

कपूर का तेल (कैम्फर ऑयल) भी इस कार्य के लिए बहुत ही लाभप्रद होता है। बाँस के तैयार माल पर इसका भी प्रयोग करना चाहिए।

Petroleum के साथ Bordeaux Solution मिलाकर अगर सामान पर लगाया जाय, तो इससे भी कीड़े मर जाते हैं। Mixture of lime and copper Sulphate को Mercuric chloride के साथ मिलाकर सामान पर लगाने से भी कीड़ों से छुटकारा मिलता है।

(३) फँफुदी और कीड़ों से बचाव के लिए निम्नलिखित तरीके भी बताये गये हैं—

(क) बाँस को सीमित अवधि में काटना।

(ख) बाँस के कच्चे सामान को सुरक्षित रखना और उसकी रक्षा का उपाय करना।

(ग) तेल को निकाल देना।

(घ) रासायनिक पदार्थों का प्रयोग।

(च) रँगना।

(छ) लेप देना।

(ज) अन्यान्य विधियाँ।

(क) बाँस को खास अवधि में काटने का ज्ञान किसानों में बहुत दिनों से है, जिसके अन्दर बाँस काटने से उसमें कीड़े नहीं लगते। यह प्रमाणित हो चुका है कि बाँस काटने के दो समय होते हैं—(१) अक्टूबर से नवम्बर तक या जनवरी से फरवरी तक (जाड़े) में और (२) जुलाई से अगस्त तक। कृषकों का कहना है कि प्रत्येक मास की प्रथम तिथि (प्रतिपदा कृष्णपक्ष) को बाँस काटना चाहिए।[1]

जापान में बाँस काटने और उसके सामान बनाने के बीच का समय कम-से-कम ४ से ६ महीने तक का होता है। उदाहरणार्थ, अक्टूबर में कटे बाँस का तेल जून में निकाला जाता है और उसके साफ (Bleaching) करने का समय भी मई तथा जून में होता है।

बाँस को कीड़े से सुरक्षित रखने के लिए और भी अनेक प्रकार के रासायनिक पदार्थ व्यवहार किये जाते हैं।

---

१. जापान के कृषि और वन-विभाग के एक रासायनिक वैज्ञानिक 'श्रीमिमुरा' का मत है कि किसानों द्वारा निश्चित अवधि में काटे गये बाँसों तथा अन्य समय में काटे गये बाँसों में कोई खास अन्तर नहीं पाया जाता है। हाँ, निश्चित समय पर काटने का विचार अन्य प्रकार की लकड़ियों में अवश्य किया जाता है।

(१) सॉल्ट (Salt), (२) सोडियम-कारबोनेट (Sodium Carbonate), (३) सोडियम बाइकारबोनेट (Sodium Bicarbonate), (४) सोहागा (Borax), (५) जिंक क्लोराइड (Zinc Chloride), (६) सलफ्युरिक केमिकल्स (Sulphuric Chemicals) और (७) सोडियम फ्रोरिक (Sodium froric & its Commercial Products)।

बाँस का रंग हरा बनाये रखने के लिए बाँस को बहते हुए पानी में रखकर उसे पुआल की बनी चटाई से ढक देना चाहिए। इससे बाँस का ऊपरी भाग ज्यादा नहीं सूखने पाता।

तैयार किये गये पदार्थों का फँफुदी से बचाव

समुद्र में जहाज के द्वारा बाँस की बनी वस्तुओं को ले जाने से उनमें फँफुदी शीघ्र पकड़ लेती है; क्योंकि समुद्र के वायु-मण्डल में जलीय अंश अधिक होता है। इसलिए उससे बचने के लिए (१) फॉरमलिन (Formalin) गैस और (२) केमिकल मरक्युरी बाइक्लोराइड से बने विलयन का फुहारा वस्तु पर दिया जाता है। आरगेनिक केमिकल P. C. P. और K. B. K. का भी शीत-प्रणाली द्वारा उन सामानों पर प्रयोग किया जाता है, जिनमें से जल निचोड़ लिया गया है। शीत-प्रणाली की विधि पहले बतलाई गई है।

बाँस काटने की विधि

बाँस को टँगारी या दबिला (काँता) से काटना अच्छा है। अगर वह आरी से काटा जाता है, तो उसकी जड़तक काटना मुश्किल हो जाता है। इसलिए कारीगर बाँस को आरी से काटना पसन्द नहीं करते। जब वे आरी से काटते भी हैं, तब वे जड़ पर भी अनेक बार प्रहार करते हैं और इससे बाँस की जड़ नष्ट हो जाती है। बाँस भूमि के नीचे के डंठल से निकलता है, जड़ से नहीं। इस कारण जितना जल्द हो, बाँस के जड़ को नष्ट ही कर देना सर्वोत्तम है। जब झुके स्थान पर के बाँस को काटना हो, तो प्रथम प्रहार नीचे की ओर से किया जाना चाहिए और तब दोनों ओर से तथा अन्तिम प्रहार ऊपर की ओर से।
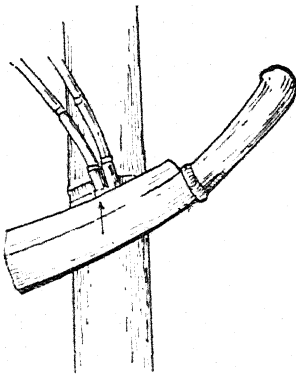
(चित्र ७)

कटे हुए बाँस को जिधर ले जाना है, उसी दिशा की ओर जड़ रखना चाहिए; क्यों कि इससे ले जाने में बहुत सुविधा होती है।

(चित्र ८)

(चित्र ९)

(चित्र १०)
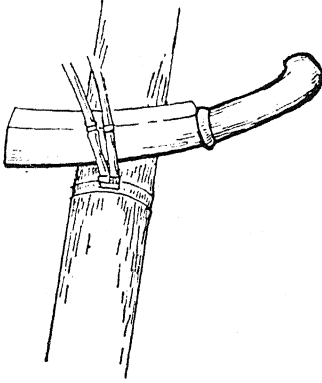
शाखाओं को काटना

शाखाओं को काटते समय इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि बाँस की हरी त्वचा को चोट न पहुँचे और न उसमें कोई खुरच हो; क्योंकि खुरच लगे बाँस का मूल्य कम हो जाता है। शाखाओं को काटने का तरीका यह है कि प्रथम हल्का प्रहार जड़ की ओर से शाखा के आधार पर करना चाहिए (चित्र ७) और तब किनारे से, उसकी विपरीत दिशा की ओर से, प्रहार होना चाहिए (चित्र ८)। अक्सर इस काम के लिए दबिला (काँता) को ही व्यवहार में लाया जाय, तो सर्वोत्तम हो।
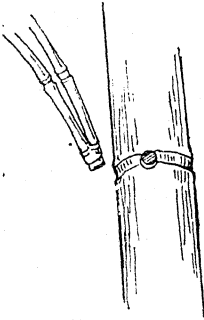
इस ढंग से शाखा आसानी से हट जायगी (चित्र ९) और बाँस की त्वचा भी ज्यों-की-त्यों बनी रह जायगी। अगर उपर्युक्त ढंग से प्रथम प्रहार नहीं किया जाय, तो शाखा के साथ-साथ बाँस की त्वचा भी कट जायगी (चित्र १०) और बाँस का मूल्य घट जायगा।
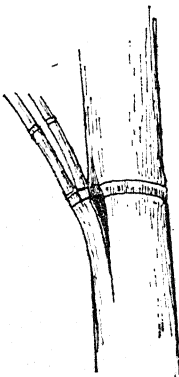
आरी से शाखा को काटने की विधि के लिए बाँस की जड़ में पहले हल्का कटान करना चाहिए और तब उसके बाद आरी की मूठ से विपरीत दिशा से प्रहार करना चाहिए। इस विधि के लिए चित्र-संख्या ११ और १२ ध्यान से द्रष्टव्य हैं।

कटे बाँस को सुरक्षित रखना

ऐसे सामानों से काम करना आसान है, जो दो मास पूर्व सूखे और छायादार स्थान में रख दिये गये हों। इस प्रकार नहीं रखे गये बाँस को चीरना या उससे कमचियाँ बनाना मुश्किल होता है। ठीक मौसम में काटे गये बाँस करीब १ फुट ऊँचे

बने मंच पर ओस या वर्षा से बचाकर रखना चाहिए। इस तरह रखने से लगभग एक वर्ष तक तो बाँस का रंग हरा बना रह जाता है।
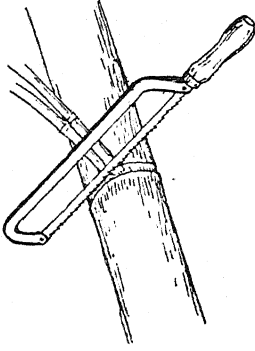
(चित्र ११)

बाँस को सुरक्षित रखने की महत्त्व-पूर्ण बात यह है कि उसे धूप, ओस तथा वर्षा से बचाया जाय। अगर बाँस में अधिक आर्द्रता लगे अथवा वह सटा-सटाकर रखा जाय, तो वह नष्ट हो जायगा। मोड़ने के कार्य के लिए एक वर्ष का बाँस अगर फाड़-चीरकर रखा गया हो, तो जब कारीगर उससे काम लेना चाहेगा, वह उसे दो दिनों तक पानी में छोड़ देगा, और तब आसानी से उसकी कमचियाँ बना लेगा।

बाँस की व्यापारिक विधि

बाँस शायद ही कभी कोई किसी किसान की कोठ से खरीदता है। अधिकांशतः बाजार से ही लोग खरीदते हैं। इसका व्यापारिक तरीका नीचे दिया जाता है—

बाँस के व्यास और उसकी लम्बाई को ध्यान में रखकर ही खरीद करना चाहिए। बाँस के व्यास या उसके मूल्य से सीधा सम्बन्ध होता है। व्यास का अर्थ होता है ५ फुट ऊँचाई पर बाँस की गोलाई। इस गोलाई की माप ही बाँस का प्रामाणिक व्यास माना जाता है। पाँच फुट ऊँचाई से नीचेवाले हिस्से का व्यास यदि पाँच इंच कम हुआ, तो उसे नहीं खरीदना चाहिए। इस तरह भारत में बाँस की जाति और मुटाई पर ही इसका मूल्य-निर्धारण किया जाता है।
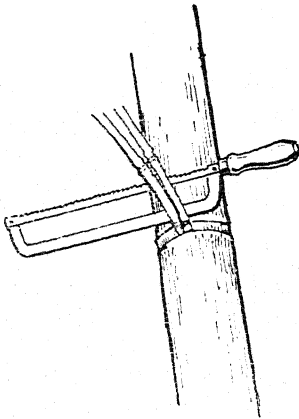
(चित्र १२)

गट्ठर बनाने की विधि

बाँस का गट्ठर व्यापारिक ढंग से बाँधा जाता है। गट्ठर बाँधने का तरीका बाँस की मुटाई के अनुसार होता है। बाँस जितना ज्यादा मोटा होगा, उतनी ही कम संख्या एक गट्ठर में होगी। मोटे बाँसों का एक गट्ठर ३ से ६ तक की संख्या में

होता है। पहाड़ी बाँसों का गट्ठर बारह, सोलह और पचीस की संख्या में होता है। जिसे बरही, सोरही और पचीसी कहते हैं। इसकी जानकारी का तरीका रस्से की खास लम्बाई के अनुसार होता है। खास लम्बाई के रस्से का उल्लेख होता है, तो इससे समझा जाता है कि उसमें बाँसों की संख्या इतनी है। विभिन्न स्थानों के बाँस एक गट्ठर में विभिन्न संख्याओं में आते हैं।

द्वितीय भाग

सामान तैयार करने से पूर्व मूलभूत विधियों के ज्ञान

इस भाग में बाँस के सामान बनाने के सम्बन्ध में मूलभूत कार्यों को वतलाया जायगा। तैयारी के कार्य का अर्थ होता है—गोल बाँस को काटना, चीरना, कमची बनाना तथा बुनाई या सामान बनाने के पूर्व तत्सम्बन्धी सारे कार्य का सम्पादन करना। बाँस-शिल्प-कार्य में जापान के दक्ष कारीगर इस कार्य को वस्तु-निर्माण से भी अधिक महत्त्व देते हैं; क्योंकि विभिन्न वस्तुओं के निर्माण के लिए सुन्दर कमचियाँ और अन्य उपकरण तैयार करने पर ही कलात्मक वस्तुओं को आकर्षक ढंग से बनाना सम्भव है। कारीगरों का कहना है कि केवल बाँस फाड़ने का काम सीखने में ही तीन वर्ष लगते हैं। मधुमक्खी के छत्ते के आकार की बुनाई की सैकड़ों टोकरी बनाने के बाद कमचियाँ बनाने का काम ठीक से आ सकता है। कारण यह है कि इस तरह की टोकरी बनाने में एक ही मुटाई तथा चौड़ाई की अनेक कमचियाँ बनानी पड़ती हैं। ऐसी टोकरी केवल अनुभवी कारीगर ही बना सकता है।

काटना, चीरना तथा अन्य कार्य

तैयारियों में मुख्यतः काटने और चीरने के कार्य तथा उनसे सम्बद्ध अन्य कार्य भी आते हैं। तैयारी के कार्यों में निम्नलिखित कार्य करने पड़ते हैं—

(१) बाँस की सतह से मैल तथा गर्द को हटा देना।

(२) उपयुक्त लम्बाई पर से आवश्यकतानुकूल कटान करना।

(३) गाँठें काटना।

(४) कभी-कभी बाँस की त्वचा को छीलना पड़ता है, जिससे रंग करने में आसानी हो और सहज में ही उससे तेल निचोड़ा जा सके।

(५) आवश्यकतानुसार समान भाग की चौड़ाई में बाँस को चीरना और चीरी हुई वस्तुओं को इकट्ठा करना।

(६) आवश्यकतानुसार समान मुटाई में फाड़ना।

(७) आवश्यकतानुसार समान भाग की चौड़ाई में काटना।

(८) किनारा मारना।

इस तरह की पद्धति को अपनाने से यह निष्कर्ष निकलता है कि मुख्य काम जैसे—काटना, गिरह काटना, फाड़ना, कमची बनाना तथा कलात्मक वस्तुओं के निर्माण के लिए ऐसे अन्य कार्य करना, जिनसे रँगना तथा पॉलिश करना आसान हो।

पॉलिश करना

जिनकी त्वचा उजली, बुकनीदार होती है अथवा जिनकी सतह गंदी रहती है (जैसा कि चाभ), उन बाँसों में पॉलिश करना जरूरी होता है।

(१) पानी में बाँस को डुबो दिया जाता है और पुआल की बनी रस्सी लपेटकर, चिकना करनेवाली बालू से उसे चिकना किया जाता है और तब पानी से धो दिया जाता है। इसे रस्सीवाली पॉलिश कहते हैं।

(२) बाँस के ऊपर की पॉलिश महीन बालू अथवा चिकनी बालू से की जाती है।

(३) मुलायम त्वचावाले बाँस (हरौती या पहाड़ी बाँस) की पॉलिश करने के लिए बालू में उसके बराबर चोकर या भुस्सी मिलाई जाती है और इसी से बाँस को चिकना किया जाता है।

(४) किन्तु केवल धान की भुस्सी से चिकना करना सर्वोत्तम होता है और इससे पंखे, कूँची आदि की मूठें भी चिकनी की जाती हैं।

चिकना करने के और तरीके भी हैं, जिनसे लकड़ी की बनी वस्तुएँ चिकनी की जाती हैं।

(५) भिन्न-भिन्न प्रकार के बाँस की सतह भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। व्यवहार के अनुसार उन्हें तैयार करने की भी विधियाँ भिन्न हैं। उनमें से कुछ विधियाँ नीचे दी जा रही हैं—

(क) **धान की भुस्सी से**—साधारण बाँस अच्छी बालू या धान की भुस्सी में (बालू और भुस्सी का अनुपात १ : ५) पानी मिलाकर चिकना किया जाता है। अच्छी किस्म के बाँस को चिकना बनाने के लिए केवल भुस्सी का व्यवहार किया जाता है; क्योंकि बालू देने से उसकी सतह को क्षति पहुँच सकती है। रुखड़ी सतहवाले बाँस तथा हरौती और पहाड़ी को या ऐसे बाँस को, जिनकी सतह पर काले या उजले धब्बे रहते हैं, चिकना करना पड़ता है। इस प्रकार, चिकना किये गये बाँस को धूप में सुखा लेते हैं और उसमें से तेल निकाल लेते हैं। यह विधि ऐसे बाँसों के लिए नहीं है, जिनकी सतह सुन्दर और मुलायम होती है, जैसा कि चाभ या मकोर तथा कुछ अन्य बाँस। यह विधि केवल उन बाँसों के लिए है, जिनमें प्राकृतिक सुन्दरता का अभाव रहता है।

(ख) **पुआल की बनी डोरी से**—खास किस्म के बाँस को, जिसकी सतह में प्राकृतिक सुन्दरता है, सामान्यतः केवल पुआल की डोरी से चिकना किया जाता है। इन बाँसों से अगर सब तेल निकाल लिया जाय, तो इनका रंग बदल जाता है और वे बेकार हो जाते हैं। अतः, तेल निकालते समय पूरी सावधानी बरती जाती है।

(ग) **बालू से**—पहाड़ी बाँस की सतह पर काले धब्बे होते हैं और उसमें अच्छी चमक भी नहीं होती। इसलिए उन्हें बालू से चिकना किया जाता है। ऐसे बाँस अधिकतर बागीचे की सजावट के लिए घेरा के काम में आते हैं और मकान के छप्पर छाने के काम में भी आते हैं। पतले चाभ को बालू से चिकना कर पहाड़ी बाँस के स्थान पर व्यवहार किया जाता है।

(घ) **चीनी मिट्टी, हाथी के दाँत, शंख और हरिन के सींग से**—इन सबसे चिकना करने से बाँस की सतह पर दबाव पड़ता है, जिससे उसका रुखड़ापन दूर होकर उसमें एक प्रकार की चमक आ जाती है।

यह विधि वस्तु-निर्माण के सामानों को अन्तिम रूप देने के समय काम में लाई जाती है। उदाहरणार्थ, पंखे के फ्रेम अथवा बाँस की पिटारी को चिकना बनाते समय यह पद्धति अपनाई जाती है।

सामानों के लिए बाँस को काटना और सामानों को सुधारना

सामानों को तैयार करने के लिए बाँस को काटते समय दो प्रकार की आरी काम में लाई जाती है। एक तो प्रचलित धारवाली आरी है और दूसरी विशिष्ट प्रकार की पतली धारवाली आरी होती है। लेकिन, पहली की अपेक्षा दूसरी ही अधिक व्यवहृत होती है।

(१) **आरी से काटना**—आरी से काटते समय कारीगर को यह देखना चाहिए कि उसकी धार बाँस पर समकोण बनावे।

बाँस को बायें हाथ से पकड़ लेना चाहिए और बाँस को चित्र १३ में दिखाई गई दिशा में घुमाना चाहिए। काटने का तरीका ऐसा हो कि आरी अपने सामने की ओर ही
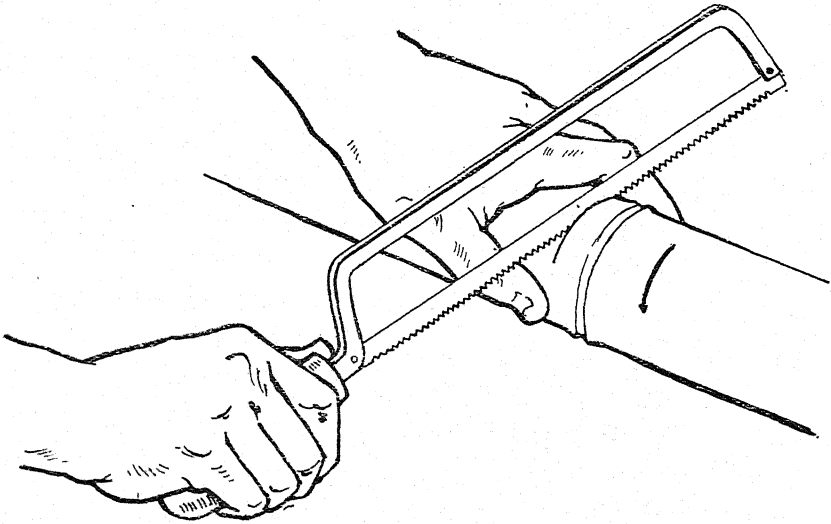
(चित्र १३)

काटे और उसकी कुन्नी बाँस में ही खिंचकर आवे। अगर बाँस को घुमाकर दूसरी ओर से काटेंगे, तो कटान की सतह चिकनी न होगी और तब उसे फाड़ना या काटना कठिन हो जाता है।

जब चीरे हुए बाँस को काटना हो, तब उसे बाहरी सतह की ओर से काटना चाहिए। छुरी के द्वारा सतह की ओर से थोड़ा काट देना चाहिए और तब उसे हाथ से तोड़ देना चाहिए।

(२) **काटने में सावधानी**—अभीष्ट लम्बाई के सामान काटते समय बाँस के उस स्थान को छोड़ देना चाहिए, जहाँ डालियाँ निकली रहती हैं। इस भाग को विभक्त करने में कठिनाई होती है।

सामान की बुनाई के काम में आनेवाली कमचियों के लिए बाँस के सबसे अच्छे भाग व्यवहार में लाये जाते हैं। चूँकि, नौसिखुए लोगों के लिए लम्बा सामान बनाना कठिन है, इसलिए उन्हें सबसे अच्छे बाँस को व्यवहार में नहीं लाना चाहिए। आम तौर पर साधारण बुनाई की छोटी टोकरियों के लिए ६ फीट, मझोले के लिए १२ फीट तथा बड़े आकारवाली के लिए १८ फीट लम्बाई होती है। अगर छोटी लम्बाईवाले पोर का बाँस हो, तो उससे लम्बे सामान नहीं बन सकते। इसलिए सामान के अनुसार उपयुक्त पोरवाले बाँस का व्यवहार करना चाहिए।

इसके बाद बुनाई करने के लिए कम लम्बाईवाले सामान बनाते वक्त गिरहवाले भाग का व्यवहार नहीं करें, इसके लिए भी सावधानी बरतनी चाहिए। दो गिरहों के बीच की दूरी देखकर ही उसके अनुसार बुनाई करने के लिए बाँस के सामान बनाने चाहिए।

खासकर अर्द्ध व्यासवाले पिंजड़ों या टोकरियों के बनाते समय सतर्कता बरतनी चाहिए। निर्मित वस्तुओं के छोर पर मोड़ दिया जाता है अथवा मुँह के किनारे पर खोल बनाये जाते हैं। यह भाग बनाना बहुत कठिन है और उन स्थानों पर गिरहवाले भाग व्यवहार में नहीं लाये जाते हैं। इसलिए बनानेवाली वस्तुओं के आधार-भाग बनाते समय न केवल सामान की लम्बाई, बल्कि गिरहवाले भागों के लिए भी सतर्क रहना चाहिए। अगर यह सतर्कता नहीं बरती जाय, तो उससे बनी वस्तुओं की आकृति बहुत भद्दी होगी।

चूँकि, गिरहों के बीच की दूरी अनिश्चित रहती है और अभीष्ट लम्बाई मिलना भी कठिन है, इसलिए लम्बे सामान का व्यवहार करना चाहिए। इस काम में खर्च के खयाल से मितव्ययिता तो नहीं होती, किन्तु वस्तु के आकार तथा निर्माण की दृष्टि से यह सबसे अच्छा तरीका होता है।

(३) **गिरह काटने की विधि**—गिरह काटने का अर्थ गिरह के नीचे का उठा हुआ भाग काटना है। यह कार्य बाँस को चीरनेवाले काँते से किया जाता है।

(४) **चीरनेवाले काँते का व्यवहार**—बायें हाथ से बाँस को पकड़िए और दाहिने हाथ से काँते को पकड़कर काटिए। चित्र १४ में बताई गई दिशा में बाँस को धीरे - धीरे

घुमाते जाना चाहिए। लेकिन बाँस की सतह खुरच न जाय, इसके लिए सतर्क रहना पड़ता है। खुरच लगने से उस स्थान पर बाँस को पतला करते समय टूट जाने का भय रहता है और जोर से काँते के प्रहार होने से काँता फिसल जा सकता है और उससे कारीगर का बाँया हाथ कट जाने का डर रहता है। इसलिए दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली से, बाँस को पकड़े रहिए और बाँये हाथ को फिसलने से बचाइए।
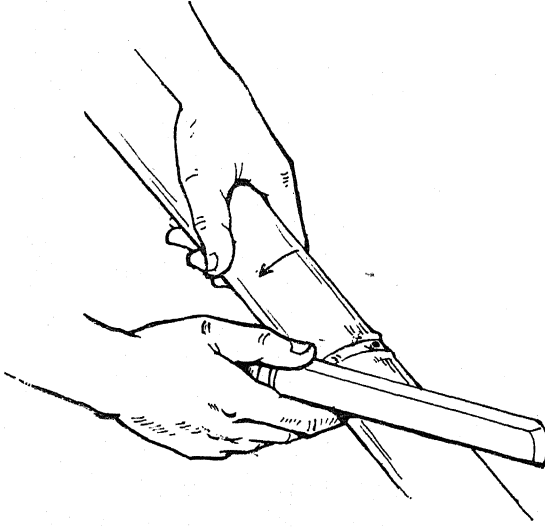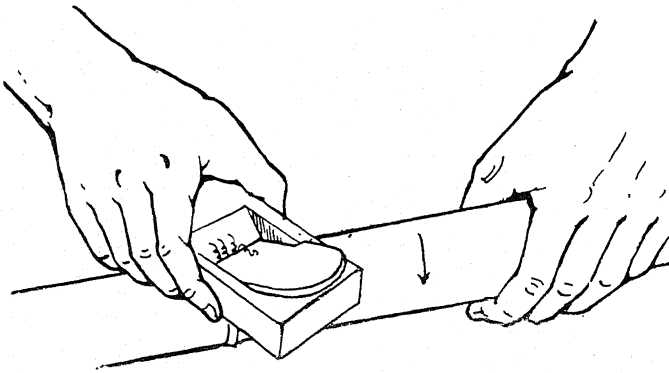
(चित्र १४)

(चित्र १५)

जब बाँस की ऊँची गिरह हो, तो चोट पहुँचाने के लिए हाथ को घिसका-घिसका कर चोट करनी चाहिए।

(५) **रंदा द्वारा**—(क) छोटे रंदे से गिरह काटते समय बाँस को घुमाते जाइए, तो गिरह जल्द ही हट जायगी। चित्र १५ में देखिए। अथवा बढ़ई के रंदे से बाँस को (चित्र १६ में प्रदर्शित ढंग से) घुमाते हुए गिरह हटाइए।

(ख) गिरह हटाते समय गहरी चोट नहीं देनी चाहिए; क्योंकि उससे बाँस के रेशे कट जाते हैं, जिससे पतली कमचियाँ बनाना कठिन हो जाता है।

(ग) महीन बुनाई के सामान के लिए गिरह को पूर्ण रूप से हटा देना चाहिए।

सस्ती वस्तुओं के लिए गिरह काटकर सामान तैयार किये जाते हैं। जब बाँस की कलात्मक वस्तुएँ बनानी होती हैं, तब गिरहों को रखना आवश्यक होता है। उससे बने सामान अधिक कलात्मक और सुन्दर प्रतीत होते हैं।
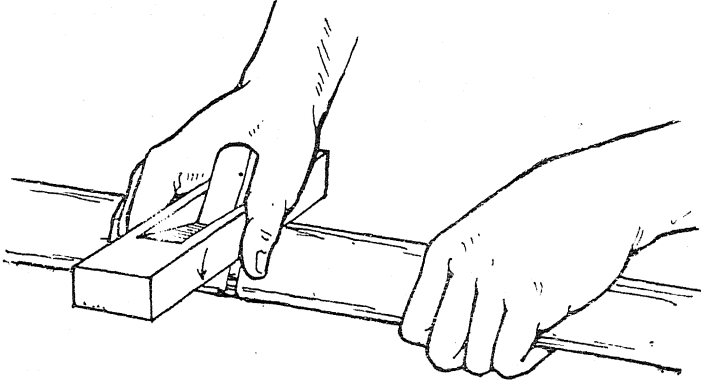
(चित्र १६)

(घ) कलात्मक वस्तुओं के सामानों को तैयार करते समय बाँस से त्वचा हटाकर निखार देना चाहिए। त्वचा लगे बाँस को न तो रँगना सम्भव है और न उचित ही; क्योंकि उसमें चिकनापन रहता है।

(च) चित्र १७ में दिखाये गये औजारों से कमच्चियाँ बनाने के लिए बाँस से छिलके हटाये जाते हैं। इन औजारों का व्यवहार करते समय बाँस को किसी आधार पर रखकर चित्र १८ में प्रदर्शित ढंग से खुरचना चाहिए। त्वचा खुरचने के समय
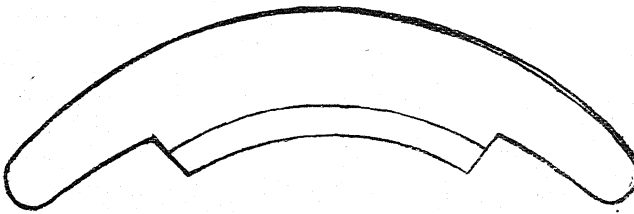
(चित्र १७)

गाँठ पर से छिलनेवाले औजार को नीचे की ओर दबाकर ले जाना चाहिए, जिससे गाँठ और बाँस की सतह आसानी से समान रूप में हो जाय और बाँस पर किसी तरह का
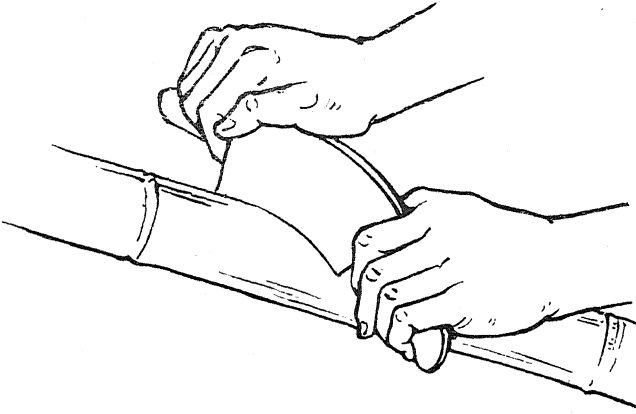
(चित्र १८)
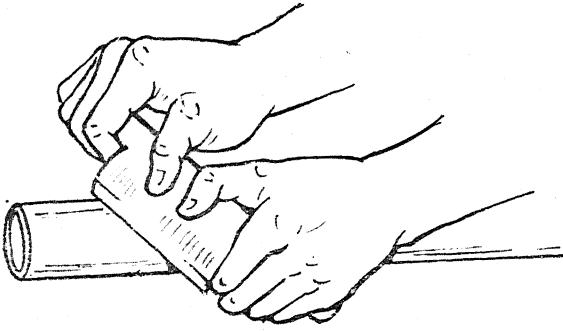
(चित्र १९)

दबाव भी नहीं पड़े। (चित्र १९ देखिए)। ऐसा नहीं करने से गाँठ पर औजार उछलता है तथा गाँठ का दूसरा हिस्सा कट जाता है।

त्वचा हटाते समय बाँस के टुकड़े को, एक सिरे से दूसरे सिरे तक, छीलना चाहिए। पूरे का पूरा हिस्सा एक साथ नहीं छीलने से सुन्दर और बराबर सामान बनाना कठिन हो जायगा।

कारीगर के अनुभव के अनुसार त्वचा हटाने के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें महत्त्वपूर्ण हैं—

(१) औजार खूब तेज रहे। किनारे को काटते समय खुरच का चिह्न रह जाता है, इसलिए औजार को अपने सम्मुख सीधा रखकर व्यवहार करना चाहिए।

(२) चित्र १७ में दिखाये गये औजार का व्यवहार करते समय, औजार को, काटनेवाले किनारे से विपरीत दिशा की ओर झुका रहना चाहिए (साधारण औजार से इसमें भिन्न बात है) और तब जड़ के सिरे से बाँस में खुरच बनाना चाहिए और गिरहवाले हिस्से में खुरच बनाते समय बाँस को घुमाते रहना चाहिए।

बाँस को निखारने की विधि

बाँस को निखारने की प्रमुख दो विधियाँ हैं—

(१) जल और मिश्रित पदार्थ (घोल या सॉल्युशन बनाकर) और

(२) गरम तरीके से।

बाँस से जलीय पदार्थ निकालने के बाद बाँस में एक प्रकार का पीला रंग आ जाता है, जिसे दूर करने के लिए उसे निखारना पड़ता है। बाँस को किसी खास रंग में रँगने के पहले बाँस के स्वाभाविक पीलापनवाले रंग को हटा देना जरूरी होता है, अन्यथा रँगने के बाद उस स्वाभाविक रंग के कारण उसमें बाधा पड़ती है। उसकी भी झलक रंग में आ जाती है। इसीलिए रँगने के पहले बाँस को निखार लेना आवश्यक है।

प्रथम विधि—(क) Alkaline सॉल्युशन १ अंश में एक घण्टे तक बाँस को डुबो लेने के बाद उससे निकालकर निम्नलिखित विधि अपनानी चाहिए—

एसेटिक एसिड को पानी में डालकर और बाँस के सामान को उसमें डुबोकर उसे आधा घण्टे तक उबालना चाहिए। उसके बाद उसे निकालकर पानी से धोकर सुखा लेना चाहिए।

सॉल्युशन की विधि—

एसेटिक एसिड (Acetic Acid) —५० ग्राम।

पानी—१००० ग्राम।

(ख) लकड़ी के बने बक्से में तख्ते लगाकर उनपर बाँस के सामान को रख देना चाहिए। वे सामान पहले से ही पानी में पूर्णरूप से डुबाये हुए हों। एक दिन तक उन सामानों को वायु-अवरोधक (एयर-टाइट) बक्से में रखना आवश्यक है। उसके बाद बक्से के पेंदे में सल्फरस एनहाइड्राइड (Sulphurous Anhydride) को जलाना चाहिए। उसके बाद सामान को निकालकर और धोकर सुखा देना चाहिए।

(ग) चावल के धोवन में २ से ३ दिनों तक बाँस के सामान को डुबोकर रखने के बाद उन्हें धान की भुस्सी, पुआल के रस्से तथा पॉलिश करनेवाली बालू से चिकना करके धूप में सुखा लेना चाहिए। इस तरह से सामान अपेक्षाकृत अधिक उजले हो जायेंगे। यह विधि प्राचीन काल से व्यवहार में प्रचलित है।[१]

(घ) हाइड्रोजन पैरॉक्साइड ४ बूँद और पानी १०० ग्राम मिलाकर इसके घोल में केमिकल वस्तु Na_2SIO_3 (सोडियम सिलिकेट) चार बूँद मिला दीजिए। इसके बाद इस सॉल्युशन में बाँस को भिगोकर २०° सेंटीग्रेड तापमानवाले कमरे में दो दिनों तक रख छोड़िए। उसके बाद बाँस को निकालकर पानी से धोकर कपड़े से पोंछिए और दो दिनों तक सूर्य की रोशनी में सुखाइए।

(च) ब्लीचिंग पाउडर और मैगनेसियम सल्फाइड को ठंडे पानी में मिलाना चाहिए। इनका परिमाण इस तरह है—

ब्लीचिंग पाउडर—१०० ग्राम

मैगनेसियम सल्फाइड—२० ग्राम

जल—२००० ग्राम

---

१. तीन वर्ष के पुराने चाभ बाँस में, निखारने पर भी, थोड़ा-सा काला रंग रह जाता है। इसलिए चाभ के उजले सामान बनाने हों, तो हमें १ या २ वर्ष के बाँस को व्यवहार में लाना चाहिए।—ले०

इसमें बाँस को डालकर ऐसे घर में एक दिन रखिए, जहाँ २० सेंटिग्रेड तापमान हो। फिर, ठंडे पानी में धोकर और कपड़े से पोंछकर सूर्य-रश्मि में दो दिन रखिए।

द्वितीय विधि : वाष्प-क्रिया—इसके द्वारा २४ घण्टे तक गैस का प्रयोग करके साफ करते हैं।

(क) सोडियम क्लोराइड (नमक-$NaCl_2$) ५ प्रतिशत ३०० ग्राम जल में डालकर उसमें Acetic Acid २ बूँद डाल देना चाहिए। सॉल्युशन में सामान को रखकर आधे से १ घण्टे तक, ८० सेंटिग्रेड तापमान में रखना चाहिए। उसके बाद सामान को निकालकर २ घण्टे तक धूप में सूखने के लिए रखना चाहिए।

(ख) सोडियम क्लोराइड ३ ग्राम और जल १०० ग्राम को मिलाकर उसमें सामान को डाल देना चाहिए। फिर, उसे १००° सें० तापमान में ३० से ४० मिनट तक रखना चाहिए। उसके बाद सामान को बाहर निकालकर उसे ठंडे जल से धोकर कपड़े से पोंछ देना चाहिए। पोंछे हुए सामान को दो दिनों तक धूप में सूखने को दे सकते हैं अथवा बिजली के बक्से में ६० सेंटिग्रेड तापमान में आधे घण्टे तक रख सकते हैं।

बाँस की त्वचा (Skin) को निखारना[१]

सर्वप्रथम त्वचा-युक्त बाँस को एक घण्टे तक ठंडे पानी में डुबोकर रखते हैं। हाइड्रोजन पैरॉक्साइड (H_2O_2) ३५ प्रतिशत, सोडियम सिलिकेट ५ प्रतिशत, जल १०० प्रतिशत तीनों को मिलाकर बाँस को उसमें रख देना चाहिए और दो दिनों तक उसी स्थिति में छोड़ देना चाहिए। बाद में बाँस को बाहर निकालकर दो से तीन दिनों तक धूप में सुखाना जरूरी है। उपर्युक्त सॉल्युशन में बाँस को रखने से ही उससे बुलबुले निकलने लगते हैं। त्वचा-युक्त बाँस को सॉल्युशन में खड़ा करके रखना चाहिए। त्वचा निखारने की सर्वोत्तम विधि यही है। निखार किया हुआ बाँस प्राकृतिक बाँस से कमजोर जरूर होता है, लेकिन उसमें कोई विशेष अन्तर नहीं आता है।

बहते हुए जल में त्वचा-सहित बाँस को धोना भी अच्छा होता है।

बाँस से तेल निकालना

सामान तैयार करने के लिए कटे बाँस को काटने के तुरत बाद उसमें से तेल निकालने के बजाय उसे करीब एक सप्ताह सुखा लेने पर तेल निकालना अच्छा है।

बाँस को सुखाने की विधि यह है कि उसे एक हवादार स्थान में रखते हैं, जहाँ सूर्य की सीधी किरणें नहीं लगतीं। उसके बाद उसमें से तेल निकाला जाता है।

इस कार्य की भी दो विधियाँ हैं—सूखा तरीका और भींगा तरीका।

---

१. बाँस निखारने से दो लाभ हैं। पहला, निखार की हुई वस्तुओं में कीड़े नहीं लगते; दूसरा, निखार करने पर बाँस, लकड़ी, पत्ते आदि स्वच्छ होकर सुन्दर हो जाते हैं। उनपर कोई भी रंग आसानी से चढ़ जाता है।—ले०

(१) **सूखा तरीका (ड्राइ स्टाइल)**—सामान तैयार करने के लिए कटे बाँस को लकड़ी की अथवा कोक की आग पर रखना चाहिए और बाँस से निकलनेवाले तेल को कपड़े से पोंछना चाहिए। इसी प्रयोग से टेढ़े बाँस सीधे भी हो जाते हैं। ऐसे सामानों को एक महीने के लिए धूप में फैला देना चाहिए, लेकिन उनमें रात का ओस नहीं लगे। उस हालत में बाँस का रंग पीलापन लिये सुन्दर हो जायगा। जनवरी, फरवरी तथा मार्च की धूप इस कार्य के लिए सबसे उपयुक्त होती है।

गरमी महीने की धूप में बाँसों को रखने से उनके फट जाने का भय रहता है। वर्षा से भींग जाने पर तो अच्छा होता है, लेकिन वर्षा-ऋतु में इस विधि से बचाना ही अच्छा है। विशेष कर चाभ, रोपा, हरौती तथा पहाड़ी बाँसों के साथ यह प्रयोग किया जाता है।

बड़े पैमाने पर विधि का जो प्रयोग होता है, उसे नीचे दिया जा रहा है—

लोहे के एक बक्से में तख्ते लगा लेते हैं। उसपर बाँस के सामान रख देते हैं। नीचे पेंदे से १२० से १३० डिग्री सें० के तापमान पर २० मिनट तक गरमी देते हैं। उसके बाद सामान को निकालकर उन्हें कपड़े से पोंछ देते हैं। इस विधि में पहले गाँठ का तेल निकाल लेना चाहिए। ऐसा नहीं करने पर कभी-कभी गाँठ जोर से फट जाती है।
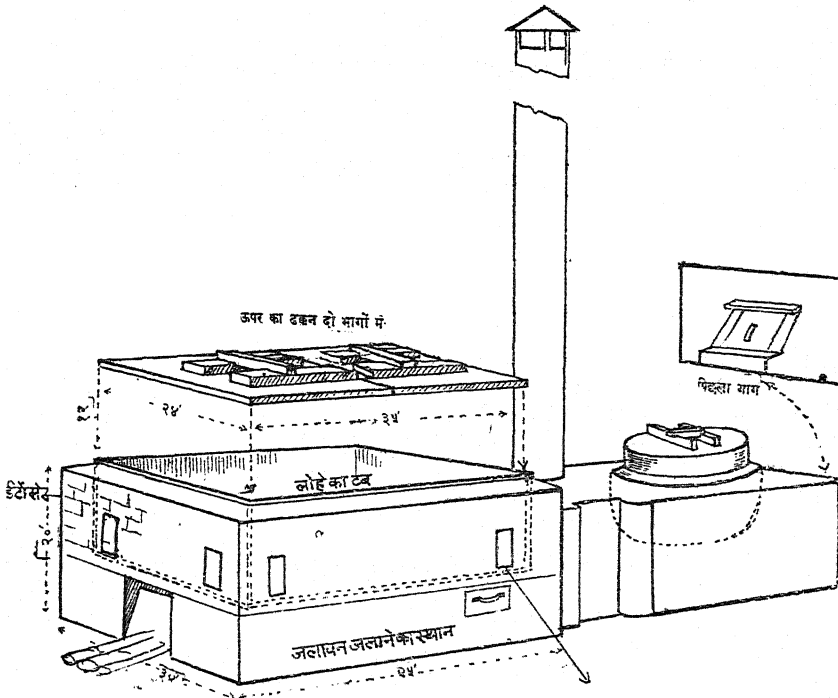
(चित्र २०)

(२) **भींगा तरीका (वेट स्टाइल)**—इस विधि में बाँस के सामान को पानी के साथ उबालते हैं। इसके भी दो तरीके हैं। एक तो केवल पानी में और दूसरा रासायनिक पदार्थ मिले पानी में उबालने का तरीका है। पहले की अपेक्षा दूसरा संतोषप्रद तरीका है। उसमें बाँस की त्वचा थोड़ी लाल हो जाती है और अधिक जल लेने के कारण सूखने में अधिक समय लगता है।

इस कार्य के लिए रासायनिक पदार्थ कास्टिक सोडा होता है, जिसे पानी में मिलाकर उबालते हैं। उसमें बाँस के सामान को रख देते हैं और ३० मिनट तक उन्हें उबालते हैं। सामान बनानेवाले बाँस में जब पीलापन आ जाय, तब उसे निकालकर पोंछ देना चाहिए और धूप में सुखा देना चाहिए। एक हफ्ते के बाद बाँस पीलापन पर आकर उजला हो जाता है। बाँस की चमक का मौसम से सम्बन्ध रहता है। अत्यधिक रासायनिक पदार्थ के साथ अथवा अधिक देर तक उबालने से बाँस की त्वचा का पीला रंग बदल जाता है, लेकिन रासायनिक पदार्थ नहीं देने और नहीं उबालने से भी रंग अच्छा नहीं आ सकता। यह विधि भी चाभ बाँस के लिए है। उबालने के लिए लोहे अथवा जस्ते के चदरे का बना बरतन व्यवहार में लाना चाहिए। बाँस के सामान की लम्बाई-चौड़ाई के अनुकूल बरतन बना लेना चाहिए। इस कार्य के लिए आयताकार बरतन बहुत ही सुविधाजनक होता है। देखिए चित्र २०।

तेल निकालने की अन्य विधियाँ

(१) बाँस से तेल निकालने की क्रिया के लिए एक विशेष प्रकार के टिन का टब (Tub) होता है। उसकी चौड़ाई २८ इंच, लम्बाई १४ फुट, ऊँचाई १७ इंच और भीतर पानी की सतह १३ इंच होती है। यह टब चारों ओर से लकड़ी के बने फ्रेम से घिरा होता है।

सर्वप्रथम बरतन का पानी भाप से अथवा कोयले या जलावन से गरम किया जाता है। जब तापमान १००° सें० हो जाता है, तब कास्टिक सोडा ०·७ प्रतिशत या ०·१ प्रतिशत ग्राम और पानी १०० ग्राम उसमें डाल देते हैं। उसके बाद सामान बनानेवाले हरे बाँस को उस टब में डाल दिया जाता है। बाँस के ऊपर दबाव डाल देते हैं, ताकि वह पानी के भीतर ही डूबा रहे। उस स्थिति में बाँस को करीब आधे घण्टे तक रहने देते हैं। उसके बाद उसे निकालकर सूखे कपड़े से रगड़कर पोंछ देते हैं, ताकि उसमें रसायन का अंश लगा नहीं रह जाय। निकालने की क्रिया लोहे की अँकुसी से करनी चाहिए; क्योंकि हाथ से निकालने से हाथ के क्षतिग्रस्त होने का भय रहता है। उसके बाद बाँस को खड़ा कर ऐसे स्थान पर, जहाँ सीधी धूप नहीं लगे, रख देना चाहिए। सीधी धूप लगने से बाँस के फट जाने का भय रहता है। इस स्थिति में बाँस को तीन सप्ताह तक रखते हैं। तेल निकालने की यह सबसे सरल विधि है।

(२) सोडियम हाइड्रॉक्साइड को भी बाँस से तेल निकालने के काम में लाते हैं। विधि तो वही है, जो ऊपर दी गई है। इसमें तापमान १००° सें० और रखने का समय २० मिनट होता है। सोडियम हाइड्रॉक्साइड ०·५ प्रतिशत या ० १ प्रतिशत दिया जाता है। और उसमें पानी १०० ग्राम रखा जाता है।

(३) **कपड़े साफ करनेवाले साबुन द्वारा**—इसकी विधि भी वही है। उबालने का समय आधा घंटा से १ घंटा और तापमान १००° सें० होना चाहिए। साबुन का परिमाण ०·१ प्रतिशत तथा पानी १०० ग्राम होना चाहिए।

(४) **सोपलेस-सोप द्वारा**—उबालने का समय ३० से ६० मिनट तक। तापमान १००° सें० और सोपलेस-सोप का परिमाण ०·१ प्रतिशत, पानी १०० ग्राम।

(५) सोप तथा सोडियम हाइड्रॉक्साइड (Sodium Hydroxide) को मिला दिया जाता है।

परिमाण—सोप ०·१ प्रतिशत और सोडियम हाइड्रॉक्साइड (Sodium Hydroxide) ०·५ प्रतिशत तथा पानी १०० ग्राम। उबालने का समय २० मिनट और तापमान १००° सें०। यह विधि बहुत ही प्रामाणिक है और इसमें पूरी सफलता मिलती है।

(६) **सोपलेस-सोप और पी० सी० पी०**—इन दोनों को मिलाकर व्यवहार किया जाता है। सोप १ प्रतिशत और पी० सी० पी० १ प्रतिशत रहता है। तापमान १००° सें०, पानी १०० ग्राम तथा उबालने का समय २० मिनट से आधे घंटे तक होता है। यह विधि फँफुदी (मोल्ड) को मारने तथा तेल निकालने, दोनों में व्यवहृत होती है। बाँस को निकालकर ऊनी अथवा सूती कपड़े से पोंछ देते हैं।

चीरने की विधि

बाँस-सम्बन्धी जो भी कार्य हैं, उनमें बाँस को फाड़ने की क्रिया सबसे अधिक कठिन है। इस कार्य के लिए तेज औजारों का व्यवहार करना पड़ता है और फाड़े हुए बाँस के किनारे तेज हो जाते हैं। फलस्वरूप, बहुधा हथियार से अथवा बाँस के उन तेज सामानों से कारीगर को बहुत नुकसान पहुँचता है। अतः, अनुभव के अनुसार निरापद विधियाँ नीचे दी जा रही हैं—

(१) **फाड़ने के विभिन्न दाब**—यह औजार न केवल बाँस को फाड़ने, बल्कि बाँस के सभी प्रकार की वस्तुओं के बनाने के भी काम में आता है। इन कार्यों के लिए
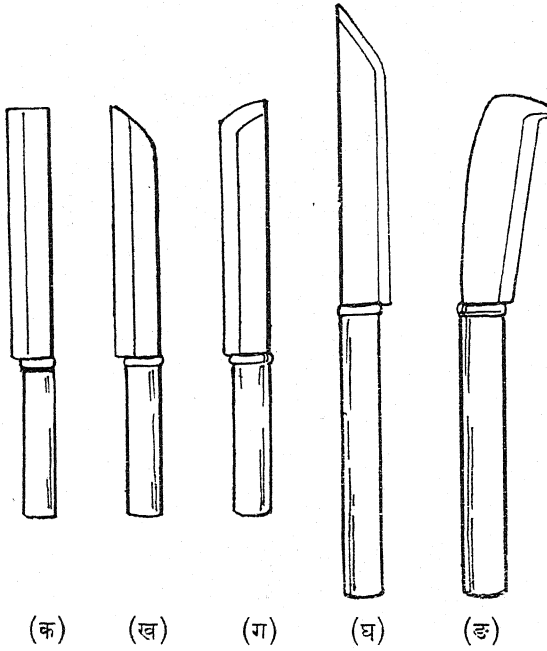
(क) (ख) (ग) (घ) (ङ)

(चित्र २१)

कई प्रकार के दाब काम में आते हैं। बैरेल बनानेवाले कारीगर एक ही धारवाला दाब व्यवहार करते हैं, लेकिन दो धारवाले दाब का व्यवहार अधिक उत्तम है। चित्र २१ में विभिन्न प्रकार के दाब दिखाये गये हैं।

(क) सबसे अधिक व्यवहार में आता है।

धार की लम्बाई ७·२ इंच
चौड़ाई ··· १·३२ इंच
मुटाई ··· १/८ इंच
वजन ··· ८·१० औंस

(ख) करीब १ फुट लम्बा बना दाब अधिक सुविधाजनक होगा। इसकी मूठ की लम्बाई ४·८ इंच होनी चाहिए। बैरेल बनानेवालों के लिए दाब और भी बड़े आकार का होता है।

लम्बाई ··· ९ इंच
चौड़ाई ··· १ १/४ ,, ३ सूत
मुटाई ··· २·५ ,,
वजन ··· १ पौं० से १·१ पौं०।

(ग) यह दाब 'ख' के समान ही होता है। इसमें विशेष अन्तर नहीं है। कुछ कारीगर चाँद के आकारवाले तेज हथियार का व्यवहार करते हैं, लेकिन ये उतने अच्छे नहीं होते।

(घ) मुख्यतः चाभ बाँस से भात छानने के लिए टोकरी या छितनी, चावल रखने की टोकरी और हल्के-छोटे पिंजड़े बनाये जाते हैं। बाँस को फाड़ने के लिए 'क' के समान दोधारी दाब बहुत ही उपयुक्त होते हैं, किन्तु चाभ के सामान अन्य जाति के मुलायम बाँस के लिए एक ही धारवाला औजार ठीक होता है।

'घ' चिह्नवाला दाब फाड़े हुए बाँस को छुरी के समान काट सकता है, लेकिन उसका तेज किनारा काटने के काम में नहीं आता, बल्कि वस्तुओं के किनारे बुनने के काम में मदद पहुँचाता है। उसकी लम्बी मूठ विना नाप के ही बनी होती है।

(चित्र २२)

(चित्र २३)
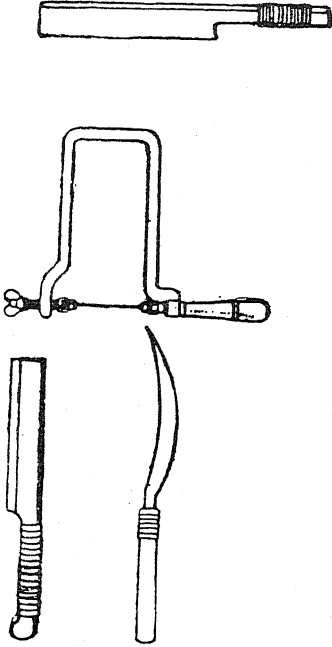
'ङ' वाला दाब सामान्य दाब के ढंग का, छोटा आकारवाला, होता है। छीलने के बाद फाड़ने के काम में अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाले दाब की जरूरत नहीं होती। कुछ मोटी धारवाले दाब से भी काम लिया जा सकता है। कारण यह है कि फाड़ना और काटना—दोनों समान काम नहीं हैं। बाँस से ऊपरी रेशे को अलग करना चाहिए, काटना नहीं चाहिए। कारीगर के लिए ऐसा करना अधिक निरापद भी है। चित्र २२ में भी फाड़नेवाले औजार प्रदर्शित हैं।

अनुभवी कारीगर ऐसे दाब का व्यवहार करता है, जिसकी एक चोट से ही बाँस कट जाय, बार-बार चोट नहीं करनी पड़े—यानी भारी और तेज धारवाला दाब व्यवहार में लावे। जंग लगा हुआ हथियार नहीं व्यवहार करना चाहिए; क्योंकि उससे बाँस की सतह चिकनी नहीं हो सकेगी। मुलायम लोहे के बने दाब का भी व्यवहार नहीं करना चाहिए, बल्कि अच्छे इस्पात का बना दाब व्यवहार में लाना चाहिए।

२. **फाड़ना**—जापान में बाँस को सिरे की ओर से जड़ तक फाड़ते हैं और औजार को व्यास पर रखकर फाड़ते हैं। किन्तु, भारत में बाँस जड़ की ओर से ही फाड़ते हैं।

बाँस फाड़ने की आधारभूत विधि

चित्र २३ में दिखाये ढंग से हमेशा हथियार को पकड़ना चाहिए। फाड़े हुए बाँस की मुटाई के अनुसार ही उस पर अँगूठा और तर्जनी को रखा जाता है। लम्बे सामान के फाड़ने के लिए प्रथम बार जो प्रहार किया जाता है, छीलने के ही
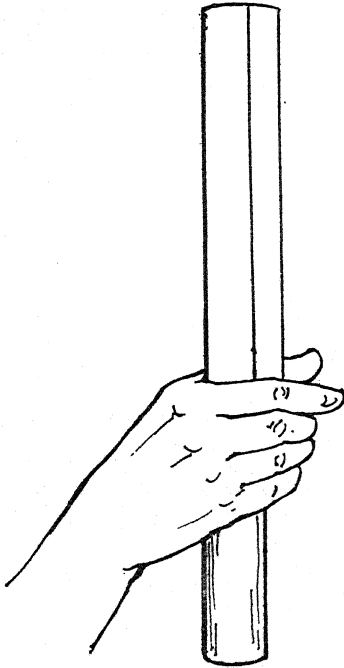
समान, उसमें दाब को अपनी तलहत्थी से दबाये रहना चाहिए, साथ ही अँगूठे और तर्जनी—दोनों अँगुलियों से बाँस के किनारे को पकड़े रहना चाहिए। यह विधि चित्र २४ में दिखाई गई है।

जब फाड़ा हुआ बाँस हो, तब बाँये हाथ से दबाकर चोट देनी चाहिए; किन्तु जब बाँस लम्बा हो तब उसे बाँये हाथ से पकड़-भर लेना चाहिए; क्योंकि तब हाथ से दबाकर चलाना कठिन हो जाता है। इस विधि से कारीगर का हाथ कभी नहीं कटता; क्योंकि दाब को तो उसकी अँगुली पकड़े रहती है, इसलिए वह बाँस से फिसल नहीं सकता। ऐसी अवस्था में फटा हुआ बाँस तलहत्थी से सटा रहता है तथा दाब भी झुक जाता है, अतः उसका बायाँ हाथ नहीं कट सकता है।
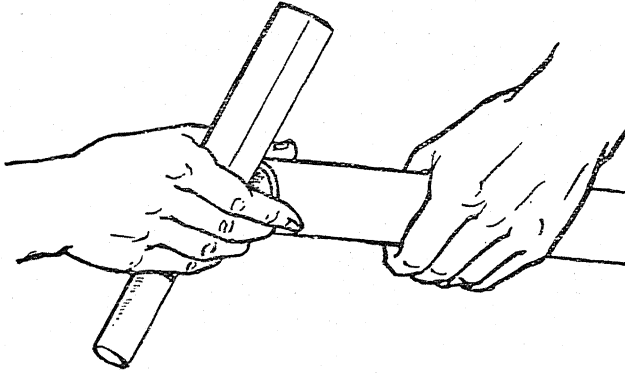
(चित्र २४)

(चित्र २५)

बाँस को फाड़ने और छीलने के लिए यही विधि व्यवहार में लानी चाहिए।
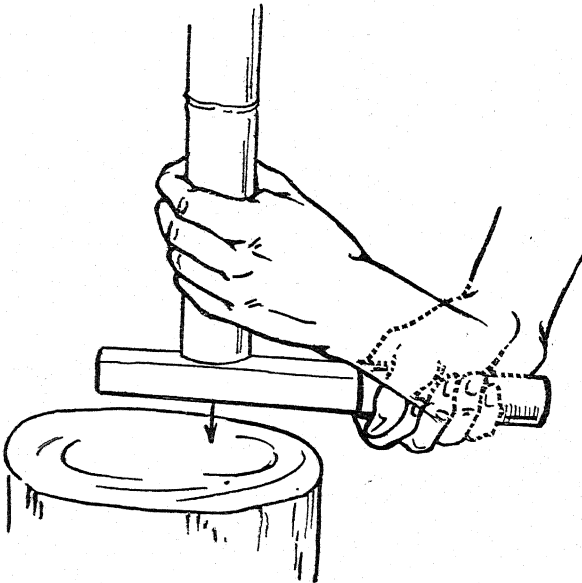
(क) पाँच फुट से अधिक लम्बे बाँस को फाड़ने की विधि—बाँस को बाँये हाथ से पकड़ लेते हैं। उसके बाद दाब की धार बाँस के अन्तिम छोर से सटा दी जाती है और बाँस को दाब के साथ ही लकड़ी के कुंदे पर पटक दिया जाता है। इस

प्रकार बाँस का प्रथम विभाजन किया जाता है। चित्र २५ में इस विधि को देखिए।

बड़े बाँस को छोड़कर अन्य बाँसों को फाड़ते समय दाब को बाँस के व्यास पर रखा जाता है और बाँस को दाब की धार की ओर घुसा-घुसाकर फाड़ा जाता है। फाड़ने का काम सीखनेवालों को चाहिए कि वे अपने घुटने पर दाब को रख लें और बाँस को खिसकाते चलें। फाड़ने की प्रविधि सीखने और कटने-फटने से बचने के लिए यही अच्छा तरीका है।

बाँस चार टुकड़ों में फाड़ लेने के बाद गिरह के नीचे के प्रमुख भाग को काटना चाहिए। फाड़े हुए बाँस को और अधिक भागों में बाँटने के लिए फाड़ते समय उसका ऊपरी सतहवाला भाग ऊपर रखना चाहिए। उसका भीतरवाला भाग ऊपरवाले भाग से अधिक मुलायम होता है। इस कारण ऊपरी सतहवाले भाग को ऊपर रखकर फाड़ने से बाँस का बराबर भागों में विभाजन हो सकेगा अथवा उनकी चौड़ाई के भेद स्पष्टतः दिखाई पड़ सकेंगे।

बाँस को दो भागों में बाँटना आसान है। कारीगर का इस बात पर ध्यान रहता है कि बँटे हुए भागों की चौड़ाई में अन्तर नहीं हो, बल्कि वे सब एक ही चौड़ाई के हों। अगर चौड़ाई एक-सी नहीं हुई और आगे फाड़ना जारी है, तो पहले भाग की कोई चौड़ाई बराबर नहीं रह जायगी और उस जगह फाड़ना रुक जायगा। इस कारण जब बँटे हुए भाग बराबर न हों, तब बाँस को अधिक चौड़े भाग की ओर झुका दीजिए और छुरी तथा मूठ को पकड़े हुए इस तरह से घुमाइए कि जिससे मोटे भाग का हिस्सा धीरें-धीरे छोटे भाग के साथ मिलकर बराबर हो जाय।

अगर बाँस को दो असमान भागों में विभक्त किया जाय, तो जो भाग पतला होता है, वह आगे चलकर और अधिक पतला हो जाता है। यहाँ तक कि उस भाग की चौड़ाई सर्वथा खत्म हो जाती है और बाँस बराबर भागों में नहीं बँटता। इसलिए बाँस को फाड़ने के समय हमेशा यह खयाल रखना चाहिए कि बाँस को बराबर भाग में फाड़ें।
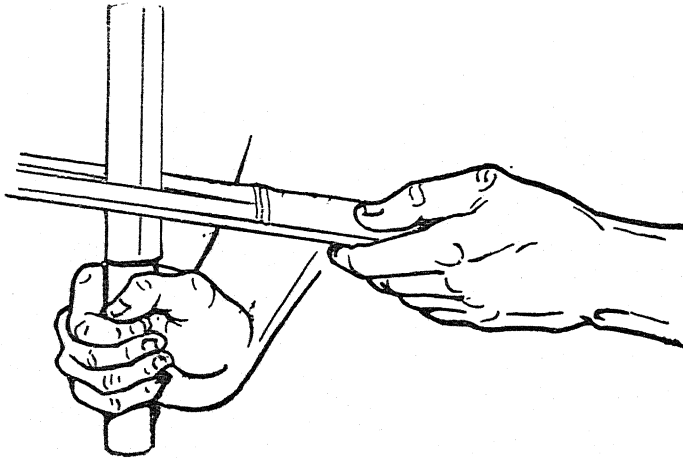
(चित्र २६)

(ख) **गाँठवाले भागों को फाड़ने की विधि**—कारीगर को गाँठवाले भागों को भी फाड़ना पड़ता है। जब सामान बड़ा होता है, गाँठ का फाड़ना बहुत कठिन हो जाता है। जब गाँठवाले भाग को फाड़ना हो, तब वहाँ दाब को रोक दीजिए, थोड़ा-सा पीछे हटाकर दाब पर थोड़ी हल्की चोट देकर बाँस को फाड़ डालिए। इस प्रकार, ठीक से बाँस फट जायगा। चित्र २६ की ओर ध्यान दीजिए। लेकिन बहुत जोर से चोट मत दीजिए, नहीं तो बाँया हाथ कट जा सकता है। प्रहार करने का अन्दाज अनुभव के आधार पर ही लगाया जा सकता है।

ऊपर वर्णित विधि से फाड़े गये बाँस के भागों की चौड़ाई एक है या नहीं, इसका पता गिरहों पर लगाया जाता है और इसलिए कारीगरों को गिरह फाड़ने की क्रिया सीखना जरूरी होता है। जो कारीगर गिरह फाड़ने की प्रक्रिया जानता है, उसके लिए बाँस फाड़ना आसान है।

बाँस का यथार्थ विभाजन

छोटे बाँस को फाड़ना—खास आकार तक फाड़ने के लिए दाब की धार से बाँस के किनारे का स्पर्श कीजिए, दाब की पीठ पर अपने हाथ से मारिए और इस प्रकार बाँस को दो भागों में विभक्त कीजिए। फिर, इस विधि को उस समय तक दुहराते रहिए, जब-तक फटा बाँस आपके उपयोगवाले आकार का न हो जाय।

विना गिरहवाले बाँस को फाड़ने के लिए खास चौड़ाई के बाँस के छोर पर हल्का प्रहार करते हैं और तब हाथ से फाड़ देते हैं। इससे फाड़ने का काम जल्द हो जाता है।
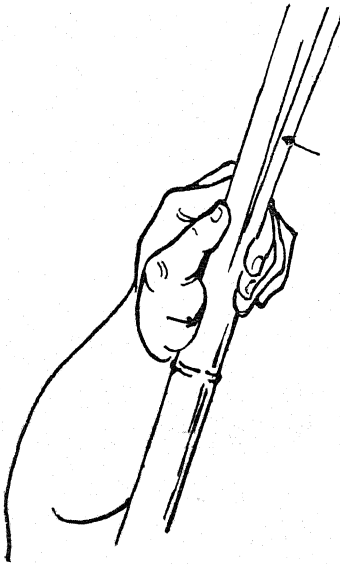
(चित्र २७)

बड़े बाँस को फाड़ना—बाँस को दो भागों में प्रथम बार विभक्त करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गाँठ पर का वह भाग, जहाँ से डाली निकलती है, विभाजन में नहीं पड़े। देखिए चित्र २७। दो भागों में विभक्त करके दूसरी बार के विभक्तीकरण में डाली-निकले भाग पर ही फाड़ना चाहिए। इस प्रकार, चार भागों में विभक्त करने के बाद फिर सभी भागों को तबतक विभक्त करना है, जबतक कि वे अभीष्ट आकार के नहीं हो जाते हैं।

स्पाइडर हैंड विधि—लम्बे बाँस को फाड़ते समय 'स्पाइडर हैंड' नामक हथियार व्यवहार करना चाहिए।
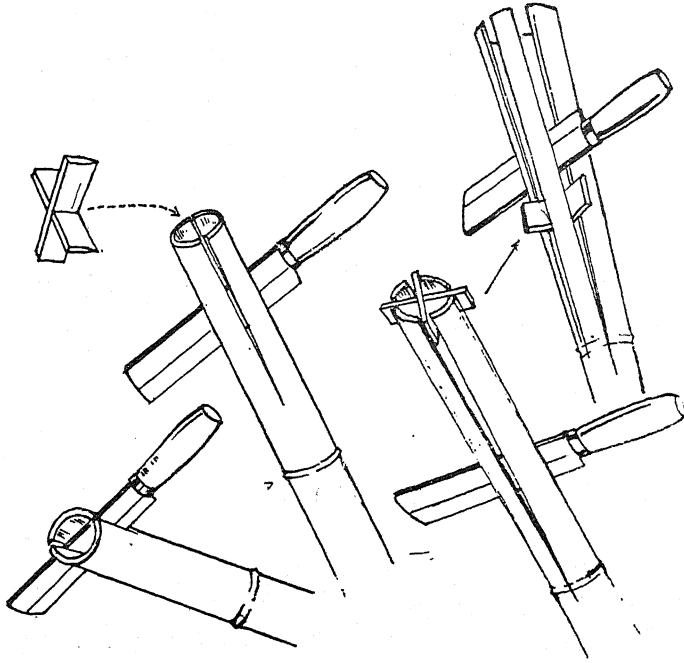
(चित्र २८)

'स्पाइडर हैंड' लोहा तथा कहीं-कहीं कड़ी लकड़ी का बना होता है, जिसमें + आकार से काँटियाँ लगी रहती हैं। इस हथियार से बाँस आसानी से चार और बहुत भागों में भी विभक्त हो जाता है। चित्र २८ में बाईं ओर प्रदर्शित तरीके से बाँस फाड़ा जाता है। बाँस के सिरे पर प्रथम थोड़ा फाड़ दिया जाता है और उस कटान में 'स्पाइडर हैंड' को रख देते हैं। उसके बाद दाव के पिछले भाग से चित्र २८ की दाहिनी ओर से नीचे की ओर उस पर प्रहार करते हैं। चित्र २८ में इसके कई प्रकार दिखाये गये हैं। इस समय बाँस को बायें हाथ में रखा जाता है, लेकिन जब सामान बहुत लम्बा हो, तब बड़े और बँटे हुए बाँस के मजबूत भाग को नीचे की ओर झुकाकर रखते हैं। इसका कारण यह है कि फटे हुए बाँस का निचला भाग अपने ही वजन से टेढ़ा हो जाता है। बहुभागों
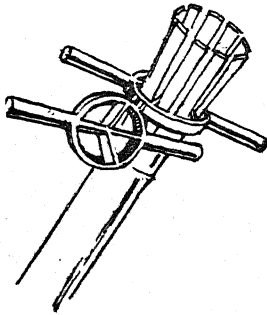
(चित्र २९)

में विभक्त करने का ढंग चित्र २६ में देखिए। चित्र २६ (क) में इसी की ठीक-ठीक माप—लम्बाई-चौड़ाई इत्यादि दिये गये हैं। साथ ही, हाथ से पकड़नेवाला हिस्सा भी दिखाया गया है।
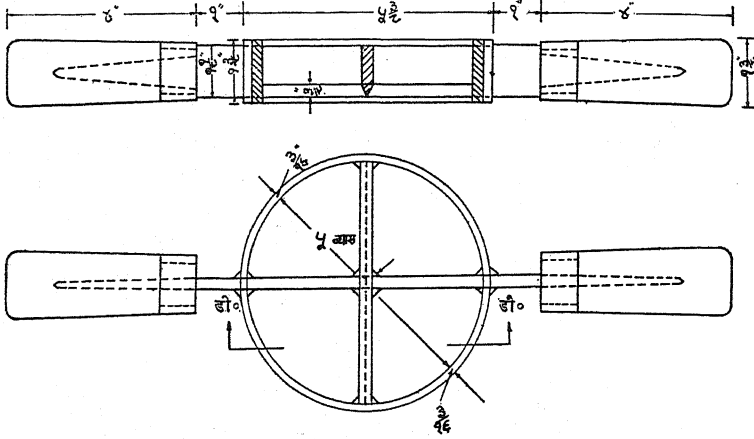
(चित्र २६(क))

लम्बे बाँस को विभक्त करने की दूसरी विधि—कभी-कभी बाँस नीचे लिखे ढंग से भी फाड़े जाते हैं। यह ढंग चित्र ३० में प्रदर्शित है, जिसका विवरण इस प्रकार है—

लोहे की छड़ लकड़ी की मुँगरी से ठोककर जमीन में गाड़ दी जाती है और बाँस के फटे हुए मुँह को छड़ में लगा देते हैं तथा बाँस को खींचते हैं। छड़ में बाँस के जड़वाले भाग को घुसाकर खींचना चाहिए। इससे बाँस आसानी से फट जाता है। इस विधि में इस बात की सतर्कता बरतनी चाहिए, जिससे कि बाँस अपने ही वजन से न झुके। अगर बराबर नहीं फट रहा हो, तो बाँस के मोटे भागवाले अर्द्धांश को थोड़ा झुकाकर खींचना चाहिए।

विभक्त भाग को और भी विभक्त करने के लिए यही तरीका काम में आता है। इस रीति से एक ही बार चार भागों में उसे फाड़ा जा सकता है। मुँगरी से ठोकी गई छड़ के सामने एक दूसरी छड़ का भी व्यवहार करना चाहिए।
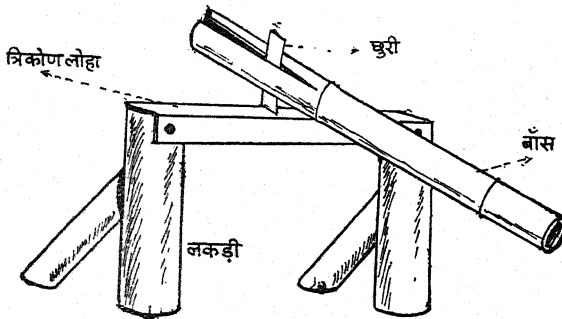
(चित्र ३०)

चाभ के समान दूसरे बाँस के लिए पाँच इंच लम्बी काँटी या

इसी आकार की लोहे का क्रास लगी छड़ का व्यवहार करना चाहिए। देखिए चित्र ३१। अगर गिरह फाड़ने में कठिनाई होती हो, तो गिरह पर दाब की पीठ की ओर से चोट मारनी चाहिए। देखिए चित्र ३२ की बाईं ओर का ढंग। यह चोट गिरह के निकट ही बाँस को धक्का देते हुए लगानी चाहिए, अन्यथा गिरह कई टुकड़ों में छिन्न-भिन्न हो जायगा।

(चित्र ३१)
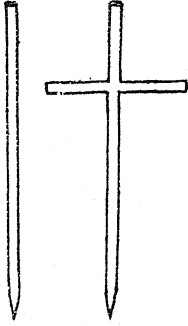
छोटे आकारों में विभक्त करना—बाँस को फाड़ते समय कारीगर वस्तुओं की चौड़ाई को ध्यान में रखकर उसमें ठीक से लग जानेवाले आकार में बाँस को विभक्त करता है और तब उसे व्यवहार में लाता है। इसलिए बाँस को बराबर चौड़ाई के भागों में सदा नहीं विभक्त करना पड़ता है। साधारण कार्यों में बाँस को चार भागों में बाँटकर तब उन भागों को अनुकूल चौड़ाई में बाँटते हैं। उदाहरण के लिए १/१६ इंच चौड़ाई के सामान बनाने की विधि इस प्रकार है—

सर्व प्रथम बाँस को १/४ इंच की चौड़ाई में बाँट लेना चाहिए, फिर उसको चार भागों में बाँटकर १/१६ इंच चौड़ाई का सामान बना लेना चाहिए। अथवा १/२ इंच की चौड़ाई को ८ भागों में बाँटकर १/१६ इंचवाला सामान बनाना चाहिए।

(चित्र ३२ (क)
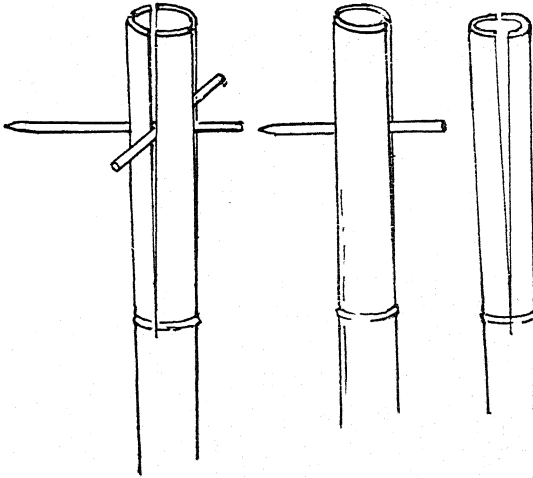
अगर बाँस बड़ा नहीं है तथा विभक्त भाग भी आयताकार नहीं है, तो तैयार सामान देखने में अच्छा नहीं लगेगा। चित्र ३२ (क) में १/२ इंच का ८ वाँ भाग और (ख) में १/४ इंच का चौथा भाग दिखाया गया है। (ग) वाला भाग छोटा है और १/४ इंच का चौथाई भाग काटने के बाद फिर दो भाग करके दिखाया गया है।

उपर्युक्त आयताकारवाले विभक्त भागों को प्राप्त करने के लिए ८ इंच व्यासवाले बाँस अथवा १/४ इंच चौड़ाई के लिए ५ इंच व्यासवाले बाँस की जरूरत पड़ती है।

अगर बाँस फाड़ने का काम ठीक से नहीं किया गया हो, तो उसके रेशे टूट जाते हैं और वे पूरी लम्बाई तक टूटते ही जाते हैं, जिससे आखिर में सामान कम तादाद में ही तैयार होते हैं तथा बहुत-सा भाग बेकार हो जाता है।
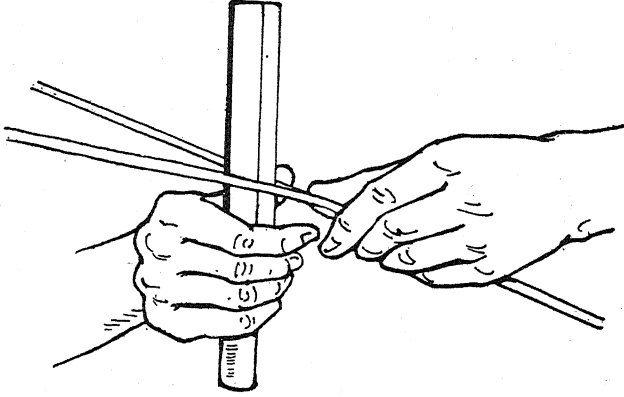
(चित्र ३३)
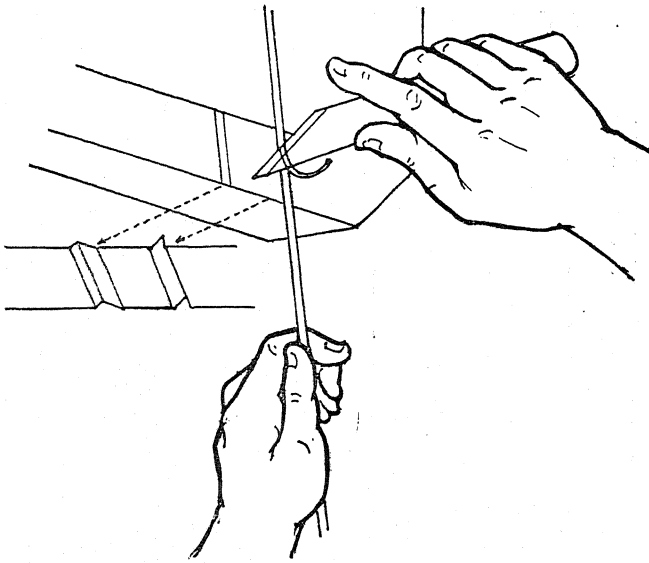
(चित्र ३४)

बाँस के ऊपरी छोर के विभक्त सामान से जापान में लालटेन बनाते हैं। बाँस के कई बार विभक्त करने या कमची बनाने में छुरी को धीरे-धीरे केवल १/२ इंच से १/४ इंच तक, घुसाना चाहिए। जैसा चित्र ३३ में दिखाया गया है छुरी चलाते समय

दोनों हाथ एक-दूसरे के इतने निकट रहते हैं कि उन्हें चलते हुए देखना किसी के लिए कठिन हो जाता है।
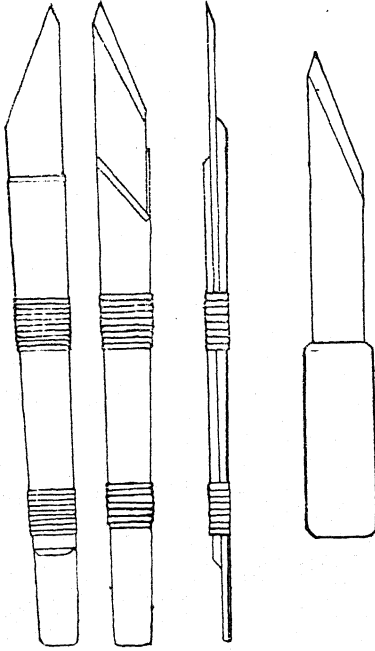
(चित्र ३५)
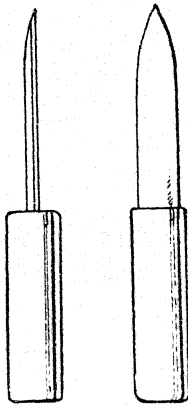
साधारण टोकरी तथा पिंजड़े, छिले और फाड़े गये सामान से बनाये जाते हैं, जिसे अर्द्धत्वचा (Semi skin) कहते हैं। अर्द्धत्वचावाले बाँस उसको कहते हैं, जिसकी ऊपरी त्वचा तथा नीचे का थोड़ा-सा भाग हटाया गया होता है। मितव्ययिता की दृष्टि से इच्छित वस्तु में लगनेवाले सामान का दो-तिहाई भाग बाँस की भीतरी पेटी का रहता है और एक चौथाई भाग बाँस की ऊपरी त्वचा का रहता है। केवल भीतरी पेटी का बना समान कमजोर होने के साथ-साथ देखने में भी अच्छा नहीं होता है। इस कारण उच्च कोटि के सामानों तथा पिंजड़ों में केवल बाँस की ऊपरी त्वचावाले भाग ही व्यवहृत होते हैं।

विभक्त भागों को अन्तिम रूप देना—'चाभ' बाँस के अन्तिम रूप में फाड़े गये सामान को ठीक आकार का तथा गोल बनाने के लिए चित्र ३४ में दिखाये गये लकड़ी के चौखूट घन को व्यवहार में लाया जाता है। चौखूटे लकड़ी के घन पर छुरी को रखकर सामान को खींचा जाता है। उसके बाद फिर दूसरी ओर से भी वैसा ही किया जाता है। इस प्रकार त्रिकोणाकार बुनाई के सामान आसानी से तैयार हो जाते हैं।

ऐसे सामानों को अन्तिम रूप देने के लिए जो छुरी काम में लाई जाती है, वह चित्र ३५ और ३६ में दिखाई गई है। साथ ही चित्र ३६ (क) में छुरी की सही माप—चौड़ाई, मोटाई, लम्बाई आदि—विशेष रूप देखी जा सकती है। ये छुरियाँ, किनारे पर के काम करने के अतिरिक्त बाँस-सम्बन्धी अन्य सारे कार्यों में भी व्यवहृत होती हैं।

(चित्र ३६)

तैयार सामानों को रखना—चीरे गये
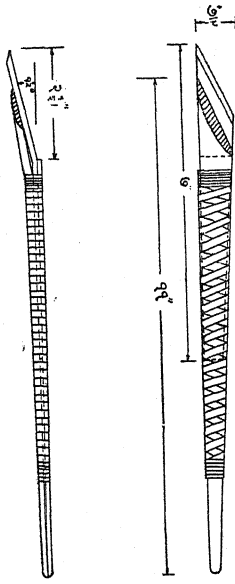
(चित्र ३६ (क))

सामान को तुरत भी व्यवहार कर सकते हैं, किन्तु ऐसे सामानों को भाण्डार में इस तरह रखकर व्यवहार करना उत्तम होता है, जो फाड़े जाने के बाद सुखा लिये गये हों। व्यवहार करने के पूर्व ऐसे सामानों को दस मिनटों के लिए पानी में डाल देते हैं।

ऐसे सामानों से बनाई गई वस्तु बहुत मजबूत होती है। इसलिए एक बार सामानों को जमा कर लेने और फिर वर्ष-भर बीच-बीच में उन्हें व्यवहार करने में सुविधा होती है [१]।

बाँस की पेटी छीलना—फाड़े हुए बाँस के त्वचावाले भाग को ऊपर की ओर रखकर चीरते हैं। यह काम बाँस के सिरे की ओर से किया जाता है। कारीगरों में कहावत प्रचलित है, **'बाँस को सिरे से और लकड़ी को जड़ से।'** इसके लिए पहली बार
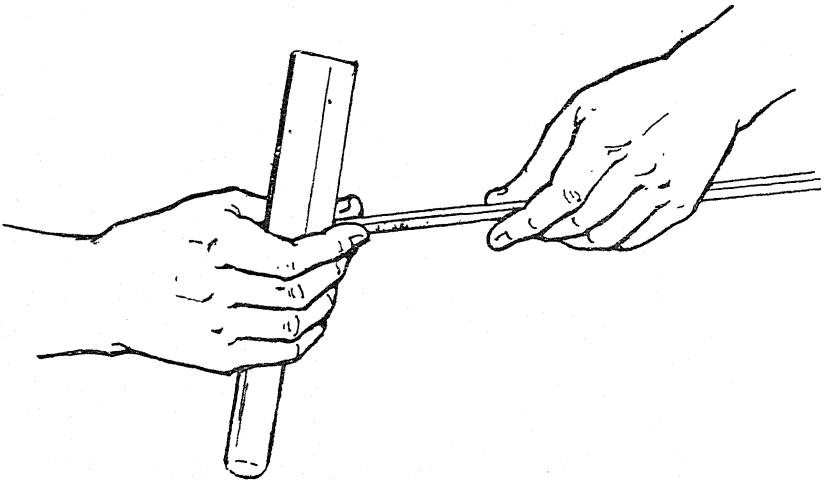
(चित्र ३७)

कमची चीरने की विधि चित्र ३७ में दिखाई गई है। वह वही विधि है, जो फाड़ने की विधि होती है। दो भागों गें बँटे हिस्से को पुनः बाँटना चाहिए, जबतक कि वह अभीष्ट आकार का न हो जाय।

---

१. देखिए—बाँस काटने का समय और कीड़ा-निवारणवाला अनुच्छेद।

पेटी छीलने में सावधानी

(क) बाँस का त्वचावाला भाग उसकी पेटी के भाग से अधिक कड़ा होता है, इसलिए त्वचावाला भाग जरा अधिक पतला होना चाहिए। उनका अनुपात (६ समान भागों में) त्वचावाले भाग में ६ और पेटी-वाले भाग में १० होना चाहिए।
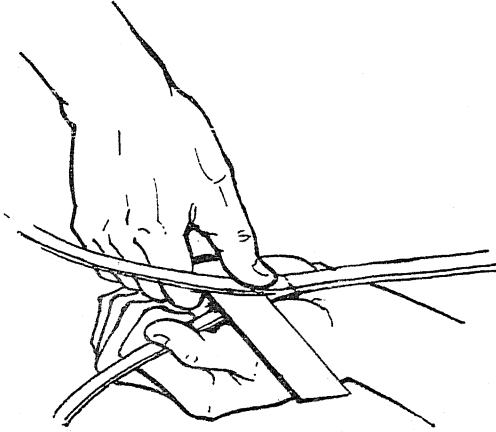
(चित्र ३८)

(ख) गाँठ के ऊपर के भाग कुछ मोटे हो जाते हैं और नीचेवाले थोड़ा पतले। इस कारण इस बात की सावधानी बरती जानी चाहिए कि पीठ की ओर से चीरे हुए भाग को पुनः-पुनः चीर-कर उसे अभीष्ट मुटाई का बना लेना चाहिए।
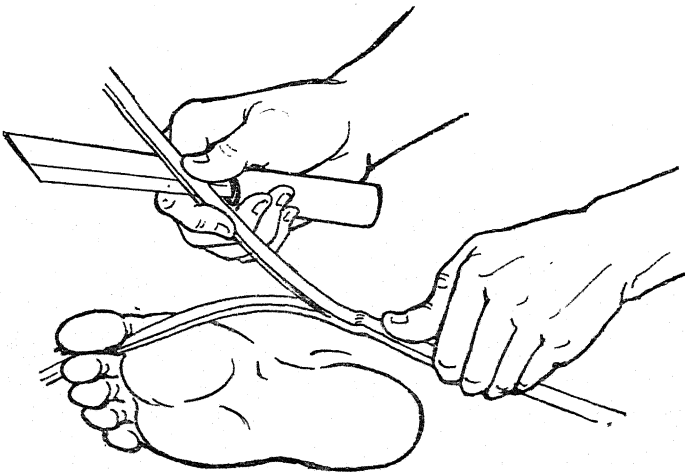
(चित्र ३९)

पेटी छीलने का प्रविधि

पेटी छीलने के कई तरीके हैं। वे नीचे दिये जाते हैं—

प्रथम विधि—इस विधि में

वही छुरी व्यवहार में लाई जाती है, जो बाँस के फाड़ने में व्यवहृत होती है। अनुभवी कारीगर उस छुरी से छिले बाँस की सतह और अन्य सामान सुन्दर बनाते हैं।
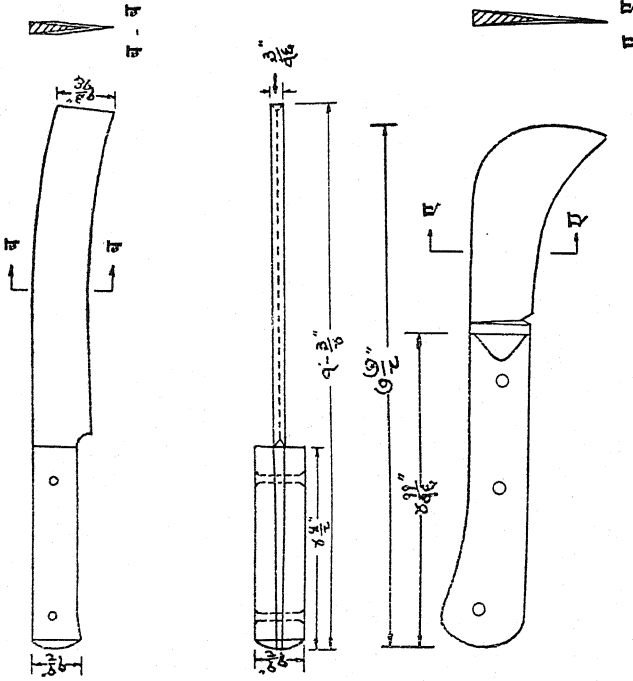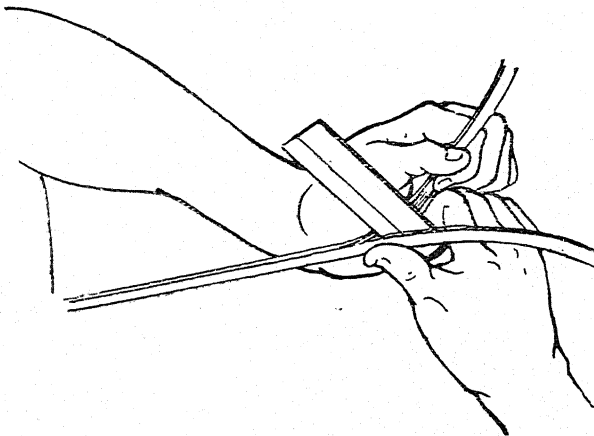
गिरह के पास फाड़ने में निम्नलिखित तरीका काम में लाना चाहिये। गाँठ को बाँये हाथ के अँगूठे और तर्जनी अँगुली से पकड़कर, इन अँगुलियों के बीच में रहनेवाले भाग में ही छुरी लगानी चाहिए। देखिए चित्र ३८। छुरी अँगुलियों और बाँस के बीच में छिप जाती है। इसके अलावा बाँये हाथ का अँगूठा, जो बाँस को पकड़े हुए है, दाहिने हाथ के अँगूठे को रोक देता है, जिससे छुरी अँगुलियों को घायल नहीं कर सकती।

(चित्र ४०)

(चित्र ४१)

दूसरी विधि—यह विधि गाँठोंवाले बाँस के लम्बे सामानों के लिए है। दाहिने पैर की अँगुलियों से

बाँस के एक भाग को दबा देते हैं और दूसरे भाग को छुरीवाले दाहिने हाथ में लेते हैं। इस प्रकार खींचते हुए बाँस को छुरी फाड़ती जाती है। इसे चित्र ३९ में देखा जा सकता है।

(चित्र ४२)
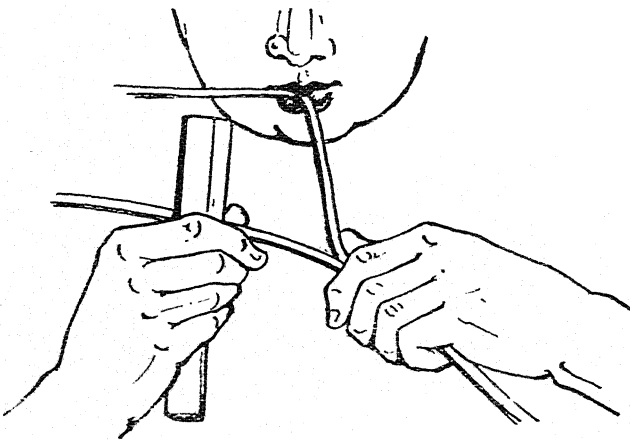
(चित्र ४३)

इसके अतिरिक्त बाँस को फाड़ने तथा कमची बनाने के लिए कुछ और छुरियाँ चित्र ४० में दिखाई गई हैं। छुरियों की चौड़ाई, लम्बाई आदि माप ठीक-ठीक दिखाई गई है। दाहिने ओर की चौड़े फलकवाली छुरी विशेष तौर से भारतीय है।

तीसरी विधि— कमची फाड़ने के लिए यह सबसे निरापद विधि है; क्योंकि इससे हाथ नहीं कटता। फाड़े हुए बाँस की कमची बनाने का यह तरीका सुविधाजनक है। कारीगर अपने बाँये हाथ की तलहथी पर मोटी कमची को रख लेता है और अपने बाँये हाथ की अँगुलियों से पीछे के भाग को

पकड़ लेता है। दूसरे भाग को छुरीवाले अपने दाहिने हाथ के अँगूठे से पकड़ लेता है और तलहथीवाले भाग पर दबाव डालकर छुरी को घुसेड़ता चलता है। इस ढंग से वस्तु के किनारे पर के मढ़नेवाले सामान भली भाँति तैयार हो जाते हैं।

इस विधि से गाँठ पर फाड़ने में बार-बार छुरी को खिसकाना और धक्का देना पड़ता है। इसे चित्र ४१ में देखिए।

चौथी विधि—किनारे पर के मढ़नेवाले बहुत पतले सामान तैयार करने की विधि $\frac{1}{2}$ इंच को ४ से ६ भागों में बाँटनेवाली है। एक छिले भाग को दाँत से पकड़कर दूसरे भाग को छुरीवाले दाहिने हाथ से पकड़ते हैं और दाँत तथा हाथ से खींचकर बराबर मुटाई की कमची बनाते हैं। गाँठ की जगह आने पर केवल छुरी से फाड़-कर फिर दाँत और हाथ के व्यवहार से ही फाड़ते जाते हैं। विधि चित्र ४२ में दिखाई गई है।

(चित्र ४४)

(चित्र ४५)
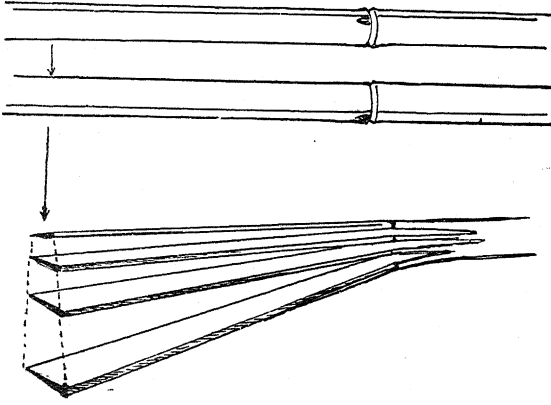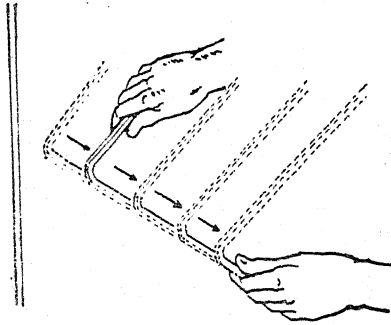
बाँया हाथ कमची बननेवाले भाग को पकड़े रहता है और चीरे हुए भागों को एक समान बनने में संतुलन रखते हुए पीछे की ओर उसे खिसकाया जाता है।

अगर दाँत से पकड़े हुए भाग की मुटाई कम हो रही हो, तो उसे ऊपर करके मोड़ना उत्तम होगा और अगर दूसरा भाग कम मोटा हो रहा हो, तो उसे नीचे कर देना चाहिए। यह विधि चित्र ४३ में प्रदर्शित है। हमलोग पहले ही जान चुके हैं कि मोड़ा हुआ भाग अक्सर पतला हो जाता है।

एक वर्ष पुराने और फाड़कर रखे गये चाभ बाँस के सामान को, जो किनारे मढ़ने के काम में लाया जाता है, प्रायः दो दिनों तक पानी में छोड़ देना चाहिए। फिर, उसे तीन भागों में चीरना चाहिए। चित्र ४४ देखें। इस कार्य के लिए चाभ बहुत ही उत्तम बाँस होता है, लेकिन उसकी पेटी का भाग बहुत ही कमजोर होता है। यह बहुत ही मुलायम बाँस होता है, इसलिए चित्र ४३ में प्रदर्शित मुंहवाले तरीके से उसे फाड़ना चाहिए, चित्र ४२ में प्रदर्शित ढंग से नहीं। क्योंकि, वैसा करने से सामान टूट जाता है।
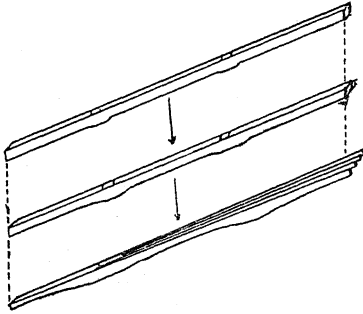
(चित्र ४६)
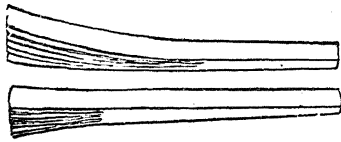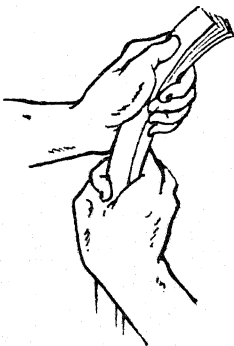
पाँचवीं विधि—यह विना गाँठवाले बाँस को तेजी से चीरने का तरीका है। सर्वप्रथम एक छोर पर छुरी से प्रथम कटान कर दोनों हाथ से दोनों भागों को चित्र ४५ में प्रदर्शित तरीके से पकड़ लेते हैं। मुड़े हुए भाग के निकट से सामान तेजी से फटता जाता है। यदि सम भाग में कमचियाँ बनाना है, तो यह सुलभ और उत्तम तरीका है। इस काम के लिए जो छुरी होती है, उसकी धार की पीठ चौड़ी होती है।

(चित्र ४७)

छठी विधि—बाँस को उसके भीतरी किनारे से ऊपरी सतह तक फाड़ने और इस प्रकार सम्पूर्ण गोलाई को कई भाग में विभक्त करके फाड़ने को रेडियल या त्रिज्याकार विभक्तीकरण कहते हैं। चित्र ४६ देखिए। इस प्रकार से फाड़ी गई कमचियाँ जालीदार वस्तुओं के बनाने में व्यवहृत होती हैं। वस्तु बनाने का ऐसा सामान छीले गये बाँस को चीरकर बनाया जाता है। इसलिए, यह अन्य प्रकार से चीरे गये सामानों से भिन्न होता है। बाँस के पहले की मुटाई की ही चौड़ाई कमचियों की चौड़ाई हो जाती है।

(चित्र ४८)

चित्र ४७ में प्रदर्शित उदाहरण त्रिज्याकार विभक्त सामान का है। ऐसे पिंजड़े (जिनका व्यास पेंदे से सिरे तक बदलता रहता है, लेकिन बुनाई की जाली की संख्या एक सामान ही रहती है) इस

विधि से चीरे हुए सामान से बनाये जाते हैं। इसी का एक चित्र ४८ संख्यावाला भी है।

छिले हुए बाँस को तैयार करना— छिले हुए बाँस के बने सामान (कमचियाँ आदि) एक ही मुटाई के नहीं होते हैं। जिनकी ऊपरी सतह छील दी जाती है (चित्र ४६), उनके द्वारा बने सामान कमजोर और असुन्दर होते हैं। अच्छी वस्तुओं के बनानेवाले सामानों की मुटाई और सफाई एक ही समान होनी चाहिए, जिसकी विधि इस प्रकार है—

(चित्र ४६)
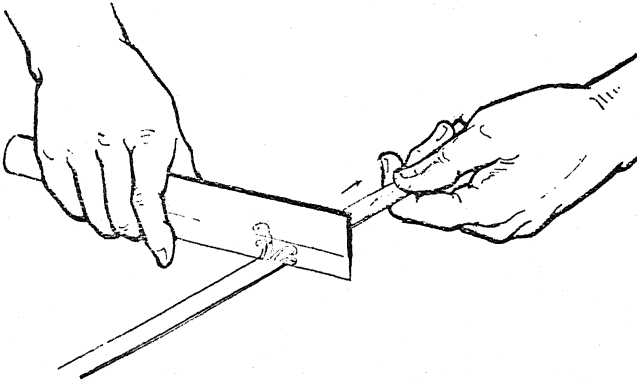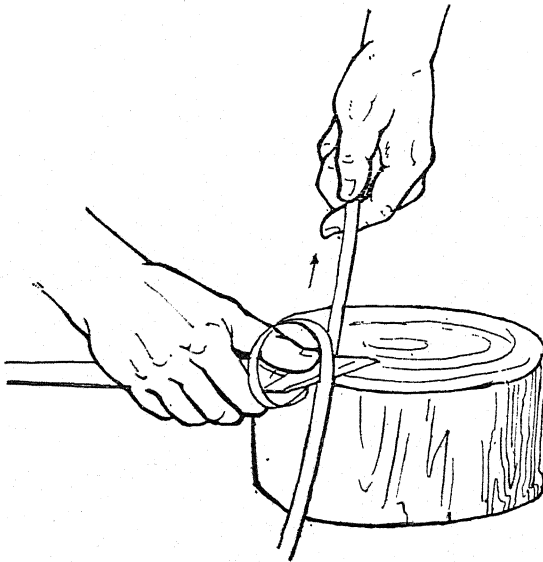
सामान्य विधि— यह है कि मोटे कपड़े को जाँघ पर रखकर उस पर सामान को रखना चाहिए। उसके बाद छुरी की धार से सामान पर दवाव देकर खींचना चाहिए। तब उसकी सतह चौड़ी और सुन्दर हो जाती है। दूसरा तरीका है—लकड़ी के कुन्दे पर रखकर खींचा जाता है, जिसे
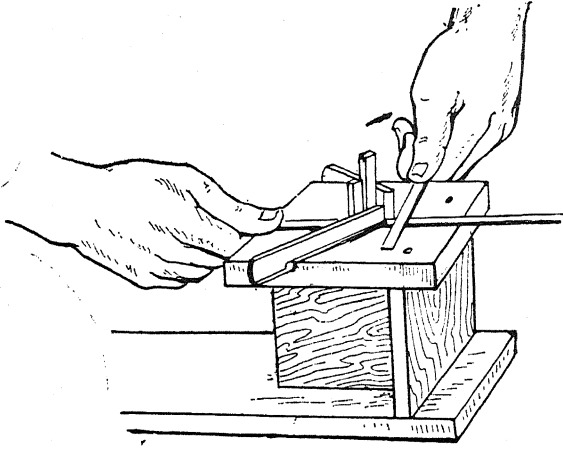
(चित्र ५०)

(चित्र ५१)

चित्र ५० में दिखाया गया है। इस काम के लिए जो छुरी व्यवहृत होती है, वह चित्र २१ में 'घ' वर्ण की छुरी है। मुटाई निश्चित करने के भी दो तरीके हैं, जो यंत्र के द्वारा होते हैं। यंत्र भी दो प्रकार के हैं—एक मुटाई निश्चित
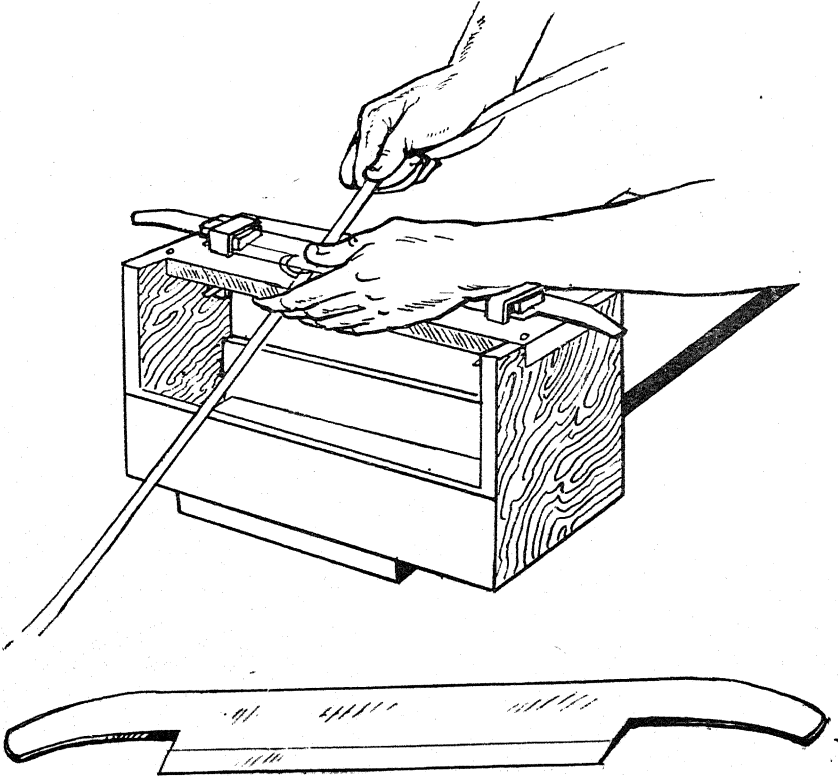
(चित्र ५२)

करने के लिए और एक चौड़ाई के लिए। दोनों के चित्र यहाँ दिये गये हैं। चित्र ५१ और ५२ देखना चाहिए। यदि ऐसे सामान को, चिकना करनेवाले तरीके के अनुसार ही व्यवहार करते हैं तो इससे यह थोड़ा वक्र हो जायगा।
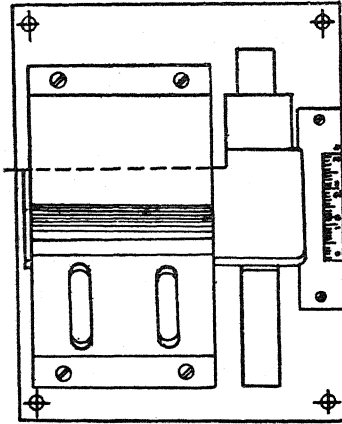
(चित्र ५२ (क))
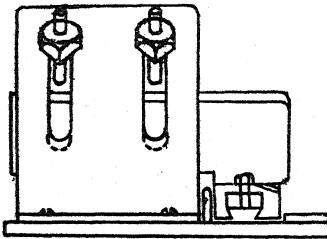
(चित्र ५२ (ख))
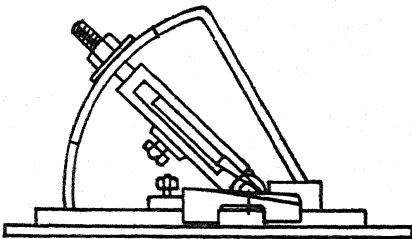
(चित्र ५२ (ग))

हाथ से खींचकर कमची बनाने का तरीका—यह विधि (चित्र ५२) केवल बनने वाले सामान तैयार करने के समय व्यवहार में लाई जाती है। यह विधि और इसके औजार बहुत उपयोगी हैं तथा यह विधि कमचियों की मुटाई बरावर रखने में सर्वोत्तम है। इसकी छुरी चित्र ५२ में नीचे दिखाई गई है।

इस विधि के लिए जो सर्वोत्तम और अति आधुनिक उपयोगी यन्त्र तैयार किये गये हैं, वे चित्र ५२ (क), ५२ (ख) और ५२ (ग) में दिखाये गये हैं। इन यन्त्रों के उपयोग से कमचियाँ निश्चित रूप से शुद्ध और स्वच्छ होंगी ही।

फाड़ने और कमचियाँ बनाने के सिद्धान्त—बाँस का कोई भाग अधिक मोटा और कोई कम मोटा होने पर उनके टुकड़ों की चौड़ाई एक नहीं होगी, अर्थात् अधिक मोटे टुकड़ों के भाग अधिक मोटे और चौड़े होंगे तथा कम मोटे टुकड़ों के हिस्से पतले और संकीर्ण होंगे। ऐसी स्थिति में मोटे भाग को ही मोड़ना चाहिए। इससे उसकी मुटाई घट जायगी और उनके चीरे हुए भाग की चौड़ाई और मुटाई एक-सी होगी। बहुत छोटे टुकड़े को चीरते समय केवल छुरी को ही अधिक मोटे और चौड़े भाग की ओर घुसा देना चाहिए। देखिए चित्र ५३। ऐसी स्थिति में मोड़ने की जरूरत नहीं है।

बाँस में त्वचा, आर्गेनिक स्ट्रक्चर तथा रेशे होते हैं और बाँस को फाड़ने तथा कमचियाँ बनाने में रेशे का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। बाँस के रेशे चित्र ५४ में प्रदर्शित

रूप में बँटे होते हैं। ये रेशे सीधे नहीं, बल्कि टेढ़े होते हैं। बाँस के ऊपरी भाग के रेशे भीतर की ओर और निचले भाग के रेशे त्वचा की ओर गये होते हैं तथा बाँस की जड़ में अधिक रेशे होते हैं, किन्तु सिरे पर कम। इसलिए बाँस के सिरे की ओर से फाड़ना ज्यादा आसान होता है। लेकिन चाभ के समान मुलायम बाँस को सिरे की ओर से फाड़कर अन्तिम रूप में जड़ की ओर से फाड़ते हैं। यह बाँस की बनावट पर निर्भर करता है। अनुभवी कारीगर दोनों ओर से बाँस को फाड़ते हैं।
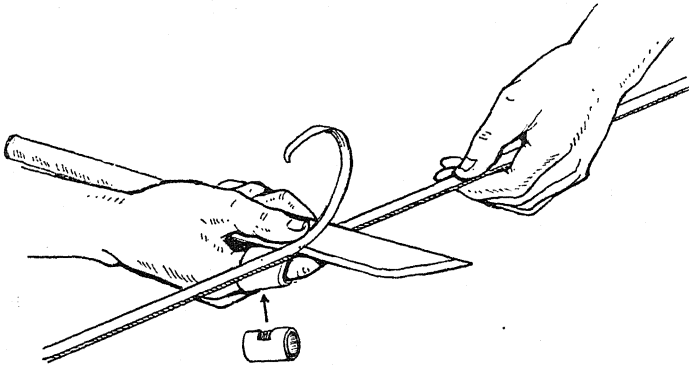
(चित्र ५३)
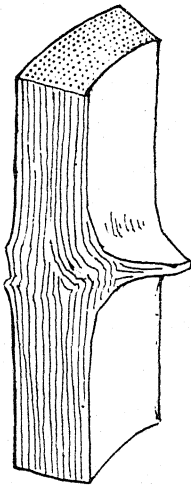
(चित्र ५४)

इसका दूसरा भी कारण है। चित्र ५४ में प्रदर्शित ढंग से गाँठवाले भागों में रेशे की बनावट की जाँच कीजिए। नीचे भाग से निकले रेशों के आगे बढ़ने पर उनमें से कुछ शाखाएँ निकलती हैं, जिनमें से एक ऊपर जाने के बजाय नीचे की ओर चलती हैं और दूसरी ऊपर की ओर। अतः, जड़ की ओर से फाड़ने से गिरह पर बाँस टेढ़ा हो जाता है। ऐसी अवस्था में यह प्रतीत होगा कि सिरे की ओर से फाड़ना ज्यादा आसान होता है।

आवश्यकता के अनुसार चौड़ाई बनाना—अनुभवी कारीगर अभीष्ट चौड़ाई में बाँस को चीरते हैं। बाँस की सामान्य वस्तु बनाने में खास चौड़ाई के सामान की जरूरत

नहीं होती है, किन्तु कलात्मक अथवा उच्च कोटि की वस्तु बनाने के लिए खास आकार के बने-बनाये गोल सामान की जरूरत अवश्य होती है।

इस काम को सीखनेवालों के लिए 'साइजिंग विड्थ' नामक हथियार का व्यवहार करना अधिक सुविधाजनक होता है। उक्त हथियार की बनावट चित्र ५५ में दिखाई गई है। इस चित्र में काटनेवाली धार दो खूटियों के बीच जकड़ दी जाती हैं और चौड़ाई निश्चित कर ली जाती है। अब अभीष्ट चौड़ाई से कुछ अधिक चौड़े सामान को खुले स्थान में रख देते हैं और बाँये हाथ में रखे बाँस से उसको धक्का देते हैं और खींचते हैं।
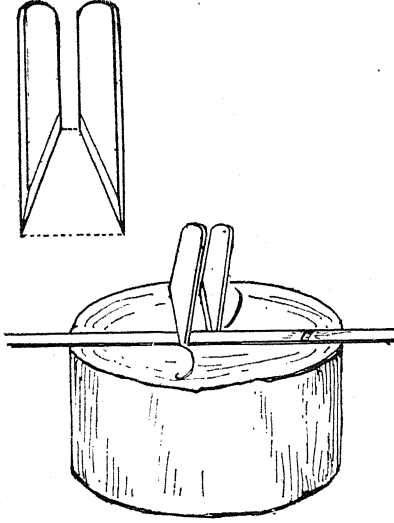
(चित्र ५५)

इस कार्य के लिए अनेक प्रकार के औजार होते हैं, लेकिन चित्र ५५ में प्रदर्शित औजार ही सरल हैं, जो अधिकतर व्यवहार में लाया जाता है। लकड़ी के बने घन पर दो छोटी छुरियाँ अभीष्ट दूरी पर गाड़ दी जाती हैं और बीचवाले खुले स्थान होकर सामान को खींचते हुए यह काम आसानी से कर लिया जाता है। इस औजार के बाँटनेवाले कोण को बाँस के कड़ापन के अनुसार संतुलित कर लेना होता है और बहुत तेज छुरियाँ व्यवहृत कर सामान की सतह सुन्दर बनाई जा सकती है। छुरियों की आकृति चित्र ५६ में देखिए। लेकिन छुरियों की धार किस तरह रखी जाय, यह अनुभवों से ही सीखा जा सकता है।
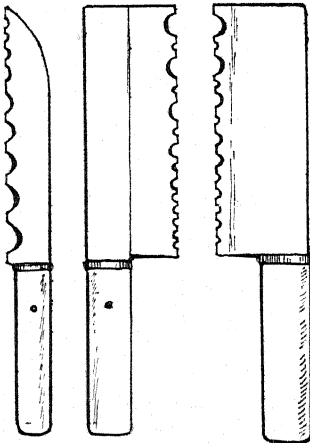
(चित्र ५६)

सामान की सतह बराबर करना तथा उसे गोल बनाना

वस्तुओं को बनानेवाले सामानों के खास आकार के बना लेने के बाद

उनकी सतह बराबर की जाती है; क्योंकि उनके किनारे बहुत तेज होते हैं। यह कार्य चित्र ५७ में प्रदर्शित औजार से किया जाता है।

इस हथियार का व्यवहार करने के लिए बाँस से बने सामान को पहले मोटे कपड़े पर रख देना चाहिए और औजार के साथ लगे उन सामानों को धक्का देकर खींच लेना चाहिए। यह विधि चित्र ५८ में प्रदर्शित है। इसके अतिरिक्त (चित्र ५७) औजार को लकड़ी के बने घन में गाड़ दिया जाता है और उस होकर मोटी कमची को खींचा जाता है। यह तरीका चित्र ६० में दिखाया गया है।
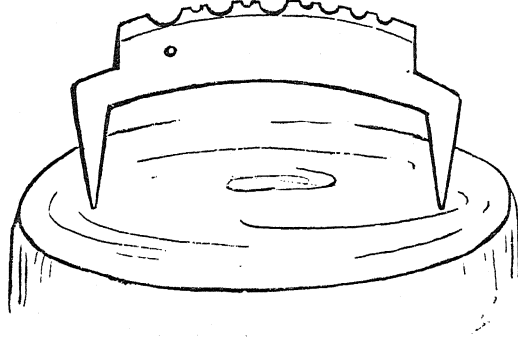
(चित्र ५७)

इन औजारों से वस्तु बनाने का सामान जिन
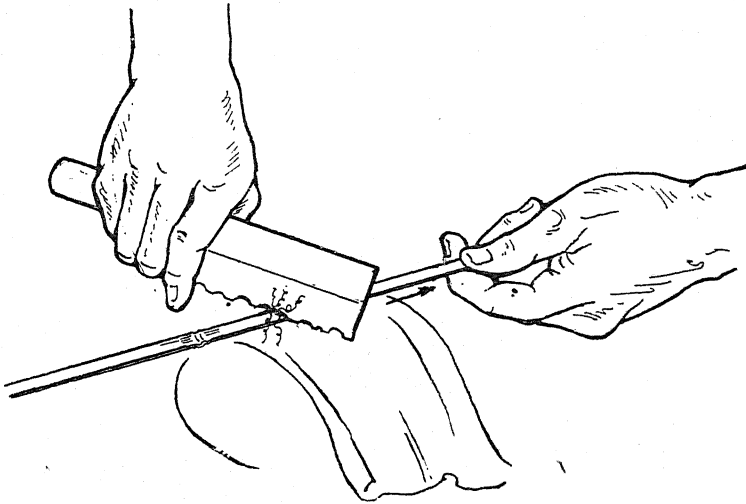
(चित्र ५८)

आकारों में काटना चाहते हैं, उन कमचियों को उसी आकार में बना लेना चाहिए।

कारीगर बहुधा चित्र ५६ वाले औजार को अपने सामान को गोल बनाने के काम में भी लाते हैं। लेकिन बत्तियों के लिए गोल सामान बनाने के लिए 'राउंडिंग टूल' नामक एक खास औजार को व्यवहार में लाते हैं, जो चित्र ६० में प्रदर्शित है।

(चित्र ५९)
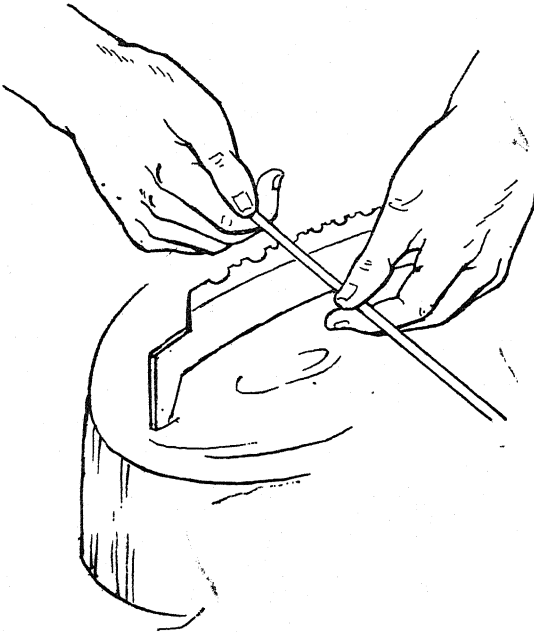
यह औजार इस्पात के चदरे का बना होता है, जिसमें उचित व्यास के छिद्र बने होते हैं। इस औजार से काम लेने के लिए छेद से थोड़ा अधिक व्यास का सामान छेद होकर खींचते हैं। उसके बाद उससे अधिक छोटे छेद होकर सामान को खींचते हैं, जिससे पहले से भी अधिक गोल और स्वच्छ सुन्दर सामान बन जाता है। सैंड पेपर से चिकना कर देने पर वह और अधिक अच्छा हो जाता है। बाँस से बननेवाले अच्छे पर्दे के सामान इसी तरीके से बनाये जाते हैं। इसी औजार से $\frac{1}{8}$ इंच से कम चौड़ेवाले सामान को गोल किया जाता है।

(चित्र ६०)

(चित्र ६१)

(चित्र ६२)
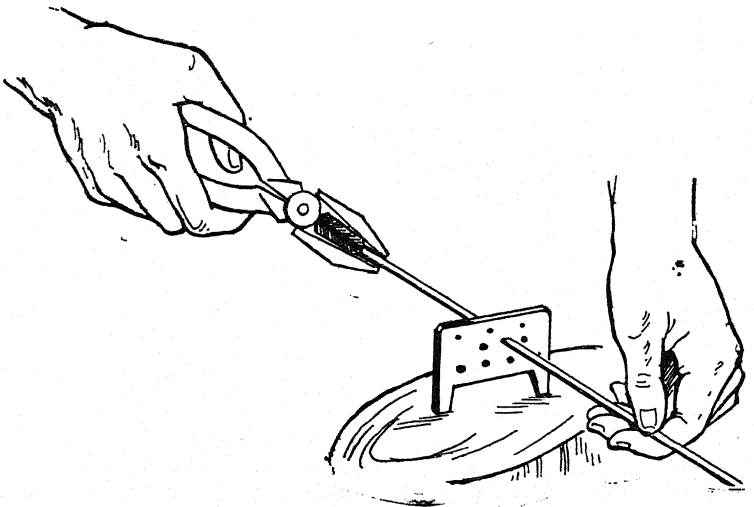
इस विभिन्न प्रकार के छिद्रवाले औजार से आप अपनी इच्छा के अनुसार मोटे-पतले सामान तैयार कर सकते हैं।
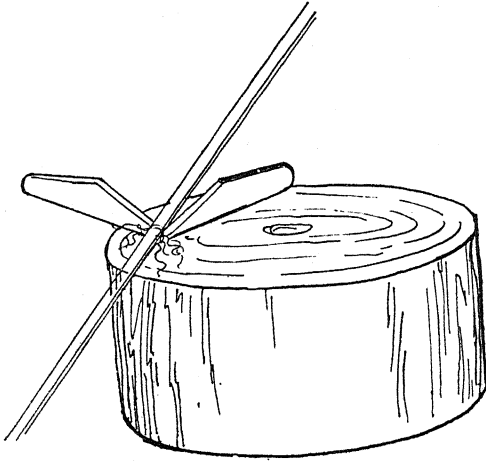
सतहदार सामान बनाने की सर्वोत्तम विधि—इसके लिए चित्र ६१ में प्रदर्शित विधि ही व्यवहार में लाई जाती है, अर्थात् अभीष्ट कोण की गड़ी छुरियों के बीच सामान को खींचते हैं। इस प्रणाली को चित्र में भली भाँति देखा जा सकता है।

घन का वह भाग, जहाँ छुरियाँ गाड़ी जाती हैं, घन के बाहरी भाग से अच्छा और चिकना बना होता है। इस पर गड़ी तेज छुरियों से सतहदार सामान बनाने का काम किया जाता है, जिससे तैयार सामान की सतह बहुत सुन्दर हो जाती है। गोल, सुन्दर और बारीक सामान तैयार करने के लिए विभिन्न प्रकार के औजार चित्र ६२ में दिखाये गये हैं।
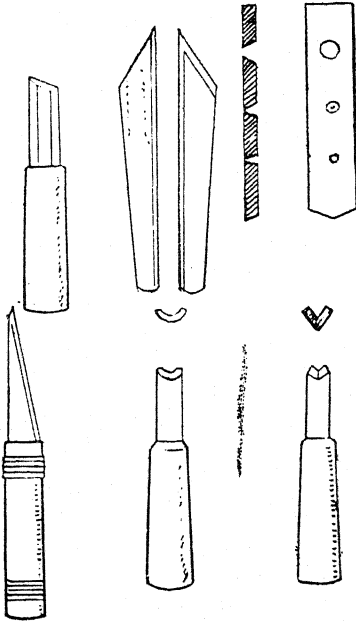
जब सामान की चौड़ाई बहुत संकीर्ण रहती है और ऊपर वर्णित ढंग से काम करना असम्भव हो जाता है, तब छोटे बाँस के बने सामान गाँठ पर टूट जाते हैं और सतहदार सामान बनाना मुश्किल हो जाता है। ऐसी अवस्था में चित्र ६३ में प्रदर्शित विधि से काम करना पड़ता है।

दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली को छुरी पर फैलाकर और अँगुलियों से तथा छुरी से सामान को पकड़कर कारीगर हाथ को बढ़ाता जाता है और सतहदार सामान तैयार होता जाता है। इस पद्धति से विना टूटे ही सामान की सतह बराबर हो जाती है। बाँस से बननेवाले शिल्पों के लिए जितने प्रकार के औजार काम में आते हैं, उनके नमूने एक साथ चित्र ६४ में दिखाये गये हैं।
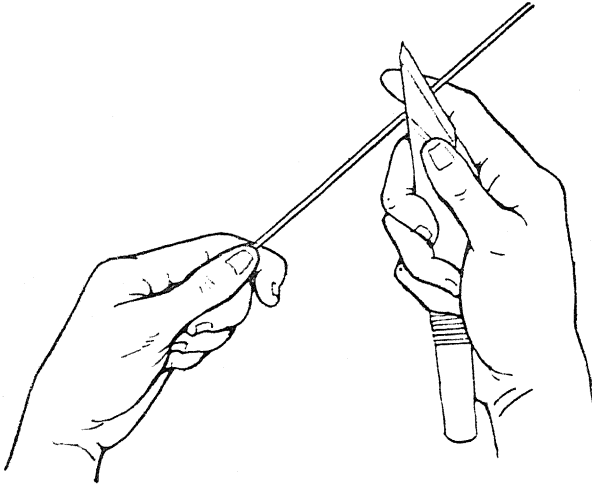
(चित्र ६३)

सामान को मोड़ना या सीधा करना—बाँस बहुत लचीला होता है, इसलिए इसे मोड़ना बहुत आसान है, लेकिन टेढ़ापन को बिलकुल उसी तरह निश्चित रखने के लिए निम्नलिखित विधि काम में लाई जाती है।
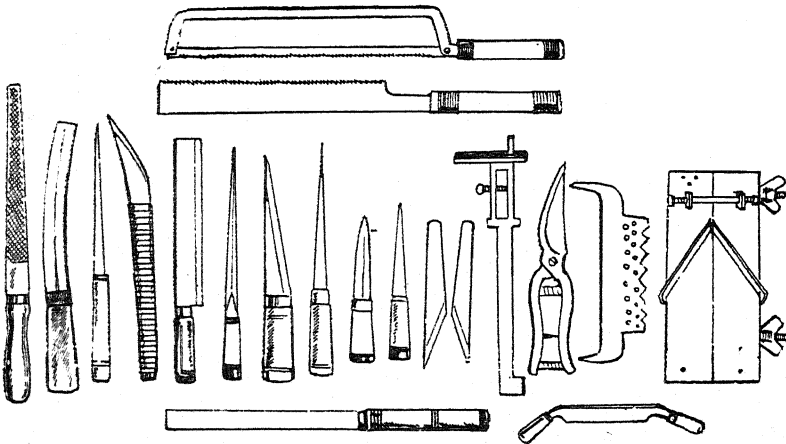
(चित्र ६४)

बाँस के भीतरी भाग को गरमी पहुँचाकर मोड़ा जाता है। उसे तबतक गरम करते रहना चाहिए, जबतक बाँस से निकलनेवाले तेल से बाँस की सतह भींग न जाय। उसके बाद बाँस को मोड़ना चाहिए और फिर तुरन्त उसे उसी हालत में हाथ से पकड़कर जल में डुबा देना चाहिए। यदि सामान पानी में नहीं रखा जाय, तो उसे भींगे कपड़े से पोंछकर ठंडा कर लेना उत्तम होता है। अगर दोनों तरीके से ठंडा नहीं किया जा सके, तो मुड़े हुए रूप में ही १० मिनट तक पकड़कर रखना चाहिए। (चित्र ६४ देखिए)
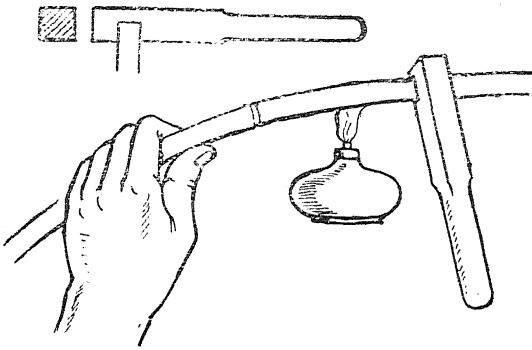
(चित्र ६५)
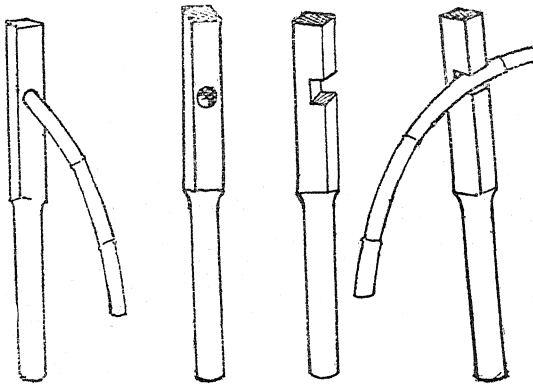
(चित्र ६६)

बाँस के सामान को मोड़ते समय इस बात के लिए सतर्क रहना चाहिए कि उसे गाँठ पर से नहीं मोड़ें, बल्कि दो गाँठों के बीच भाग पर वह मोड़ा जाय।
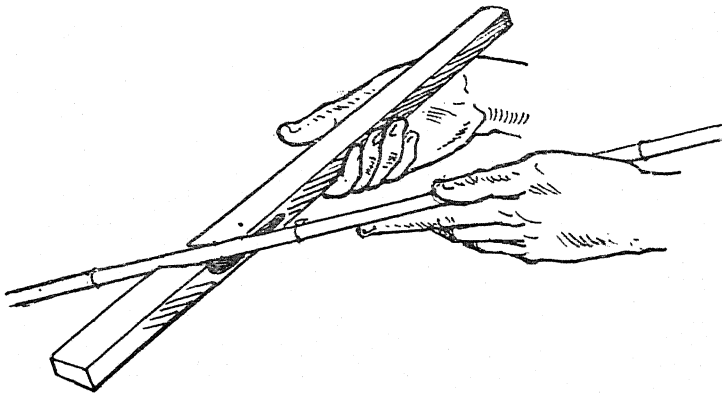
(चित्र ६७)

नये बाँस को, जो बहुत पहले नहीं काटा गया है, मोड़ना बहुत सरल है, लेकिन पीछे चलकर वह पूर्ववत् सीधा हो जाता है। इसलिए अच्छी तरह सूखे हुए बाँस को मोड़ना चाहिए, जो पीछे चलकर भी नहीं बदलता।

टेढ़े बाँस को भी सीधा करने के लिए मोड़ा जाता है, जिसका तरीका पहले बतलाया जा चुका है।

गोलाकार पतले बाँस को मोड़ना—बिलो[1] के समान मुलायम और पतले बाँस को लकड़ी के बने मोड़नेवाले औजार के उस हिस्से में, घुसा देना चाहिए, जहाँ बाँस को घुसाने का स्थान बना है। फिर, उस भाग को तबतक गरम करना चाहिए, जबतक उसमें से तेल न निकल आये। जब तेल पसीजने लगे, तब उसे मोड़कर ठंडे जल में रख देना चाहिए। यह औजार और मोड़ने का तरीका—दोनों चित्र ६५ और ६६ में दिखाये गये हैं।
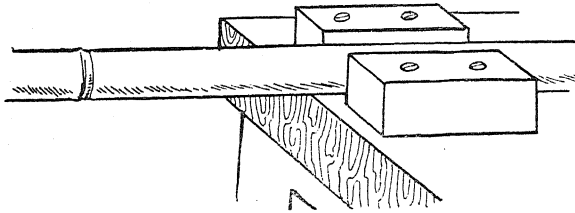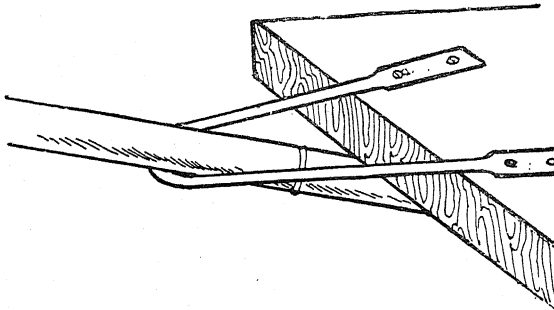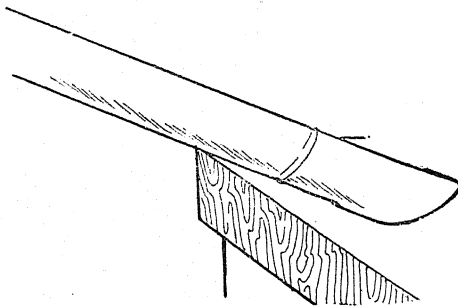
(चित्र ६८)

(चित्र ६९)

(चित्र ७०)

बड़े सामान को मोड़ना–मोड़नेवाले भाग के ऊपर तेल लेपकर, तेल निकल आने तक, उसे गरम करते रहिए। फिर, उसे मोड़नेवाले औजार, चित्र ६७, में लगाकर इच्छानुसार मोड़ दीजिए। लेप करनेवाला तेल प्रायः रेंड़ी का होता है।

१. बेंत की जाति का सरपत है। यह प्रायः समस्त भारत में पाया जाता है; किन्तु कश्मीर में

गरम करते समय बाँस को घुमाते रहना चाहिए, नहीं तो अधिक ताप से जल जाने की सम्भावना है। ऐसे बाँस को, जो अन्दर से पोला हो और जिसकी गिरहें हटा दी गई हों, गिरहों पर छेद करके तथा पोले में अच्छी तरह बालू से भर कर मोड़ना चाहिए। मोड़ने के बाद बालू को हटा देना चाहिए। बालू से गरमी फैलती है और इससे बाँस, टूटने पर फटने से बच जाता है। कहीं-कहीं बाँस के ऊपर तेल लगाकर फिर उसमें गोबर लगाकर गरम करते हैं। इस प्रयोग से बाँस की सतह खराब नहीं होने पाती।
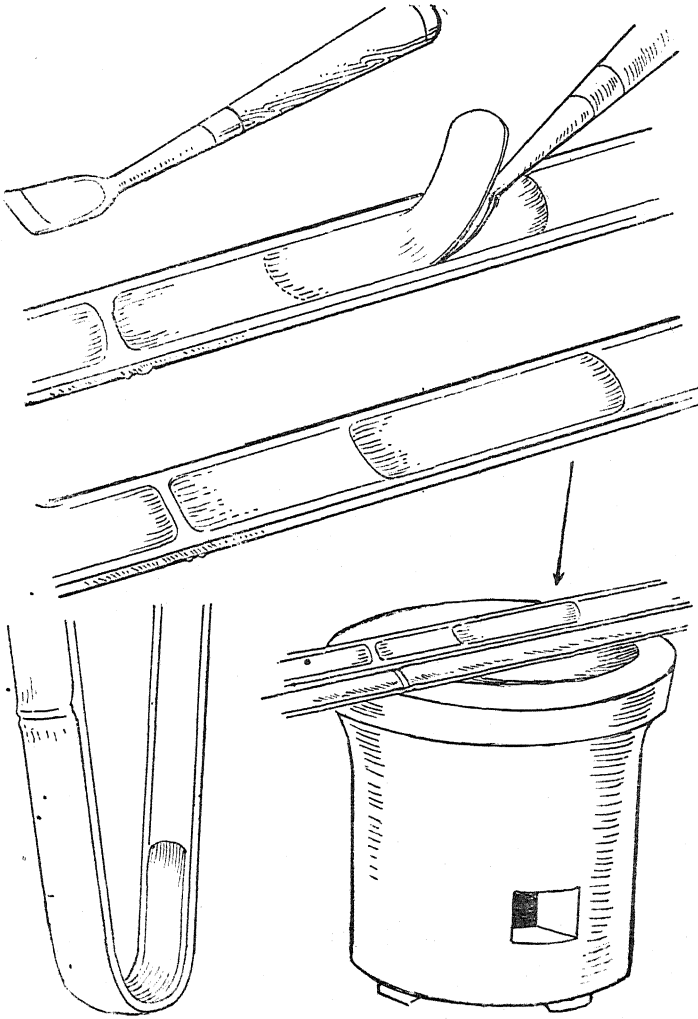
(चित्र ७१)

किसी भी तरीके से, आकार में विकृति आये बिना, बड़े सामानों को मोड़ना बहुत कठिन होता है।

बड़े गोल बाँस को तो केवल ताकत लगाकर भी सीधा किया जा सकता है। इसका एक यह भी तरीका होता है कि गोबर का लेप देकर फूस की आग पर गरम करके सीधा करते हैं। भारत में सर्वत्र यह पद्धति प्रचलित है। इसके अतिरिक्त आसानी से सीधा करने की विधि निम्नलिखित है—

(चित्र ७२)

(क) एक विधि चित्र ६७ में प्रदर्शित है। मोड़ने के काम के लिए कड़ी लकड़ी का बना औजार काम में लाया जाता है। बाँस को छिद्रवाले भाग पर पकड़कर इस औजार के जरिये मोड़ना या सीधा करना चाहिए।

(ख) चित्र ८६ में दिखाये गये ढंग से काम करनेवाली बेंच पर लकड़ी की दो मोटी कीलों को ठोक दिया जाता है। इसमें बाँस को डालकर और दबाकर सीधा किया जा सकता है अथवा उसे मोड़ा जा सकता है। दो सटे हरे पेड़ों या दो सटी हरी डालों में भी फँसाकर तथा रगड़-रगड़कर बाँस को सीधा किया जाता है या मोड़ा जाता है।
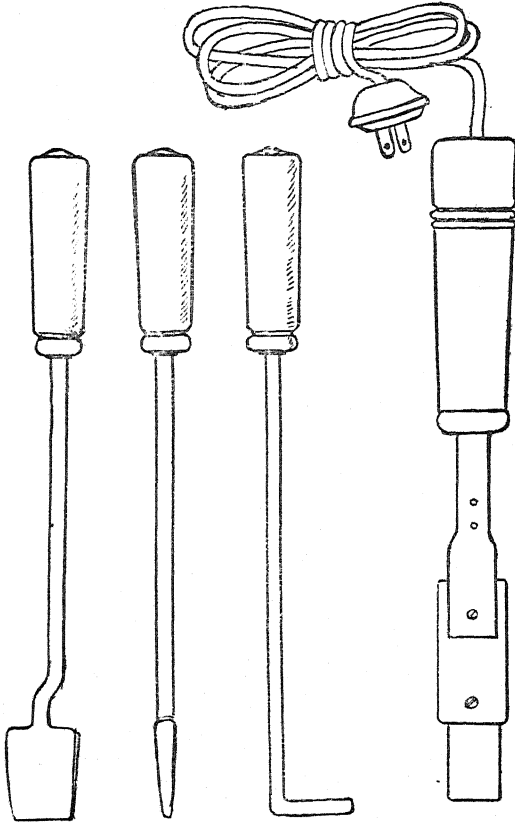
(ग) कहीं-कहीं इस काम के लिए ऐसा औजार होता है, जो $\frac{3}{4}$ इंच लोहे का बना होता है और व्यवहार में सुविधाजनक होता है। यह औजार चित्र ६९ में प्रदर्शित है।

(घ) चित्र ६८ में दिखाई गई काम करने की विधि, जिसमें उचित आकार के सामान बन सकते हैं, ऊपर की विधि से अधिक अच्छी होती है; क्योंकि उससे बाँस की त्वचा बरबाद नहीं होती। इस विधि से सीधा किया गया बाँस चित्र ७० में प्रदर्शित है।

फाड़े हुए बाँस को मोड़ना—टोकरी या पिंजड़े के फ्रेम बनाने के लिए मोटे फाड़े हुए बाँस को मोड़ना अधिक सरल है। जिस भाग को मोड़ना है, उसके भीतरी भाग को गोल बटाली या रुखानी से काट लेना चाहिए। ऐसी बटाली चित्र ७१ के

(चित्र ७३)

(चित्र ७४)
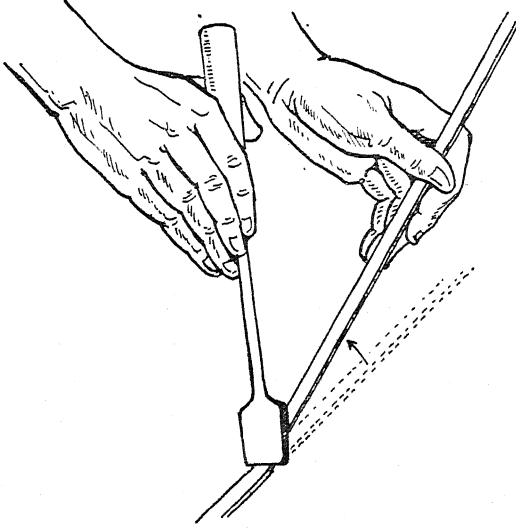
ऊपरी हिस्से में प्रदर्शित है। बाँस के निचले भाग को, जिस तरफ छिलका है, गरम किया जाता है और तबतक गरम करते रहते हैं, जबतक उसमें से तेल न निकल आवे। फिर, भीतरी भाग को भी थोड़ा गरम करते हैं। बाद, मोड़ लेने पर सामान को ठंडा कर देते हैं। ये सभी कार्य चित्र ७१ में ही दिखाये गये हैं।

गरम लोहे से पतली कमचियों को मोड़ना—टोकरी अथवा किसी वस्तु के फ्रेम के सामान बुनकर टेढ़े किये जाते हैं। कपड़े रखने के बक्से आदि में फ्रेम के सामान व्यवहृत होते हैं, उनके किनारे तीखा कोण लिये होते हैं। ऐसे कोण बनाने के लिए जो मुटाई होती है, उसमें लोहे को गरम करके अथवा बिजली के यन्त्र से गरमी पहुँचा करके मोड़ बनाई जाती है। इस काम में आनेवाले औजार चित्र ७२ में दिखाये गये हैं। कभी-

कभी इस काम के लिए आयताकार लोहे अथवा ताँबे के तार से भी काम लिया जाता है। व्यवहार करने के लिए, गरम किये गये दो लोहे रखना उत्तम होता है, जो एक के बाद दूसरा गरम किया जाता है।
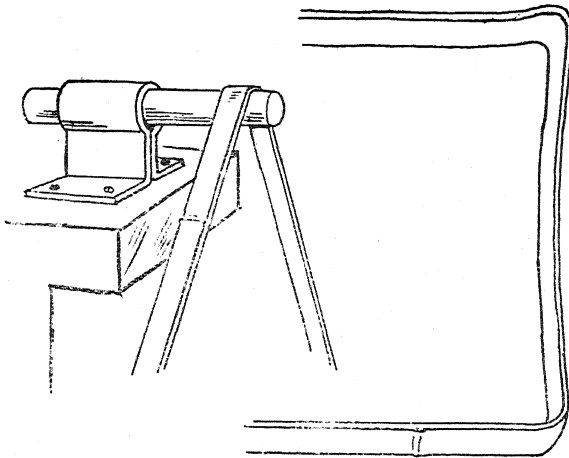
लोहे के द्वारा मोड़ने में, जिस भाग को मोड़ना है, उस भाग को गरम लोहे पर रख देते हैं। लोहे पर बाँस रखते समय उसकी गरमी यदि ठीक रही, तो बाँस का रंग भूरा हो जाता है। ऐसे गरम लोहे पर कुछ क्षणों तक सामान को रखकर, जब वह नरम हो जाय और उसका रंग भूरा हो जाय, तब सामान को मोड़ देना चाहिए। विधि चित्र ७३ के निचले भाग में प्रदर्शित है। लोहा बहुत गरम होने पर सामान जल जायगा और बहुत ठंडा होने से कोई लाभ नहीं होगा। इसलिए, लोहे की गरमी उपयुक्त होनी चाहिए।

इस काम के लिए लोहा लकड़ी के कोयले से गरम किया जाता है, फिर भी लोहे की गरमी एक-सी नहीं रहती है। लेकिन, बिजली के द्वारा गरम किये यन्त्र में यह दोष नहीं होता है; क्योंकि इसमें इच्छानुसार गरमी पहुँचाई जा सकती है। यन्त्र को गरम करने के लिए विद्युत्-शक्ति ४० डब्ल्यू से ६० डब्ल्यू तक होनी चाहिए। यह यन्त्र चित्र ७२ के दाहिने भाग में दिखाया गया है। किन्तु, इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि मोड़ टूट न जाय; क्योंकि गरम करके मोड़ने से लचीलापन खत्म हो जाता है।

लोहे की गरम छड़ का व्यवहार—एक ही आकार के बहुत-से सामान को मोड़ते समय गरम लोहे की छड़ों को व्यवहार करना उत्तम होता है। यह लोहे की छड़ ½ इंच से ¾ इंच तक की बनी होती है। चित्र ७४ में प्रदर्शित ढंग से काम करनेवाली बेंच में वह जकड़ दी जाती है और उस गरम छड़ को घिसका-घिसकाकर बाँस को मोड़ा जाता है। छड़ की गरमी भी आवश्यकतानुसार ही रखनी पड़ती है। सामान मोड़नेवाला बाँस का रेक बनाने के लिए ¼ इंच लोहे की छड़ व्यवहार में लाई जाती है। उसका व्यास कार्य के अनुसार कम या अधिक बनाया जाता है। बाँस में जितना ही अधिक जलीय पदार्थ होता है, उतना ही अधिक समय उसे गरम करने में लगता है। मोड़ने के पहले सामान को सुखा देने से लाभ होता है।

तेज कोण बनाने की विधि—बाँस को मोड़ते समय भीतरी भाग का किनारा कुछ-कुछ अँगरेजी अक्षर W के आकार का हो जाता है, जिसकी आकृति चित्र ७४ में दाहिनी ओर दिखाई गई है।

तेज कोण बनाने के लिए मोड़ने और फिर गरम करने की क्रिया कई बार दुहरानी पड़ती है। अगर तेज कोण को एक ही बार मोड़ दिया जाय, तो वह या तो टूट जायगा अथवा उसमें दरार हो जायगी। इस कार्य के लिए लकड़ी का कोयला, टाउन गैस, टार्च लैंप, अल्कोहल लैंप, मोमबत्ती आदि व्यवहार में लाते हैं।
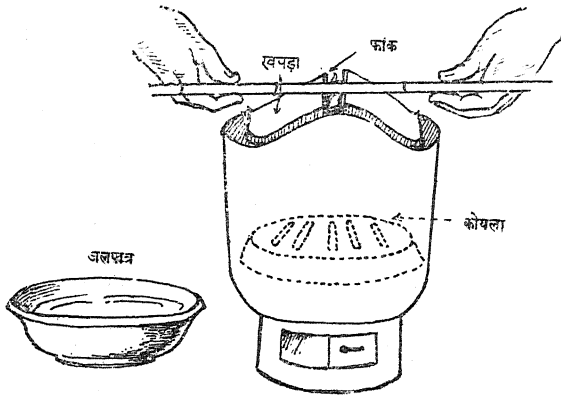
(चित्र ७५)

गरम किये जानेवाले भाग के, सीमित रखने के लिए (फायर ब्रिक) कोयला के चूल्हे के मुँहपर, एक दूसरे के आमने-सामने ईंटें रख दी जाती हैं, जिससे चूल्हे का मुँह छोटा हो जाता है और बाँस की खास जगहपर ही आग की गरमी पहुँचती है तथा उसी भाग पर ही मोड़ बनाई जाती है। इसके लिए चित्र ७५ देखिए।

कलात्मक वस्तुओं के सामान को अल्कोहल लैंप या कड़ुआ तेल के लैंप (चित्र ६५) अथवा मोमबत्ती से गरम करते हैं। इससे फायदा यह होता है कि बाँस में धुएँ के कालापन का दाग नहीं पड़ता है।

गरम करते समय इस बात के लिए सावधानी बरतनी पड़ती है कि अगर सामान को गोल करना हो, तो घुमाते रहना चाहिए। मोड़ने के योग्य तापमान २४० सेंटीग्रेड अच्छा होता है; पर लकड़ी का कोयला व्यवहार करने पर यह तापमान ४०० सेंटीग्रेड हो जाता है। ऐसी स्थिति में बाँस जल्दी-जल्दी घुमाना पड़ता है, जिससे बाँस में अधिक ताप न लगे।

कमचियों को मोड़ने की दूसरी विधि—कमचियों को गोलाकार फ्रेम के रूप में बनाने की एक दूसरी विधि भी है। इसके लिए भी एक प्रकार का चूल्हा होता है, जो चित्र ७६ में दिखाया गया है। इस विधि से उच्च कोटि की वस्तुओं के निर्माण के लिए गोलाकार फ्रेम तैयार किया जाता है। इस चूल्हे के बीचवाले भाग में लोहे के १० हिस्से होते हैं। चूल्हे के भीतर, भोजन पकानेवाले पत्थर-कोयले के चूल्हे की तरह ही, लोहे की छड़ लगाई जाती है। इसमें उसी तरह आग भी सुलगाई जाती है। चूल्हे के ऊपरी मुँह पर बटखरे के आकार के, पाँच छोटे-बड़े गोलाकार लोहे के बटखरे (फ्रेम) रख दिये जाते हैं। इसे चित्र ७७ में दिखाया गया है। ये फ्रेमवाले छोटे-बड़े बटखरे चूल्हे के अन्दर की आग की आँच से गरम हो जाते हैं। इन तप्त बटखरों के सहारे कमचियों के गोलाकार फ्रेम अत्यन्त सुविधापूर्वक बनाये जा सकते हैं।

विधि—सर्वप्रथम कमचियों को आवश्यकतानुसार आकृति की बना लेने के बाद चूल्हे में आग रखकर उसे गरम करना पड़ता है। चूल्हे के पास ही एक
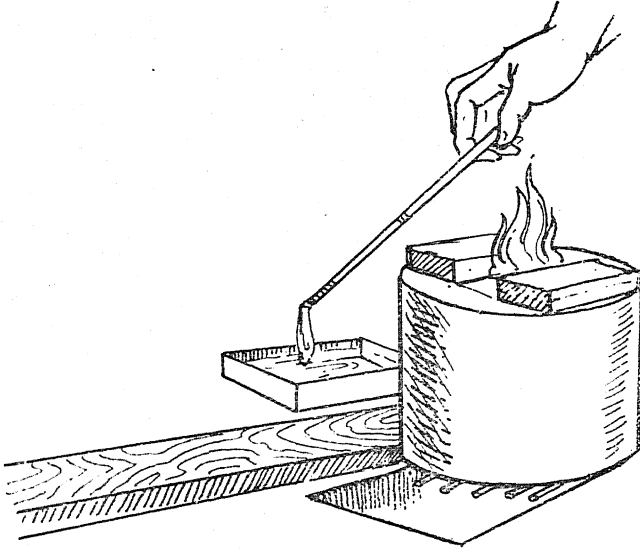
(चित्र ७६)
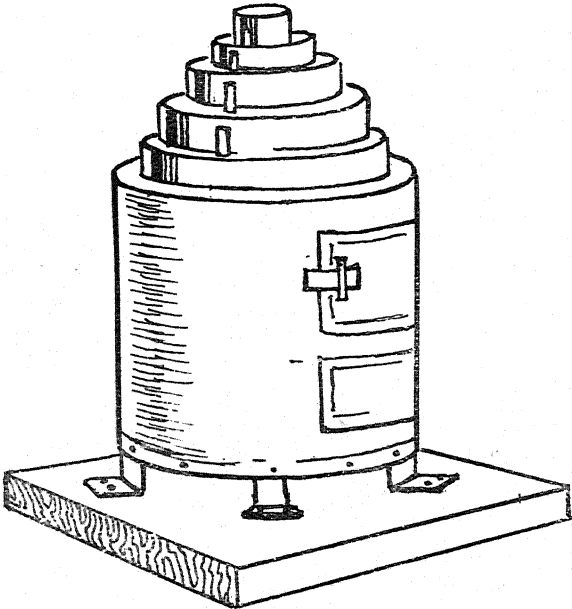
(चित्र ७७)

पात्र में पानी रख लिया जाता है। जब गरम होते-होते चूल्हे के ऊपर के रखे बटखरे गरम हो जायँ, तब कमचियों को बटखरे में फँसाकर, दोनों हाथों से कमचियों के दोनों छोर पकड़कर, धीरे-धीरे अपनी ओर खींचना चाहिए। यह प्रक्रिया चित्र ७८ में दिखलाई गई है। जब कमचियाँ बहुत गरम हो जायँ और जलने की अवस्था तक पहुँच जायँ, तब उसी अवस्था में पकड़े हुए जल-पात्र में डुबो देना चाहिए और उसके बाद भी थोड़ी देर पकड़े रहना चाहिए। यह विधि भी उसी चित्र ७८ में ही दीख रही है। यदि वैसी अवस्था में पकड़कर कमची नहीं रखी जायगी, तो वह सीधी
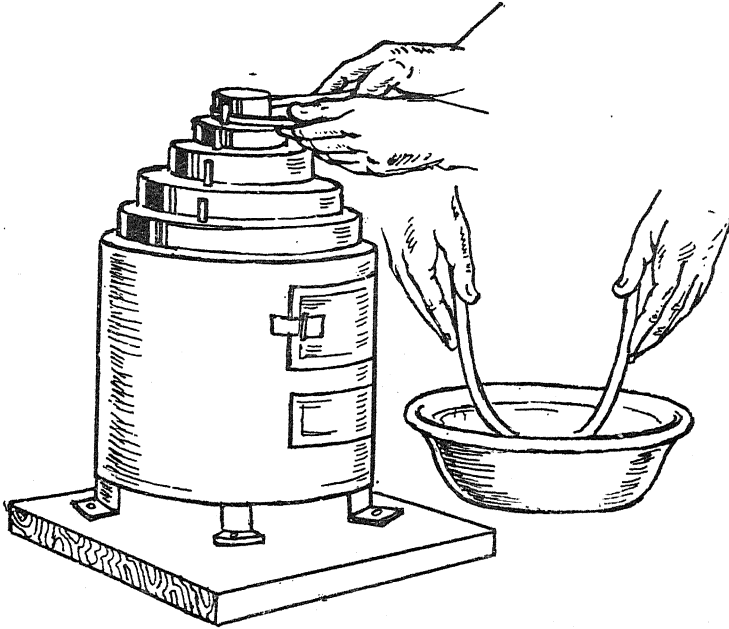
(चित्र ७८)
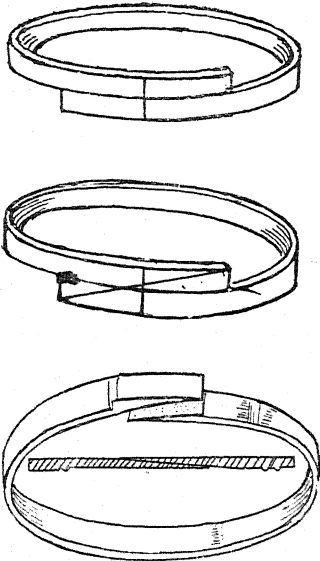
(चित्र ७९)

हो जायगी। इस तरह मोड़ने के समय इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि एकाएक कमचियाँ नहीं मोड़ी जायँ। मोड़ने के लिए आहिस्ता-आहिस्ता प्रयास करना ही श्रेयस्कर होता है।

कुछ मोड़ी हुई मोटी कमचियाँ चित्र ७९ में दिखाई गई हैं। मोड़ी हुई कमचियों को सुरक्षित रखने के लिए भी तरीके और साँचे हैं, जो चित्र ८० और ८१ में प्रदर्शित हैं। इस विधि से रखने पर कमचियाँ उस मोड़ी हुई अवस्था में बहुत दिनों तक रह सकती हैं।

चित्र ८२ भी ऐसी ही विभिन्न कमचियों का है।
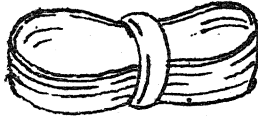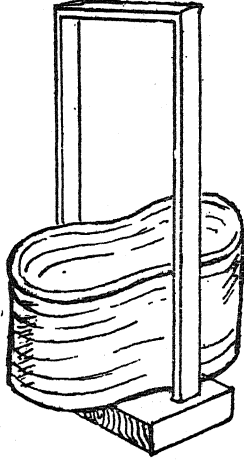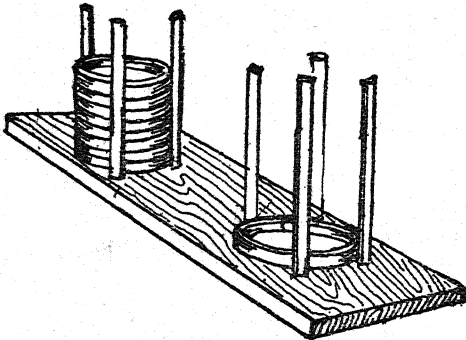
बाँस को तख्ते की तरह सीधा करने की विधि—गोल बाँस को ठीक बीच से विभक्त कर लेते हैं। विभक्त करने के पहले ही आवश्यकतानुसार मोटाई रखकर, चित्र ८३ में दिखाई जगह के पास से बाँस का छिलका हटा देते हैं। छिलका हटाने के लिए 'काँता' व्यवहृत होता है। छिलका हटाने के पश्चात् उसे रंदे से रँदकर चिकना कर लेना पड़ता है। चिकना करने की विधि चित्र ८४ में दिखाई गई है। बाँस को दो भागों में विभक्त करने का तरीका और स्थान दोनों चित्र ८५ में दिखाये गये हैं। सीधा करने के काम में बाँस का, दो गाँठों के बीचवाला, भाग ही काम में लाया जाता है। जिस तरफ से छिलका निकाला गया है, उसी भाग की तरफ से सेंककर अथवा गरम लोहे की छड़ से दबाकर सीधा करते हैं। सीधा करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बाँस को एकबारगी ज्यादा गरम नहीं करें या न एकबारगी सीधा ही करें। सीधा करने के लिए आहिस्ता-

(चित्र ८०)

(चित्र ८१)

आहिस्ता दबाया जाता है और बार-बार गरम किया जाता है। जितनी बार आग पर सेंककर अथवा लोहे की छड़ से दबाकर सीधा किया जाता है, उतनी ही बार बाँस को पानी से पोंछना भी पड़ता है और उसी हालत में दबाकर रखना पड़ता है, अन्यथा बाँस अपनी पूर्वावस्था में हो जायगा। कितने लोग बिजली के प्रेसर या साधारण प्रेसर से भी दबाकर सीधा करते हैं।

(चित्र ८२)

(चित्र ८३)

इस काम के लिए दो विधियाँ हैं। एक का नाम 'सूखी विधि' और दूसरी का नाम 'भींगी विधि' है। ऊपर-वाली विधि 'सूखी विधि' है।
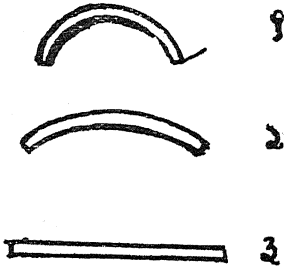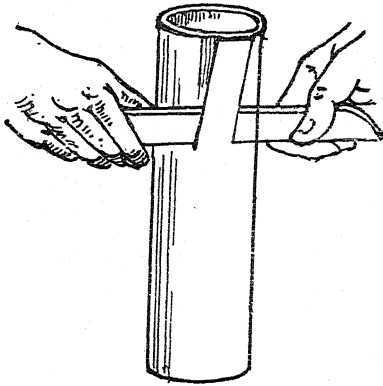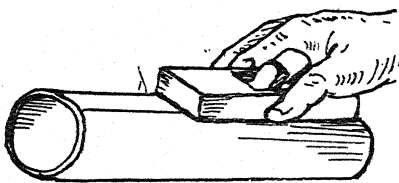
भींगी विधि—वस्तु बनाये-जानेवाले बाँस के सामान को पहले पानी में उबालते हैं। उबालते समय आधा प्रतिशत ($\frac{1}{2}$%) कास्टिक सोडा डालते हैं। इससे वस्तु बनाये जाने वाले सामान नरम हो जाते हैं। बाद में सामान को लोहे या बिजली के औजार से दबाकर सीधा कर लेते हैं। इस विधि में भी पहले की तरह ही आहिस्ता-आहिस्ता दबाकर सीधा करना पड़ता है, नहीं तो सामान के फट जाने की सम्भावना रहती है। सामान को कम-से-कम तीन बार सीधा करना चाहिए और उन्हें दो बार उबालना चाहिए। प्रेसर में दबाकर सीधा करने की विधि चित्र ८६ में दिखाई गई है। इस विधि से तैयार किये गये सामानों से विभिन्न प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ बनाई जाती हैं—जैसे, तस्तरी, बक्से आदि।

(चित्र ८४)

मनोनुकूल सीधा करने की क्रम-विधि

(१) बाँस को काट लेने के बाद और उससे छिलका हटा लेने के पहले उसे बारह घंटे तक पानी में डालकर रखना चाहिए।
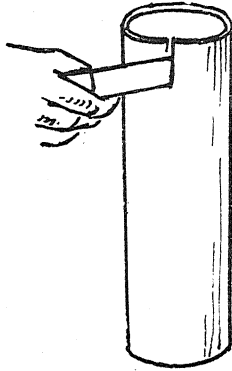
(२) नीचे से ऊपर तक, समभाव में, बाँस से छिलका हटाना चाहिए।

(३) बाद में रंदे से उसे अच्छी तरह रँदकर चिकना कर लेना उचित होता है।

(४) रँदाई करते समय मुटाई बराबर रहे, इसका ध्यान रखना पड़ता है।

(चित्र ८५)

(५) अच्छी रँदाई हो जाने के बाद उसे एक ओर से फाड़ना चाहिए।

(६) इसे आग पर गरम करते समय समभाव में धीरे-धीरे झुकाना पड़ता है।

(७) तत्पश्चात् धीरे-धीरे मनोनुकूल आकृति में सीधा करने का प्रयास जारी करना पड़ता है। एकाएक कभी नहीं मोड़ना चाहिए।
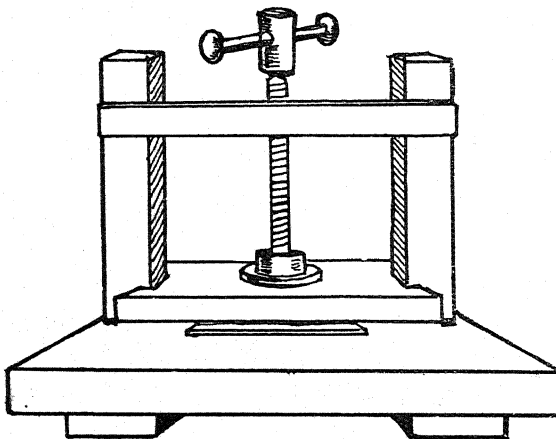
(चित्र ८६)

(८) पुनः पानी से बाँस को पोंछकर पूर्व की स्थिति में ही उसे कुछ देर पकड़े रहना पड़ता है, नहीं तो बाँस अपनी पूर्वावस्था में आ जाता है।

(९) बाद में, फिर उसे गरम करना पड़ता है और दबाकर मनोनुकूल आकृति में झुकाने का प्रयास करना पड़ता है।

(१०) इस तरह क्रमागत प्रयास जारी रखना चाहिए, जबतक बाँस पूर्णरूप से मनोनुकूल आकृति के रूप में न आ जाय।

(११) मनोनुकूल आकृति देने के लिए सबसे अच्छा तरीका यह है कि गरम लोहे के दबाव से काम लिया जाय।
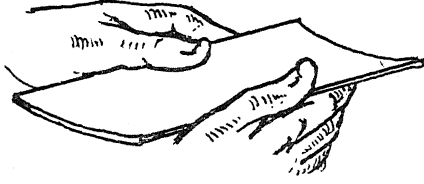
(चित्र ८७)

(१२) लोहे के दाब को लकड़ी के कोयले पर गरम करना चाहिए।

(१३) बाद में सैंड पेपर (Sand paper) से सामान को साफ करना पड़ता है। साफ करने के लिए पहले मोटे सैंड पेपर व्यवहृत करते हैं, बाद में महीन सैंड पेपर का उपयोग किया जाता है।

(१४) सबसे अन्त में रंग देने के लिए लाह या चपड़े का व्यवहार होता है। भींगी विधि में इस बात की पूर्ण रूप से आवश्यकता है कि बाँस को अच्छी तरह गरम पानी में उबाल लेने पर सामान को लोहे के दाब में लगभग बारह घंटे तक दबाये रखना जरूरी होता है। प्रेसर से दबाकर सीधा किया गया सामान चित्र ८७ में दिखाया गया है।

बाँस के सामानों को साटने के लिए लेई या लेप

इस काम के लिए तो अनेक प्रकार के लेप या लेई हैं; पर इन लेइयों या लेपों में यह दोष पाया गया है कि पानी लगने पर इनके द्वारा साटे गये सामान अलग हो जाते हैं। इसलिए, यहाँ ऐसे लेप या लेइयों के बनाने की विधि दी जाती है, जो किसी भी दशा में न धुल सकती है या न सटा सामान अलग हो सकता है। विधि इस प्रकार है—

(१) चिनियाबादाम में एक प्रकार का चिपचिपा तरल पदार्थ होता है, जो साटने के काम में उपयोगी होता है। पहले चिनियाबादाम के बीज को खूब महीन पीस लेते हैं और तब अलकली (Alkali) सॉल्युसन उसमें फेंटकर अच्छी तरह मिला देते हैं। अलकली सॉल्युसन पानी तथा चूना और तरल अममोनियम (Ammonium) को मिलाकर बनाते हैं। यह लेप बाँस या लकड़ी के सामानों को साटने में स्थायी होता है।

(२) पहले दूध का खोआ बना लेना चाहिए। जितना खोआ हो, उसके परिमाण के अनुसार उसमें ५% से १०% एसिड एसिलेटेड (Acid accelated) मिलाना चाहिए और तब उसे कपड़छान करना चाहिए। बाद, इसे धूप में सुखाकर पाउडर बना लेना चाहिए। सामानों के साटने के समय में इस पाउडर को उपयुक्त रीति

से बने अलकली सॉल्युसन में घुलाकर लेप बना लेते हैं, जो साटने के काम में वज्रलेप का काम देता है।

(३) मैदे को पहले खूब कड़ा सानकर अच्छी तरह गूँध लेते हैं। फिर, गूँधे हुए मैदे को पानी में डालकर उसपर हाथ फेरते हैं। हाथ फेरते फेरते गूँधे मैदे का जब उतना भाग रह जाय, जो हाथ फेरने पर भी उसमें से द्रव पदार्थ नहीं निकले, तब उसे पानी से बाहर निकाल लेते हैं। बाद, उसमें चूना और मधु मिलाकर तथा खूब फेंटकर लेई बना लेते हैं। यह लेई भी साटने के काम में दृढ होती है।

(४) युरिया (Urea) और मेलामिन (Melamine) इन दोनों को मिलाकर लेई बनाते हैं, जो जोड़ने या साटने के काम में आती है। उसे युरिया पेस्ट कहते हैं, जो पानी आदि पदार्थों के लगने पर भी नहीं छूटता है। यह लेई प्लास्टिक लेई की तरह मजबूत और टिकाऊ होती है।

(५) बोंद (Bond) को पानी में मिलाकर औंट देते हैं और लेई बना लेते हैं। यह युरिया पेस्ट के सदृश ही टिकाऊ होता है। बोंद सबमें उत्कृष्ट होता है। बोंद एक प्रकार का चूर्ण है, जो बाजार में मिलता है।

(६) अक्रिल मिनियल (Acryl Vinyl) बहुत हल्का होता है और जिसके लगाने पर भी चीजों का आन्तरिक रूप नजर आता (Transperent) है। इसका अधिक व्यवहार उसी कार्य में किया जाता है, जिसमें कलापूर्ण और बारीक काम किये गये सामानों को जोड़ना होता है। इससे कला की रेखाओं तथा रंगों में खराबी नहीं आ पाती।

(७) ब्लड पेस्ट (Blood paste) में अलकली सॉल्युसन मिलाकर जो लेप तैयार किया जाता है, वह भी साटने और जोड़ने के काम में अच्छा होता है।

(८) युरिया रेजिन (Urea reasien) ७०% और अरारोट (Starch) ५०% से ३०% तक—दोनों को मिलाना चाहिए। इसमें गूँधने का काम करना पड़ता है। इसकी अच्छी तरह गुँधाई होनी चाहिए। इसकी विधि इस प्रकार है—

(क) सर्वप्रथम अरारोट को १०% पानी में डालकर औंटते हैं। जब यह गाढ़ा हो जाता है, तब उसमें युरिया रेजिन मिलाकर गूँधते हैं। इस प्रकार की बनी लेई जोड़ने या साटने के काम में अच्छी होती है।

(ख) केवल युरिया रेजिन में पकड़ने की ताकत नहीं है, इसलिए युरिया रेजिन में एसिड (Hydrochloric) किंवा Ammonium phosphate NH 4 Po 3 ५% मिलाकर गरम करना चाहिए। इसमें गरमी ८० सेंटिग्रेड तक आनी चाहिए। उस तरीके से बनाई गई लेई में चिमड़ापन अच्छा आ जाता है और तब यह साटने के काम में लाई जाती है।

(६) सरेस से भी साटने का काम लिया जाता है। इसके प्रयोग की विधि इस प्रकार है—
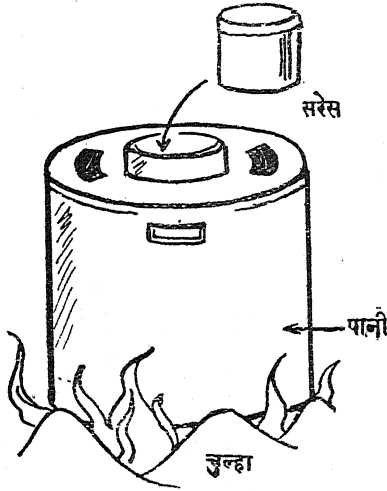
(चित्र ८८)

साधारणतः इस काम के लिए खास प्रकार का चूल्हा होता है, जो चित्र ८८ में दिखाया गया है। उसी चूल्हे पर किसी बड़े पात्र में पानी रखते हैं, जो चूल्हे की आँच से गरम होता रहता है। जिस पात्र में सरेस रखा रहता है, उस पात्र को पानीवाले बरतन के ऊपरी भाग में रख देते हैं, जिसका मुँह-वाला ऊपरी भाग पानी से ऊपर रहता है। सरेस अपने बरतन में, नीचे के गरम पानी की भाप से, गल जाता है और तरल हो जाता है।

प्रयोग-विधि—इसके बाद जहाँ जोड़ना हो, लकड़ी या बाँस के उस स्थान पर पानी में भींगा ब्रश चला देना पड़ता है, जिससे स्थान कुछ आर्द्र हो जाता है। इसके बाद सरेस को लगाकर लकड़ी को दबाना पड़ता है। दबाने से जो सरेस इधर-उधर निकल जाता है, उसे भींगे कपड़े से पोंछ देते हैं। इस विधि से सामान अच्छी तरह सट जाता है।

इस विधि में एक दोष है कि जब सटा हुआ सामान पानी में भींग जाता है, तब उसका जुड़ाव छूट आता है। इससे बचाने के लिए कारीगर को चाहिए कि जोड़े गये सामान पर ब्रश के द्वारा 'फॉरमलीन सॉल्युसन' (Formalin solution) को बाहर से लगा दे। ऐसा करने से जोड़े गये सामान पर पानी का जरा भी असर नहीं पड़ता है। फॉरमलीन व्यवहार करने के पहले बाँस में रहनेवाली चिकनाहट को हटा देना चाहिए, अन्यथा फॉरमलीन उसे पकड़ नहीं पाता। सरेस के द्वारा जोड़े गये सामान पर कड़ी धूप या किसी प्रकार के वाष्प की गरमी का कोई असर नहीं होता है। इसलिए इसके द्वारा की गई जुड़ाई में यह एक विशेष गुण भी है। इसका शत्रु एकमात्र पानी ही है।

(११) पाइरोक्सिलिन (Pyroxylin) और सेलुलेट का तरल मिश्रण भी जोड़ने के काम में आता है।

बाँस पर कागज चिपकाने की लेई

लेई बनाने के लिए, गेहूँ के आटे या मैदे में थोड़ा नमक मिलाकर पानी में डाल-कर फेंट देते हैं। बाद में मोटे कपड़े या टाट के टुकड़े में रखकर उसे तख्ते पर घिसते हैं। घिसते रहने से उससे जो तरल पदार्थ निकलता है, उसे लेकर धूप में अच्छी तरह सुखा लेते हैं। सूखी बुकनी को पानी में मिलाकर तथा पकाकर लेई तैयार कर लेते हैं। कागज साटने में इस लेई का उपयोग होता है। पर, इससे भी बढ़िया तरीका यह है कि उक्त रूप से बनी लेई को मिट्टी के बरतन में रख और उसका मुँह बन्द कर जमीन के अन्दर गाड़कर मिट्टी से ही ढक दें। दो वर्ष बाद उस लेई को जमीन से निकालें। अब आप देखेंगे कि उसमें कीड़े पड़ गये हैं। बाद, कीड़ों को हटा देने पर उसके नीचे सफेद अंश मिलेगा। यह सफेद लेईवाला अंश साटने के काम में अत्यन्त उपयोगी होता है।

बाहर भेजते समय बाँस के सामानों को फँफूदी (Mould) से बचाना

वर्षा ऋतु में, बाँस में फँफूदी लग जाती है। इससे बाँस का बहुत नुकसान होता है। बाँस जब शीतोष्ण कटिबन्ध-प्रदेश में भेजा जाता है, तब रास्ते में भी उसमें फँफूदी लग जाती है। बाँस की इस बीमारी के कारण उसके व्यापार में बहुत बड़ा धक्का पहुँचता है। इसलिए, व्यापारियों को बाँस के इस रोग से बचने का तरीका जानना आवश्यक हो जाता है।

बाँस को रँगकर—चूँकि, बाँस के सामान में जल को ग्रहण करने का गुण है, इसलिए उसपर जल के प्रभाव से कई तरह की फँफूदियाँ निकल आती हैं। इसलिए अगर उन सामानों पर ऐसे पदार्थ का लेप लगा दें, जहाँ से होकर सामानों के भीतर पानी प्रवेश करने का भय है, तो पानी का उसपर कोई असर नहीं पड़ सकता है। ऐसा लेप तैयार सामान पर लगाना चाहिए, बिलकुल कच्चे माल पर नहीं।

बाँस की सतह पर शायद ही कभी फँफूदी लगती है, इसलिए अधिकतर भीतरी भाग को ही रँगा जाता है।

सूखा रखकर—बाँस और उससे बनाये गये सामान में लगनेवाली अनेक प्रकार की फँफूदियों का कारण हवा की आर्द्रता है। उदाहरण के लिए, १०० प्रतिशत आर्द्रता में उन्हें रहने से ३ दिनों के पश्चात् उनमें फँफूदी लगती है। उससे अधिक समय व्यतीत होने पर और अधिक मात्रा में फँफूदी लगती है। इसके विपरीत ८० प्रतिशत से कम आर्द्र हवा में रखने से बाँस के सामानों में ४० से भी अधिक दिनों तक में भी फँफूदी नहीं लगती। ८० प्रतिशत आर्द्रता तक शायद ही कभी फँफूदी लगती है।

ऊपर के परीक्षणों से विदित होता हैं कि फँफूदी से बचाने के लिए बाँस या उससे बने सामान को सूखे बक्से अथवा सूखे कमरे में रखते हैं। उसके बाद बक्स तथा कमरे को चारों ओर से ऐसा बन्द कर देते हैं कि बाहरी हवा उसमें प्रवेश नहीं कर सके। साथ ही

कास्टिक या एडसोल के थैलों को रख देते हैं, जिसमें हवा की आर्द्रता खिंच आती है। सामान अगर थोड़ा-सा रहे, तो उसे पाराफिन कागज से लपेटकर उसपर आर्द्रता खींच लेनेवाले रासायनिक पदार्थ रख देते हैं।

स्टेराइलीजरों द्वारा—ऐसे अनेक रासायनिक पदार्थ हैं, जिनके प्रयोग से फँफूदी नहीं लगती। इनमें निम्नलिखित रसायनों के उपयोग मुख्य हैं—

(क) तारपिन और सरसों के तेल, तारपिन तेल, तारपिन सेलिजिल एसिड या औंटा हुआ सरसों का तेल लगाना।

(ख) बोरिक एसिड सॉल्युशन के साथ उबालना।

(ग) पाराफार्म पाउडर के पैकेटों को निम्नांकित रासायनिक पदार्थों के साथ रखना—एक प्रतिशत सरसों तेल तारपिन तेल में मिलाकर और पाँच प्रतिशत 'मैरिला नेकिनैनसिस' तेल में मिलाना।

द्रष्टव्य—यद्यपि उबाला हुआ सरसों तेल बहुत ही लाभदायक होता है, तथापि उसमें बड़ा अवगुण यह है कि उसके कारण बाँस में पीलापन आ जाता है। इसलिए, उसे व्यवहार में नहीं लाया जा सकता।

बाँस के सामान को सुखाना

१. **प्राकृतिक ढंग से**—बाँस का पहला रंग गहरा हरा रहता है। इस कारण उनके तन्तुओं की सुरक्षा की दृष्टि से उन्हें सुखा लेना आसान है। टुकड़े-टुकड़े किये गये बाँसों को सुखाने में १० से २० दिन लगते हैं और सम्पूर्ण बाँस को सूखने में तीन से चार महीने तक का समय लगता है। इस अवधि में अगर बाँस ठीक से सुखाये जायँ, तो उनका रंग पहले हल्का हरा और तब हल्का पीलापन लिये भूरा हो जायगा। अगर इसी बीच उनमें आर्द्रता (नमी) लग गई, तो उनमें फँफूदी पकड़ लेगी और उनका रंग भूरा अथवा काला-भूरा हो जायगा और उनकी चमक जाती रहेगी।

२. **बनावटी ढंग से**—साधारणतः गरमी पहुँचाकर बाँस को सुखाया जाता है। ऊँचे तापमान और अधिक आर्द्र वातावरण में सुखाने पर उसका रंग बदल जाता है और चमक भी खत्म हो जाती है। उत्तम तापमान ४६ सेंटीग्रेड और अधिक आर्द्रता ५५ प्रतिशत से भी कम है। हवा पहुँचाकर, जिसमें हवा तेजी के साथ सामान पर से होकर गुजरे, सुखाना अच्छा होता है। अगर तापमान इससे अधिक होगा, तो बाँस का रंग बदल जायगा। इस बात की ओर बराबर सावधानी रखनी पड़ती है।

बड़े गोल बाँस को, उनके बने सामान से ज्यादा, धीरे-धीरे सुखाना पड़ता है। लेकिन फँफूदी, ऊपरी सतह से अधिक बाँस के भीतरी भाग में लगती है, इसलिए काटने के तुरत बाद अगर बाँस के सामान सुखा नहीं लिये जाते हैं, तो उन्हें बड़े बाँस की ही हालत में रख देना चाहिए और उसी हालत में सूख जाने पर उनके टुकड़े बनाने चाहिए।

तृतीय भाग

बाँस की वस्तुओं की बुनाई

पूर्व में बाँस के जिन कार्यों के सम्बन्ध में बताया गया है, उनमें बाँस उपजाना, बाँसों को सुरक्षित रखना और बाँसों के सामान तैयार करने से पूर्व उसकी मूलभूत विधियों का ज्ञान प्राप्त करना आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इस भाग में यथावर्णित सामानों से बननेवाली वस्तुओं के सम्बन्ध में कहा जायगा।

बाँस की बनी वस्तुएँ चूँकि अधिक सस्ती होती हैं, इस कारण उनका आकार और रंग केवल व्यावहारिक ही नहीं हों, बल्कि कलात्मक भी हों, इस बात पर भी कारीगर को पूरा ध्यान देना चाहिए।

बाँस से बननेवाली वस्तुओं को निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—(१) व्यवहार में आनेवाली वस्तुएँ, (२) कलात्मक वस्तुएँ और (३) खिलौने।

उपर्युक्त वस्तुएँ तीन प्रकार के बाँसों से बनती हैं—

१. पूरे-के-पूरे गोल बाँस की बनी।

२. सूखे चीरे हुए बाँस की बनी।

३. चीरे तथा कमचियों से बनी।
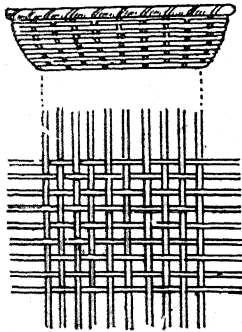
लेकिन, बाँस की वस्तुओं में, पिंजड़े, सूप, डगरे, टोकरियाँ आदि सबसे अधिक बनते हैं। हमारे देश में गृहस्थ का एक भी ऐसा घर नहीं है, जहाँ बाँस की बनी इस तरह की वस्तुएँ व्यवहार में न आती हों।

बाँस की अनेक प्रकार की टोकरियाँ तथा पिंजड़े होते हैं। उनकी बनावट में भी बहुत-से भाग एक तरह के होते हैं। चित्र ८६ और ६० में प्रदर्शित विभिन्न प्रकार से बुने सामानों के एक ही प्रकार के बने हिस्से हैं।

(चित्र ८६)

(चित्र ९०)

(चित्र ९१)
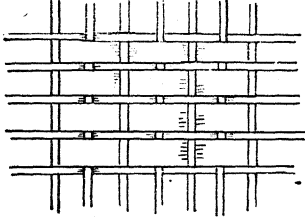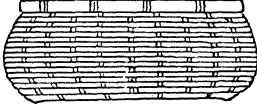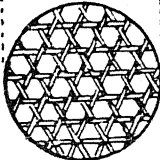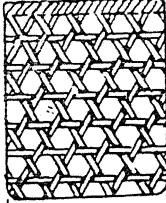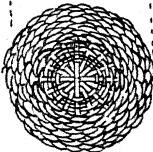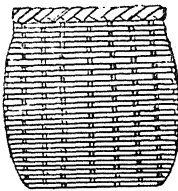
(चित्र ९२)

पिंजड़े और टोकरियों की बनावट—

१. पेंदा।
२. पेंदे से कोने तक का भाग।
३. पार्श्व-भाग।
४. मुँह।

इनमें निम्नलिखित प्रकार के सामान लगते हैं—

१. पेंदे के लिए सामान।
२. गोलाकार बनाने के लिए सामान।
३. किनारे के लिए सामान।
४. मुँह के लिए सामान।
५. पेंदे से मुँह तक के लिए फ्रेम के सामान।

आगे के पन्नों में इन भागों की लम्बाई, चौड़ाई आदि पर विचार किया जायगा। सामान को तैयार करते समय यह खयाल रखना चाहिए कि उनसे बनाई जानेवाली वस्तुओं और उसके आकार में अनुकूलता रहे। लेकिन बाँस जिस तरह का हो, उसके अनुसार आकार में परिवर्त्तन भी होना चाहिए। बुनने की विधि को निम्नांकित श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—

(१) पेंदा बनाने की विधि और उसकी बुनावट।

(२) गोलाकार बुनने की विधि और उसकी बुनावट।

(३) पार्श्व भाग बुनने की विधि और उसकी बुनाबट।

(४) मुँह बुनने की विधि और उसके छोर की बुनाबट।

टोकरी तथा पिंजड़े की बुनावट को भी कई श्रेणियों में बाँट सकते हैं—

(१) पेंदे तथा अगल-बगल की बुनावट में कोई भेद नहीं है।

(२) पेंदे तथा किनारे की एक ओर की बुनावट के लिए एक ही तरीका है।

(३) पेंदे तथा किनारे की दूसरी ओर की बुनावट के लिए भिन्न तरीका है।

सामान की बनावट का तरीका देखकर ही बाँस, सामान, बुनावट आदि के ढंगों को समझ लेने पर तुरत वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं।

पेंदे की बुनाई—पेंदे की बुनाई के विभिन्न तरीके चित्र ६१ और ६२ में प्रदर्शित किये गये हैं। इनमें पिंजड़ा बुनाई, चौखुटा बुनाई, चौखुटा पेंदा बुनाई, मधुमक्खी के छत्ते की तरह (षट्कोण) बुनाई, फूल की पंखुड़ियों के सदृश बुनाई आदि कई प्रकार की बुनाइयाँ हैं। आगे चलकर यह समझ में आयगा कि ये बुनाइयाँ कितनी महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि इन्हीं के कारण वस्तुओं के नाम चौखुटा पेंदा पिंजड़ा, मधुमक्खी पिंजड़ा, फूल पेंदा पिंजड़ा आदि रखे जाते हैं। आगे के पृष्ठों में इन बुनाइयों की विधियाँ बताई गई हैं। इन्हीं विधियों द्वारा बाँस की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और कलात्मक वस्तुएँ तैयार की जाती हैं।

पेंदे की बुनाई की अन्य विधियाँ भी बताई गई हैं। उनके नाम फाँसदार मधुकोष (Insert honey comb), जूट पत्ता (Flex leaf), जालीदार (Net work) आदि हैं। लेकिन ये विधियाँ समतल वस्तुओं की बुनाई के लिए हैं। हमारे यहाँ इस तरह के नामकरणों की अभी कमी है।

गोलाकार बनाना—इस कार्य में पेंदे से पार्श्व तक की बुनाई होती है। यह बुनाई नौसिखुओं के लिए कठिन होती है। फ्रेमवाले सामान को टेढ़ा करना पड़ता है, साथ ही उसे बुनना भी होता है। इसलिए ठीक से गोलाकार बनाने के लिए अनुभव प्राप्त करना पड़ता है।

गोलाकार बनाने की प्रविधि अगले अध्याय में बताई जायगी। इतना जान लेना आवश्यक है कि बुनने के पहले ही कमचियों को मोड़ दें। और, ऐसा मोड़ना चाहिए, जिससे कहीं पर टूटे नहीं। सामान मोड़ने के कुछ तरीके नीचे दिये जाते हैं—

(क) कमचियों को अँगूठे और तर्जनी के बीच से मोड़ना चाहिए। पार्श्व की बुनाई में फ्रेम की कमचियों को, जिसे गोलाकार बुनना है, इसी प्रकार मोड़ते हैं। कमचियों को भिंगो लेने से मोड़ाई और बुनाई अधिक आसान हो जाती हैं।

(ख) पेंदे की बुनाई पूरी करके उसे धरती पर रख देना चाहिए। जिस भाग को टेढ़ा करना है, उस पर पैर का अँगूठा रख देना चाहिए और हाथ से फ्रेम की कमचियों को मोड़ना चाहिए। साथ ही उसी समय मोड़ को, दूसरी ओर, दूसरे हाथ से, दबाव देना चाहिए।

(ग) यह विधि चौखुटा बुनाई के काम में आती है। पेंदे की बुनाई खत्म हो जाने पर, बुने सामान के बराबर का ही एक काठ का तख्ता रख देना चाहिए और पैर से उस तख्ते पर दबाव डालते हुए फ्रेम को मोड़ना चाहिए।

(घ) गोलाकार बुनाई में खास प्रकार की कमचियों की जरूरत पड़ती है। उन कमचियों को मजबूत होना चाहिए। फ्रेमवाली कमचियों को मोड़ देते हैं और

तब लम्बी डोरीदार बुनाईवाली कमचियों से उसे बुनते हैं। इसलिए फ्रेम की कमचियों से बुनाई की कमचियाँ अधिक मजबूत होनी चाहिए।

(ङ) अगर गोलाकार भाग तीन-चार बार बुना जा चुका है और फ्रेम उचित ढंग से नहीं मुड़ा है, तो समझना चाहिए कि बुनाई बहुत ढीली रह गई है। इसलिए बुनाई की कमचियों को और अधिक कस देना चाहिए। इसके साथ ही फ्रेम को भी मोड़ देना चाहिए। ऐसी अवस्था में फ्रेम ठीक से मुड़ जाता है।

(च) फ्रेमवाली कमचियों को समकोण बनाने के लिए गरम लोहे का प्रयोग किया जाता है। इसकी प्रक्रिया पहले बताई जा चुकी है।

(छ) कभी-कभी पेंदे में अतिरिक्त कमचियाँ भी घुसेड़नी पड़ती हैं। बुनाई होने पर फ्रेम की कमचियाँ मुड़ जाती हैं, जिससे कभी-कभी पेंदा भी टेढ़ा हो जाता है। इसलिए अगर चौरस पेंदे की जरूरत हो, तो उत्तम यह है कि अलग से मजबूत कमचियों को पेंदे में घुसेड़ दें। ये घुसेड़ी गई कमचियों को पेंदे के व्यास के रूप में, एक छोर से दूसरे छोर तक, रखना चाहिए।

ऊपर दिये गये विभिन्न तरीके गोलाकार बुनाई में व्यवहृत होते हैं। पेंदे तथा पार्श्व की बुनाईवाली कमचियों को बदल देने से गोलाकार बुनाई ठीक से नहीं हो सकती। बुनाई की कमचियाँ भी नहीं बदली जानी चाहिए। ये बातें आगे के पृष्ठों में बताई गई हैं।

पार्श्व की बुनाई—पार्श्व भाग की बुनाई की कई विधियाँ हैं। फ्रेम तथा बुनाई कीं विधि के समान ही चौखुटा बुनाई, जालीदार बुनाई, मधुकोष बुनाई अथवा फाँसदार बुनाई की जाती है।

साधारण टोकरियों अथवा पिंजड़ों के बुनने में चौखुटा बुनाई, जालीदार बुनाई और मधुकोष बुनाई व्यवहार में आती है। कभी-कभी छोटी-छोटी चीरी हुई कमचियाँ घुसेड़नी पड़ती हैं, इसे अतिरिक्त बुनाई कहते हैं। अतिरिक्त कमचियाँ कुछ वस्तुओं में एक ही आकार की होती हैं।
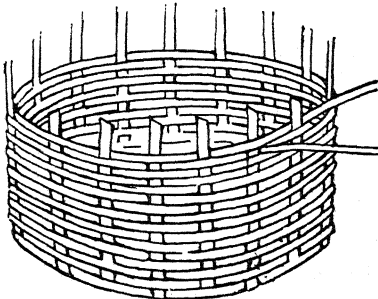
(चित्र ६३)

अगर गलती से पार्श्व की बुनाई करते समय फ्रेम की कमचियाँ टूट जायँ, तो किनारे को नुकीला बनाकर दूसरी कमची को वहाँ लगाकर बुनते जाना चाहिए। बुनाई की कमचियों को जोड़ने के लिए नई और समाप्त होने-वाली कमची को मिलाकर

बुनना जारी रखना चाहिए। लेकिन, जिस स्थान पर दोनों मिलाई जायँ, उस स्थान पर जाल के रूप में बनाकर फँसा दी जाती हैं, अन्यथा जोड़ पर से पिंजड़ा ढीला हो जाता है। इसके लिए चित्र ६३ देखिए।

(१) **पिंजड़े की बुनाई के लिए अतिरिक्त जोड़**—फ्रेम की बुनाई के लिए कमचियाँ विषम संख्या में हों या सम संख्या में, अन्त में वे सम संख्या की हो ही जाती हैं; क्योंकि गोलाई की बुनाई करने पर फ्रेम में सामान दुगुने हो जाते हैं।

फ्रेम की कमचियाँ सम संख्या में रहने पर पिंजड़े की बुनाई संभव नहीं होती; क्योंकि इस बुनाई में बुनने की कमची को फ्रेम की एक कमची के आगे और दूसरी के पीछे लगाना पड़ता है। इसलिए जब फ्रेम की कमचियाँ सम संख्या में रहती हैं, तब बुनाई की कमचियाँ सर्वदा फ्रेम की कमचियों की एक ही ओर पड़ेगी और पिंजड़ा नहीं बुना जा सकता है।

चित्र ६४ में बुनाई के लिए दो प्रकार की कमचियाँ एक ही साथ दिखाई गई हैं। बुनाई की इस विधि को सादा बुनाई कहते हैं।

अगर बुनाई की कमची एक ही हो, तो बुनाई की विधि बहुत आसान हो जाती है नीचे कुछ विधियाँ दी जाती हैं—
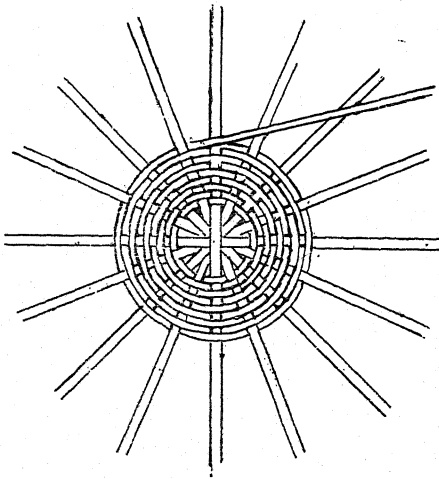
(चित्र ६४)

एक बार बुन लेने के बाद फिर वहीं पर पहुँचना पड़ता है, जहाँ से बुनना शुरू किया गया था। दूसरी बार की बुनाई में फ्रेम-बुनाई का काम दो-दो कमचियों को एक साथ लेकर, शुरू करते हैं और दोनों बुने हुए भाग बुनावट द्वारा पृथक् कर दिये जाते हैं। लेकिन, यह बुनावट देखने में अच्छी नहीं होती, सलिए -ऐसे भागों को इस तरह से बुनते हैं, जो दिखाई नहीं पड़ते, जैसे पेंदा। इसे भी चित्र ६४ में अच्छी तरह देखा जा सकता है।

(२) **फ्रेम बनाने की कमचियों को विषम संख्या का बनाना**—प्रथम विधि में चतुष्कोण या चतुष्कोण जालीदार बुनाई के पेंदे में, जैसी विधि चित्र ६५ के ऊपरी भाग में दिखाई गई है, पहले फ्रेम बुनने की एक कमची घुसेड़ देते हैं और फ्रेम बुननेवाली कमची की संख्या विषम रख लेते हैं। उसके बाद एक ही बुनाई के सामान से वस्तु बुन जाती है।
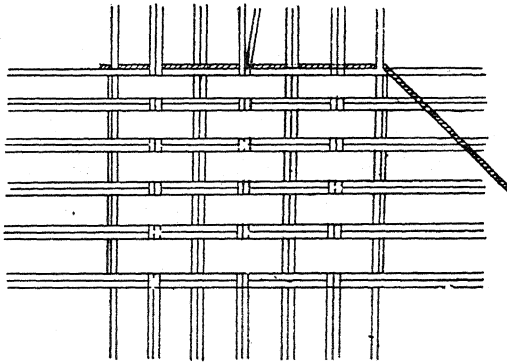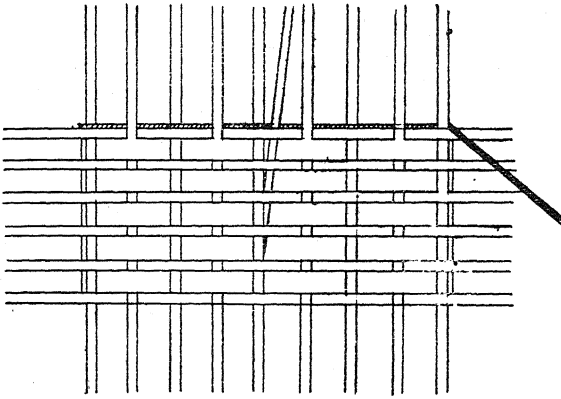
(चित्र ६५)

दूसरी विधि में जब फ्रेम बुनने के योग्य कमचियाँ एक दूसरे के समानान्तर हों, तो फ्रेम बुननेवाली एक कमची को दो भागों में बाँट देना पड़ता है। इससे फ्रेम बुनने की कमचियाँ विषम संख्या में हो जाती हैं। इसे चित्र ६५ के निचले भाग में देखा जा सकता है।

तीसरी विधि में अगर फ्रेम बुनने की सामग्री मजबूत हो, तो उसे दो भागों में बाँट देना अच्छा है। इससे फ्रेम बुनने की सामग्री विषम संख्या में हो जाती है।

चतुष्कोण पेंदा-बुनाई का एक उदाहरण दूसरे स्थान में बताया गया है। फ्रेम बनने की कमचियों के छोर को दोनों ओर बढ़ा देते हैं और तब बुनाई की कमचियाँ समानान्तर कर दी जाती हैं। उसके बाद बढ़े हुए फ्रेम के सामान को बुना जाता है।

चौथी विधि में पेंदे की बुनाई अगर जालीदार बुनाई रही, तो की कमचियों को, जिनसे पेंदा बुना गया है, सतफेर (सेवुन टर्न) कहते हैं। वे कमचियाँ फ्रेम की कमचियों तक बढ़ा दी जाती हैं। उसके बाद फ्रेम की कमचियाँ विषम संख्यावाली बना दी जाती हैं।

पिंजड़े की बुनाई का काम, जिसके विषय में बताया जा चुका है, साधारण पिंजड़ों और टोकरियों के लिए बहुतायत रूप में व्यवहृत होता है। कभी-कभी यह बुनाई कलात्मक वस्तुओं के निर्माण में भी व्यवहृत होती है।
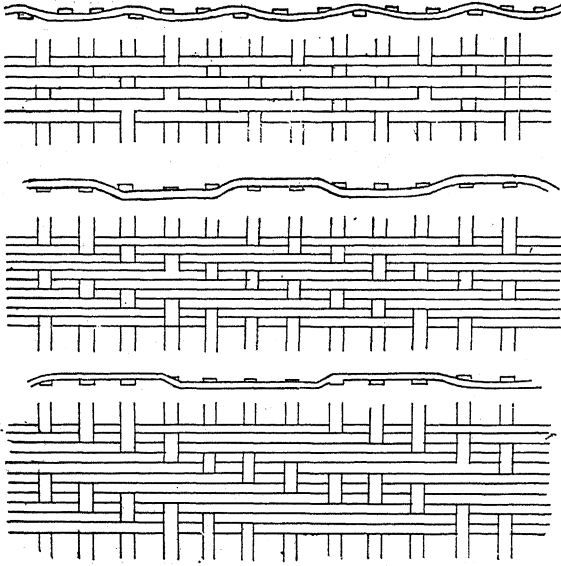
(चित्र ६६)

कलात्मक वस्तुओं की पार्श्व-बुनाई—इस तरह की कलात्मक वस्तुओं के पार्श्व की बुनाई भी कई प्रकार से की जाती है। बहुतायत रूप में व्यवहृत होनेवाली विधियाँ ये हैं—

(१) **एक और दो बुनाई**—इस बुनाई के लिए नियमतः अधिक चौड़ी कमचियाँ व्यवहृत होती हैं। इसे चित्र ६६ में प्रदर्शित किया गया है। बुनाई की कमचियों को एक फ्रेमवाली कमची के अन्दर और दूसरी दो को बाहर बुनते हैं। इसलिए इसका नाम एक और दो बुनाई है।

इसी के समान दो और तीन बुनाई, चित्र ६६ के ऊपरी भाग में तथा तीन और चार बुनाई उसी चित्र के निचले भाग में प्रदर्शित है। कभी-कभी इन दोनों को मिलाकर एक तीसरी ही विधि व्यवहृत होती है।

(२) **उलटी बुनाई**—एक और दो बुनाई के विपरीत बुनाई को उल्टी बुनाई कहते हैं।

(३) **धारावाहिक बुनाई**—चित्र ६६ में प्रदर्शित रीति से बुनी गई वस्तुएँ जल की धारा की जैसी मालूम पड़ती हैं, मानों प्रवाहित हो रही हैं, इसलिए इसका नाम धारा-वाहिक बुनाई रखा गया है।

(४) **रस्सानुमा बुनाई**—बुनाई की यह विधि फूलदान बनाने में व्यवहृत होती है। यह तीन बुनाईवाली कमचियों से बुनी जाती है। यह विधि चित्र ६७ के ऊपरी भाग में प्रदर्शित की गई है। तीन बुनाई की कमचियों में सबसे बाईं तरफवाली कमची दो फ्रेम बुनाई की कमचियों तथा दो बुनाई की कमचियों के ऊपर होकर जाती है और तब फिर फ्रेमवाली एक कमची के पीछे होकर वक्र रूप में आती है। इसे चित्र ६७ के ऊपरी (क) अंश में देखना चाहिए।

(५) **चार बुनाई या चार रस्सानुमा बुनाई**—यह विधि रस्सा-बुनाई के सदृश ही है। इसमें एक मात्र भिन्नता यह है कि इसमें

(चित्र ९९)
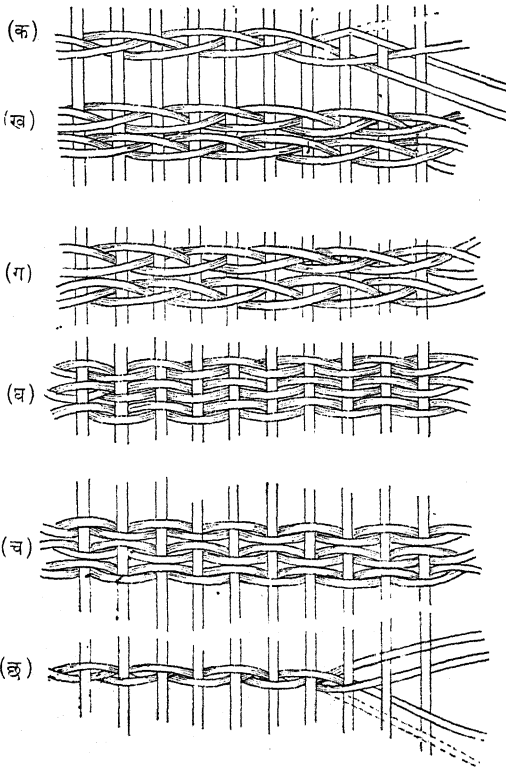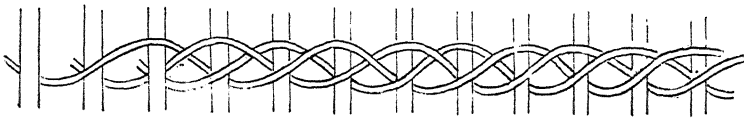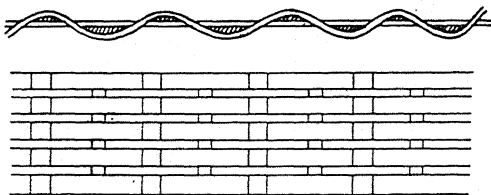
यह चित्र ९९ के निचले भाग (छ) में प्रदर्शित है। चारों बुनाई की कमचियों में सबसे बाईं ओरवाली कमची अन्य तीन कमचियों तथा तीन फ्रेमवाली कमचियों के ऊपर होकर जाती है और उसके बाद फ्रेमवाली एक कमची दूसरी ओर से वक्र रूप में आती है। तीन रस्सानुमा बुनाई में फ्रेमवाली कमची को जोड़ना कठिन होता है।

(६) **तरंगनुमा जालीदार बुनाई**—यह बुनाई फूल रखनेवाली चँगेली की बुनाई के काम में आती है। बुनने की कमचियाँ थोड़ी अधिक चौड़ी रहती हैं और इसकी बुनावट जलतरंग-सी दिखाई पड़ती है। फ्रेम खड़ा करने-वाली कमचियाँ बुनाईवाली

(चित्र १००)

(चित्र १०१)

कमचियों से छिप जाती हैं। इसे चित्र १०० में दिखाया गया है।

(७) **देवदार-पत्राकार बुनाई**—इसकी बुनाई तरंग-नुमा बुनाई के समान होती है और जब फ्रेमवाली कमचियाँ सम संख्या में होती हैं, तब यह
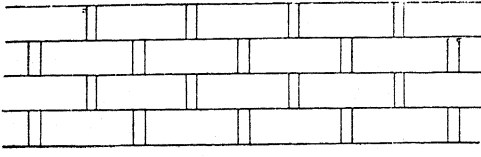
(चित्र १०२)
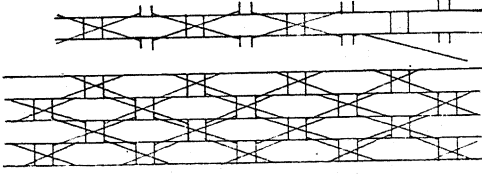
(चित्र १०३)
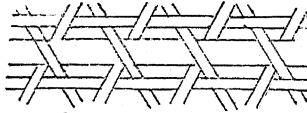
(चित्र १०४)
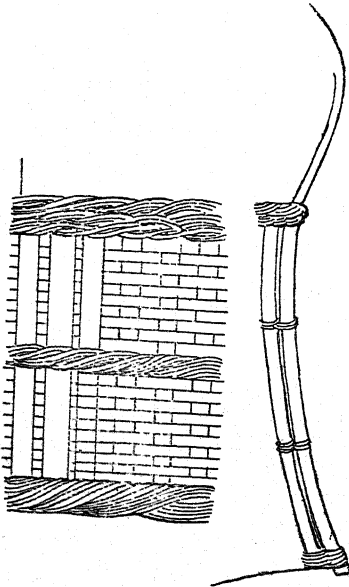
(चित्र १०५)

विधि व्यवहार में लाई जाती है। यह बुनाई चित्र ६६ के 'ख' वाले अंश में देखी जा सकती है। यह देवदार वृक्ष के पत्रों-सी दिखाई पड़ती है, इसलिए इस बुनाई को देवदार-पत्राकार बुनाई कहते हैं।

(८-६) **वापसी तरंगनुमा बुनाई और वापसी देवदार-पत्राकार बुनाई**—उपर्युक्त प्रसंग ६ तथा ७ में वर्णित विधियों के समान ही इनकी बुनाई भी होती है; लेकिन ६ तथा ७ वाली वस्तु के भीतर की बुनाई ८, ६ वाली विधि में वस्तु के ऊपरी भाग की बुनाई होती है। इन्हें चित्र ६६ के 'ग' और 'घ' अंशों से भली भाँति समझना चाहिए।

(१०) **केंचुलनुमा बुनाई**—धारावाहिक बुनाई के समान ही यह बुनाई भी होती है, लेकिन इसके फ्रेमवाली कमचियाँ एक के बाद दूसरी मोटी और पतली होती हैं। चित्र १०१ में इसे देखना चाहिए।

(११) **ईंटनुमा बुनाई**—इसकी बुनाई भी उक्त केंचुलनुमा ढंग की होती है, लेकिन इसमें फ्रेमवाली कमचियाँ पतली और बुनाई की कमचियाँ चौड़ी होती हैं। इसकी प्रक्रिया चित्र १०२ में देखिए।

(१२) **कर्णरेखावत् बुनाई**—इस बुनाई के लिए कमचियाँ
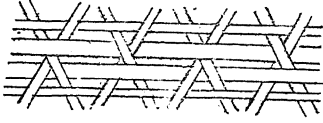
(चित्र १०६)
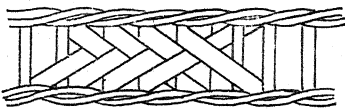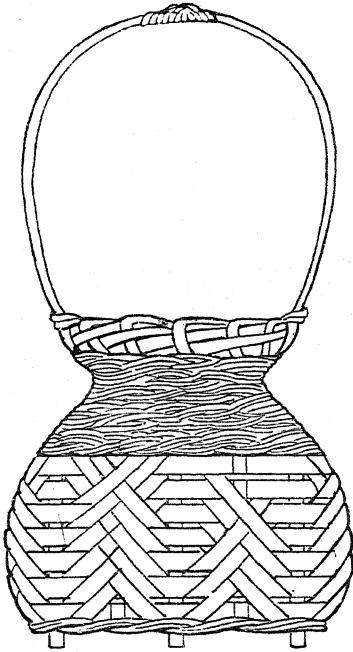
(चित्र १०७)

चौड़ी और महीन—दोनों होती हैं। इसे चित्र १०३ में दिखाया गया है। केवल महीन और गोल कमचियाँ व्यवहृत करने पर यह बुनाई नहीं चलेगी।

(१३) **अनियमित बुनाई**—इस बुनाई में सर्वप्रथम मधु-कोष बुनाई करनी पड़ती है और तब चौड़ी-पतली सभी प्रकार की कमचियाँ लगाई जाती हैं। देखिए चित्र १०४। यह बुनाई बहुत आसान दिखाई पड़ती है, लेकिन चतुर कारीगर ही इसे बुन सकते हैं।

(१४) **स्तूपाकार फाँस-नुमा बुनाई**—सिरे पर और पेंदे के निकट तीन-चार बार रस्सानुमा बुनाई के बाद बीच में चौड़ी और पतली कमचियाँ लगा दी जाती हैं। इसके बाद नीचे और ऊपर पुनः रस्सानुमा बुनाई की जाती है। इस बुनाई के लिए चित्र १०५ देखना चाहिए।

(१५) **टिकठीनुमा बुनाई**—इसमें सर्वप्रथम पेंदे की फूल-दार बुनाई होती है। उसके बाद चौड़ी और पतली कमचियाँ लगाई जाती हैं। कमचियाँ तिरछी, लम्बी, खड़ी तथा पड़ी-सभी प्रकार से एक में दूसरी फँसाई जाती है। इसे चित्र १०६ में दिखाया गया है।

इस बुनाई की और भी
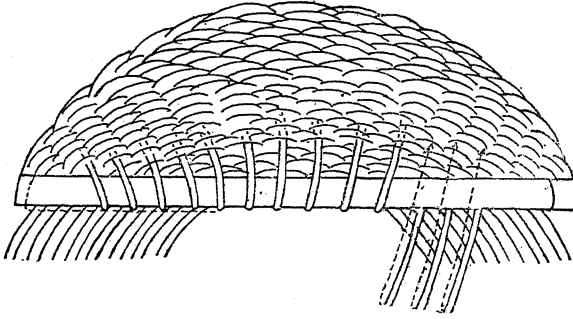
(चित्र १०८)
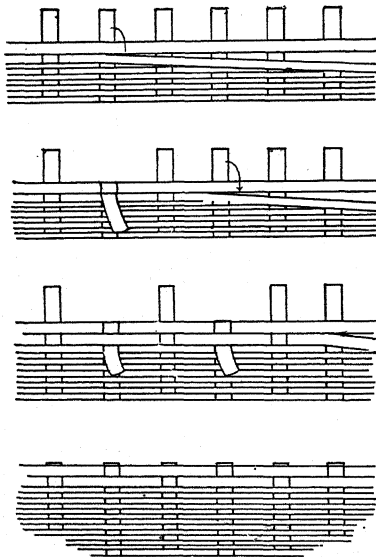
(चित्र १०९)

विधियाँ हैं; लेकिन कलात्मक ढंग की चीजें कारीगर स्वयं अपने अनुभव और बुद्धि से बनाता है। कर्मचियों के सुन्दर रहने और सुन्दर प्रकार की बुनाई होने से वस्तु सुन्दर बनती है। कठिन बुनाई होने का यह अर्थ नहीं होता है कि वह सुन्दर भी हो। सुदत्त कारीगर अपने अनुभव और ज्ञान के सहारे नई-नई कलात्मक बुनाई का स्वयं आविष्कार कर लेते हैं।

किनारे की अन्तिम बुनाई–डलियों, चँगेलियों टोकरियों आदि के बनाने में उसके किनारे के भाग की बुनाई उनका अन्तिम कार्य होता है। इसी की बनावट पर वस्तुओं की मजबूती तथा सुन्दरता निर्भर करती है। अधिकांशतः इसी भाग के नष्ट होने से वस्तुओं का नष्ट होना शुरू होता है।

इस किनारे के भाग को पूरा करने की अनेक विधियाँ हैं; लेकिन इस काम में, गुम्फन-बुनाई-वाला किनारा तथा
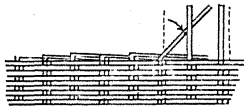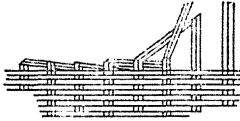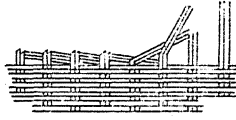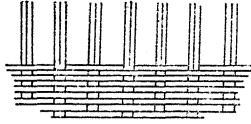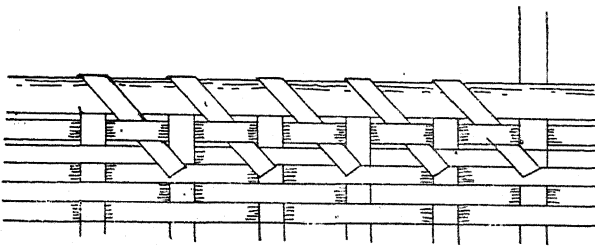
घुमावदार बुनाईवाला किनारा अधिकतर व्यवहृत होते हैं। इसे चित्र १०७ में देखना चाहिए। किनारा बनाते समय पार्श्व की बुनाईवाली कमचियों को एक दूसरी कमचियों के साथ फँसा देना पड़ता है।

(चित्र ११०)

फ्रेमवाली कमचियों को मजबूत ढंग से लगाने के कई तरीके हैं। लेकिन कौन-सी विधि किस वस्तु के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है, इसका निश्चय करना बहुत कठिन है। यह सुदक्ष कारीगर के अनुभव और ज्ञान के आधार पर ही अवलम्बित है।

(चित्र १११)

फ्रेमवाली कमचियों को लगाने और वस्तुओं के ऊपरी भाग को पूरा करने की कुछ विधियाँ नीचे दी जाती हैं—

(१) फ्रेमवाली कमचियों को लगाना—किनारे की बुनाई के अन्तिम कार्य को समाप्त-क्रिया या पूर्ण-

क्रिया कहते हैं। इसकी प्रथम विधि चित्र १०८ की कठौतीनुमा टोकरी में दिखाई गई है।
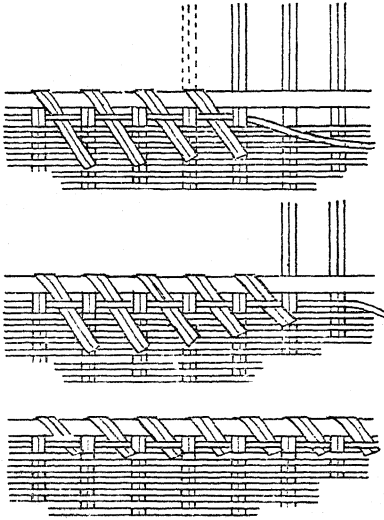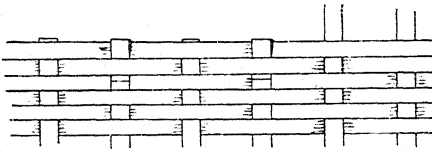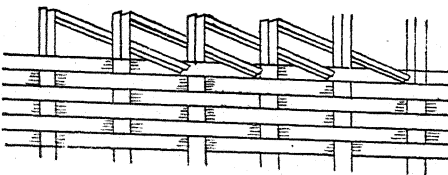
इसकी दूसरी विधि चित्र १०९ में प्रदर्शित चतुष्कोण बुनाई के काम में आती है। चतुष्कोण पेंदे, फूल पेंदे और जालीदार पेंदे में भी यह विधि व्यवहृत होती है।

इसकी तीसरी विधि चित्र ११० में दिखाई गई है, जो जालीनुमा चतुष्कोण, फूलदार एवं साधारण जालीदार और चतुष्कोण पेंदे की होती है। ऐसी वस्तुओं के किनारे की बुनाई बहुत-कुछ 'वेणी-गुम्फन-बुनाई' तथा 'घुमावदार बुनाई'-वाली विधि की प्रणाली से ही बुनी जाती है, जिसकी बुनावट चित्र ११० के निचले भागों में प्रदर्शित है।

(चित्र ११२)

फ्रेमवाली कमचियों को मोड़ने की भी विधियाँ हैं। इनमें से एक विधि चित्र १११ में दिखाई गई है। यह भीतरी मोड़ है। बाहरी मोड़ चित्र ११२ के निचले भाग में प्रदर्शित है। पहली विधि छोटी-छोटी चीजों और दूसरी विधि बड़ी-बड़ी वस्तुओं के लिए उपयुक्त है।

(चित्र ११३)

(चित्र ११४)

फ्रेमवाली कमचियों को मोड़ते समय उनकी ऊँचाई पर ध्यान देकर काटना चाहिए, ताकि फ्रेम की एक कमची दूसरी को नहीं छू सके। इसे चित्र ११३ में देखा जा सकता है। जब फ्रेमवाली चौड़ी कमचियाँ लगाई गई हों, तब उनकी दो-तिहाई चौड़ाई भाग को काटकर कम कर देना चाहिए।
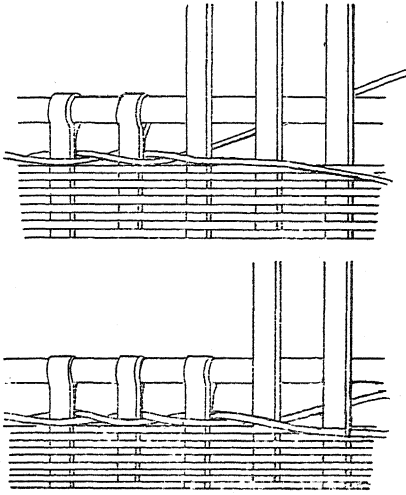
(चित्र ११५)
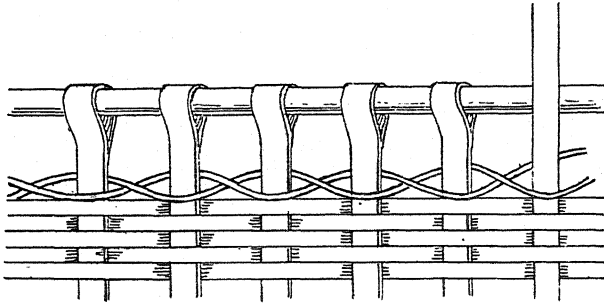
(चित्र ११६)
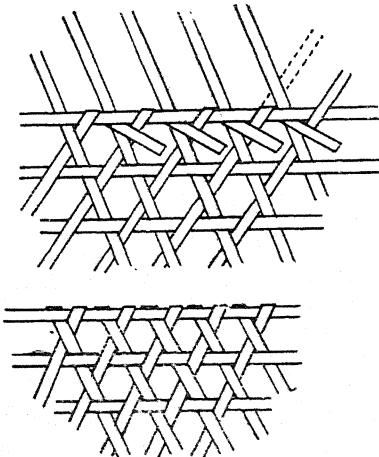
(चित्र११७)

इसके बाद चौथी विधि चित्र ११४ में प्रदर्शित है, जो जालीदार फूल पेंदा बुनाई के लिए तथा घुमावदार किनारे के लिए उपयुक्त होती है। इस विधि से बुनी गई वस्तु भारी वजन सहन कर सकती है; क्योंकि बुनाई-वाले किनारे को छोड़ फ्रेमवाली कमचियों और बुनाईवाली कमचियों के साथ जकड़ा रहता है।

पाँचवीं विधिवाली बुनावट चित्र ११५ में प्रदर्शित है, जो फूलदार और जालीदार पेंदा-बुनाई तथा साधारण घुमावदार पूर्ण-क्रिया के लिए उपयुक्त होती है। इसके किनारे की कमचियों तथा बुनाई की कमचियों के बीच रिक्त स्थान होता है, जिसमें किनारे की कमचियों को मोड़कर फँसा दिया जाता है। फँसा देने के बाद रिक्त स्थान को पुनः बुनकर भर दिया जाता है। इसलिए, यह विधि चौथी विधि के समान ही भारी

सामानों को उठानेवाली या माल ढोनेवाली वस्तुओं के बनाने के काम में लाई जाती है।

छठी विधि घुमाव द्वारा पूर्ण-क्रिया करने के काम में व्यवहृत होती है। बुनाई की एक कमची या फ्रेम की कमची किनारे पर के बाँस के ऊपर होकर मोड़ दी जाती है। इसे चित्र ११६ में देखिए।

सातवीं विधि चित्र ११७ में प्रदर्शित है, जो लोहे के तार-सहित व्यवहृत होती है। फ्रेमवाली कमचियों को एक दूसरे पर आर-पार (क्रॉस) करके 'चार बुनाई' के ढंग से टोकरी बुनते हैं और उसका किनारा घुमाकर तथा काटकर पूरा करते हैं। लोहे के तार को उसी प्रकार लगा देने से टोकरी और ज्यादा मजबूत हो जाती है।

आठवीं विधि के द्वारा बुनाई के समान ही फ्रेमवाली कमचियों को आर-पार (क्रॉस) करके जालीदार टोकरी बनाई जाती है। केवल ऊपरी भाग काट देने से वह ढीला न हो जाय, इसलिए अच्छी तरह मजबूत फ्रेमवाली कमचियों को उसमें तानकर जकड़ देते हैं। इसे चित्र ११७ के निचले भाग में भली भाँति दिखाया गया है।

ऊपर में कमचियों को लगाने का जो तरीका दिया गया है, वह तो उदाहरण मात्र है। सामान लगाने की किसी विधि में पहले इस बात पर विचार करना चाहिए कि काम कैसा है?
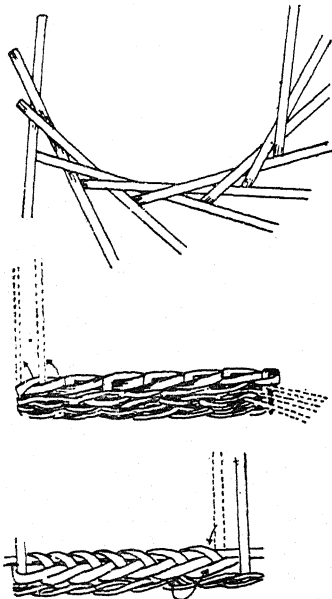
(चित्र ११८)

(१) **रावसटर लगाना**—फ्रेम की कमचियों में अतिरिक्त कमचियाँ भी लगाई जाती हैं और इसके साथ ही इस विधि से किनारे का काम पूरा किया जाता है। इसको 'संयुक्त किनारा' भी कहते हैं। यह विधि छोटी-छोटी टोकरियों के लिए ठीक होती है।

इसे पूरा करने की विधि यह है कि फ्रेम की सभी कमचियों को दो भागों में चीर लेना चाहिए और उन्हें काटकर करीब चार इंच का बना लेना चाहिए। तब किनारे का घेरा लगभग ५·८ व्यास का बनाना चाहिए, जो टोकरी के व्यास से ¼ इंच कम हो। घेरावाले बाँस को एक स्थान पर तार या डोरी से बाँध देना चाहिए।

(२) **छिपाकर बाँस लगाना**— चित्र ११८ में प्रदर्शित ढंग से किनारे को पूरा करने के लिए फ्रेमवाली कमचियों का व्यवहार होता है। यह विधि रद्दी कागज रखने या फूल रखने की टोकरी बनाने के
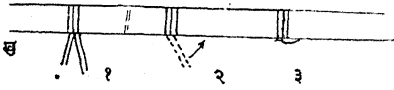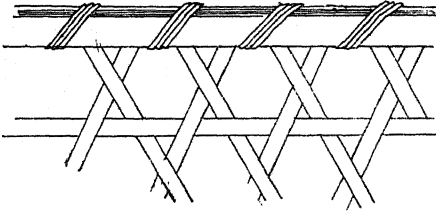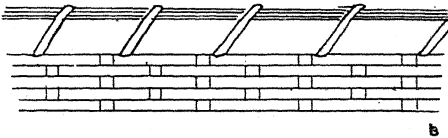
काम में आती है। फ्रेम की कमचियाँ यदि एक-दूसरे के निकट सटी रखी जायँ, तो यह विधि अच्छी होती है।

विधि इस प्रकार है—फ्रेम की कमचियों का छिलका हटाकर उन्हें सुधार देना चाहिए। उसके बाद उन्हें भीतरी भाग में मोड़ देना चाहिए और २ से ६ बुनाईवाली कमचियों तक खींच ले आना चाहिए और तब फ्रेमवाली कमचियों के बाहरी भाग को भीतर की तरफ घुसेड़ना चाहिए। इसे चित्र ११८ में दिखाया गया है। यदि फ्रेमवाली कमचियाँ छोटी होंगी, तो छिपाकर लगानेवाला यह काम कभी नहीं हो सकता। ऐसी अवस्था में चित्र ११८ के निचले भाग में प्रदर्शित विधि को काम में लाना चाहिए।

फ्रेमवाली कमचियों को चीरने के बाद किनारे के घेरे को उपर्युक्त तरीके के सदृश ही बनाइए और तब फ्रेमवाली कमचियाँ लगाइए। अगर फ्रेमवाली कमचियाँ अत्यन्त छोटी हैं, तो पूर्ण-क्रिया के लिए दूसरी पद्धति काम में लाइए। जैसे—वेणी-गुम्फन बुनाई की पद्धति।

तीसरी विधि में दो किनारे पर के घिराव को ले लेते हैं

(चित्र ११९)

(चित्र १२०)

(चित्र १२१)

(चित्र १२२)

(चित्र १२३)

(क) (ख) (ग) (घ)
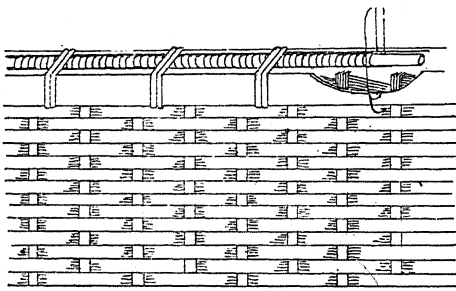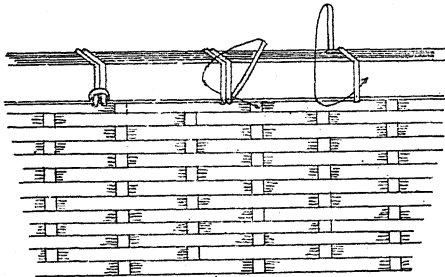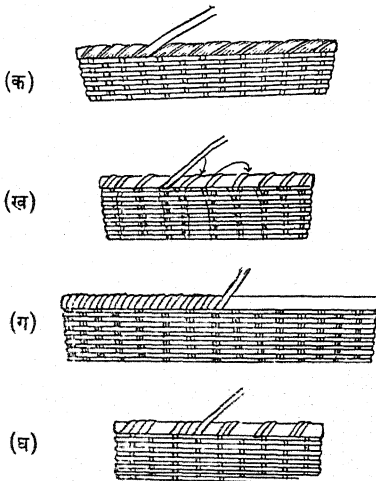
(चित्र १२४)

और उनके बीच में बाँस रखकर लोहे के तार से बाँध देते हैं।

इस विधि से बनी वस्तुएँ मजबूत होती हैं और यह विधि बहुत प्रचलित है। टोकरियों की बुनाई के अनुसार पूरा करने की विधि भी बदलती है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(क) **तार के व्यवहार करने पर**—चित्र ११६ में प्रदर्शित ढंग के अनुसार तार से बाँधना चाहिए। तार इतना लम्बा होना चाहिए, जिससे वह आसानी से बँध जाय। इस बात के लिए सतर्क रहना पड़ता है कि बँधे हुए तार को उसके बन्धन के निकट से काटकर किनारे के भीतर इस तरह से मोड़ें, जिससे कहीं खुरच न लगे।

लगातार घुमाव के लिए निम्न-लिखित विधि काम में आती है।

(ख) **बेंत के व्यवहार करने पर**—उपर्युक्त विधि में बाँधने का जो तरीका बताया गया है, वह बेंत के लिए ठीक नहीं है; क्योंकि इससे बन्धन के ढीला हो जाने का भय रहता है। छोटी-छोटी वर्गाकार टोकरियों के लिए चित्र १२० 'ख' में दिखाई गई विधि को काम में लाना ठीक होता है। कभी-कभी दो-तीन बार करके समानान्तर ढंग से बाँधते हैं। इसे भी चित्र १२१ और १२२ में दिखाया गया है।

कभी-कभी लगातार घुमा-घुमा-कर बाँधा जाता है, जिसे चित्र १२३ के निचले अंश में दिखाया गया है।
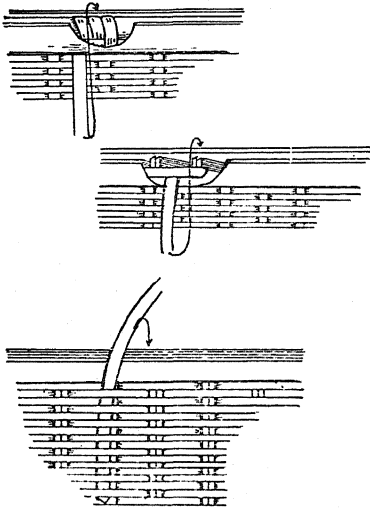
(चित्र १२५)
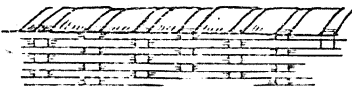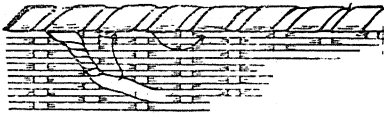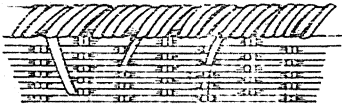
(चित्र १२६)
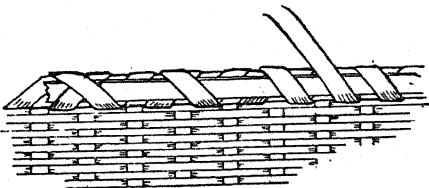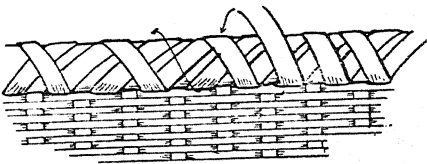
(चित्र १२७)

घुमाव द्वारा किनारा पूरा करना—चौड़े चीरे हुए बाँस को घुमा-घुमाकर गोलाकार बनाते हुए किनारे को पूरा करते हैं।

घुमाव के काम के लिए जो बाँस व्यवहृत होता है, उसे मुलायम और पतला होना चाहिए। अनेक बार ऐसे ही भीतर और बाहर घुमाते भी हैं। यह विधि अनेक प्रकार की टोकरियों और पिंजड़ों में व्यवहृत होती है और इस प्रकार की बनी वस्तु मजबूत और टिकाऊ होती है।

जब फ्रेमवाली कमच्चियाँ समानान्तर ले जाई जाती हैं, तब यह बुनाई बहुत सुन्दर लगती है। कभी-कभी इसे किनारे पर एक इंच नीचे से बुनना पड़ता है। इसे चित्र १२३ के निचले भाग में दिखाया गया है।

घुमावदार तरीके से किनारे को पूरा करने की विधियाँ—(क) कभी-कभी ये 'दो घुमाव' (टू टर्न्स) और तीन घुमाव (थ्री टर्न्स) कहलाते हैं। टोकरी के आकार के अनुसार घुमाववाले सामान के सिरे को दो या तीन-चार बार घुमाकर मढ़ते हैं। विशेष स्थिति में तो छह बार तक मढ़ते हैं।

चित्र १२४ के निचले भाग के 'ग' में केवल एक घुमाव, 'ख' भाग में दो घुमाव और 'घ' में तीन घुमाववाली विधि प्रदर्शित की गई है।

मढ़नेवाले सामान को एक बार मढ़कर पुनः उसी स्थान पर आ जाना चाहिए।

चित्र १२४ के 'ग' तथा 'घ' में प्रदर्शित विधियों में फ्रेमवाली कमचियों के बीच समानान्तर ढंग से मढ़ने का काम बताया गया है।

मढ़नेवाले सामान के छोर को लगाने की कई प्रविधियाँ हैं; लेकिन वे सब वस्तुएँ जिस ढंग की हैं, उसके अनुसार ही ये विधियाँ काम में लाई जाती हैं। कुछ विधियाँ नीचे दी जा रही हैं—

चित्र १२५ में दिखाया गया है कि मढ़नेवाली कमचियाँ ढीली न हो जायँ, इस लिए उसे बुनाईवाली कमचियों के साथ दो या तीन बार घुमाकर जकड़ देते हैं या फ्रेमवाली कमचियों तक मढ़ देते हैं अथवा फ्रेमवाली कमचियों के साथ ही जकड़ देते हैं।

इस बात की भी सावधानी रखनी पड़ती है कि घुमाव की नई कमचियों को जोड़ते समय जोड़ का भाग ढीला न हो जाय। आरम्भ में घुमाववाली कमचियों को लगाते समय देख लिया जाता है कि जिस तरह वे मजबूती से लग जाती हैं, उसी तरह वह समाप्त होने पर भी मजबूती के साथ लगी रहें।

चित्र १२६ में दिखाया गया है कि एक बार के घुमाव के बाद घुमाव की कमचियों को फ्रेमवाली कमचियों के साथ लगा दिया गया है। कमचियाँ यदि मुलायम होंगी, तो वस्तु का छोर ठीक से जकड़ जाता है।

चित्र १२६ के निचले भाग में घुमाव की कमचियों को छोर पर लगाने की कठिन विधि दिखाई गई है। घुमाव की कमचियों के छोर को किनारे के नीचे से घुमाते हैं, तब फ्रेमवाली कमचियों के बीच के एक खाली स्थान से उसे निकालकर फिर दूसरे रिक्त स्थान होकर डालते और निकालते हैं।

किनारे को मजबूत बनाने के लिए कभी-कभी दुहरी मढ़ाई करनी पड़ती है। चित्र १२७ के ऊपरी भाग में यह दिखाया गया है। इसकी विधि यह है कि भीतर से बाहर तीन घुमाववाला किनारा लगाने का साधारण तरीका अपनाकर फिर दो बार ऊपरी घुमाव देना पड़ता है। ये घुमाव निचले घुमाव होते हैं और पहले घुमाव की विपरीत दिशा में होते हैं। ऊपरी घुमाव में त्वचा-युक्त कमचियाँ लगाई जाती हैं।

किनारा मजबूत बनाने के लिए चित्र १२७ का निचला भाग देखना चाहिए। निचले घुमाव के बाद ऊपरी घुमाव बनाने के लिए दूसरी कमची की जरूरत पड़ती है। इस विधि को 'दुहरा किनारा पूर्ण-क्रिया पद्धति' कहते हैं।
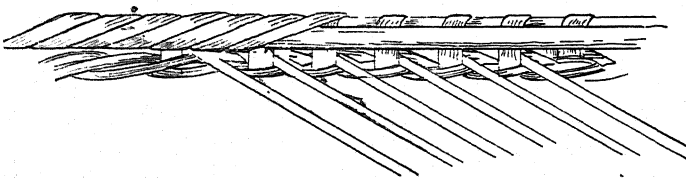
(चित्र १२८)

डोरीनुमा बुनाई—यह भी किनारा पूरा करने की एक विधि है और यह विधि फूल रखने की चँगेलियाँ तथा कलात्मक ढंग की टोकरियाँ बनाने के काम में आती है।

किनारे को मढ़कर पूरा करने के लिए घुमाव की कर्माचियों का त्वचा-वाला भाग ऊपर की ओर रखते हैं। डोरीनुमा मढ़ाई में मढ़ने की कर्माचियों को घुमाते रहते हैं और त्वचावाला भाग ऊपर की ओर रखते हैं। इसे चित्र १२८ में दिखाया गया है।

(चित्र १२९)

(चित्र १३०)

(चित्र १३१)

डोरीनुमा बुनाई में निम्नलिखित ढंग अपनाते हैं—फ्रेमवाली दो गोल मोटी कर्माचियों को, जो अर्धगोलाकार होती हैं, ले लेते हैं और एक को किनारे के भीतर और दूसरी को बाहर लगाकर मढ़ने-वाली कमची से किनारा मारकर मढ़ देते हैं।
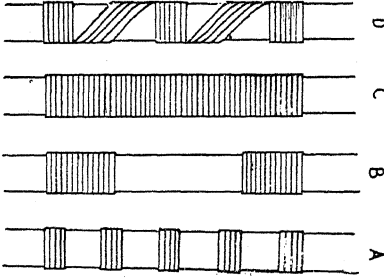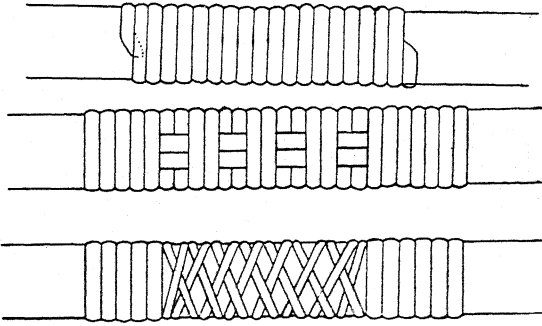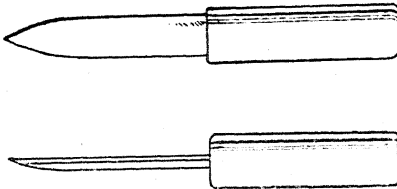
मढ़नेवाली कमची की चौड़ाई, वस्तु के मुँह अथवा फ्रेमवाली कम-चियों की संख्या पर, निर्भर करती है। किनारा मढ़ने के लिए विभिन्न तरीके व्यवहृत होते हैं। इसमें सुन्दर-से-सुन्दर बुनाई होती है। इसकी प्रत्येक बुनाई में विभिन्नता होती है। कोई तो बिलकुल सहज तरीके से होता है और कोई आलंकारिक होने के कारण कठिन होता है। किन्तु, इस विधि में किनारे को खुल जाने की संभावना कम है।

डोरीनुमा मढ़ाई की निम्नलिखित दो विधियाँ—

(क) **एक ही साथ मढ़ने की कई कमचियों का व्यवहार करना**—चित्र १२९ में प्रदर्शित रीति के लिए ८ या ९ घुमाव की कमच्चियों को लेना चाहिए तथा उन्हें घुमाववाली

कमचियों और फ्रेमवाली कमचियों के बीच में समानान्तर रूप से घुसाकर लगाना चाहिए। उसके बाद घुमाववाली कमचियों को, बाँयें हाथवाले छोर को घुमाकर, फ्रेम-वाली कमचियों के बीच के खाली स्थान के भीतर डालते हैं। यहाँ घुमाववाली कमचियों का दाहिना छोर होता है।
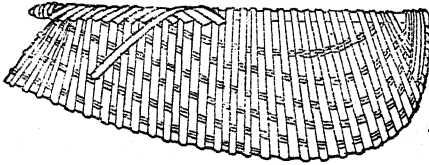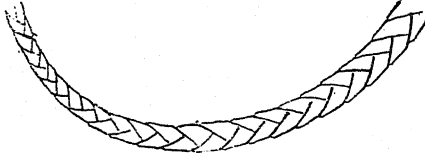
(चित्र १३२)
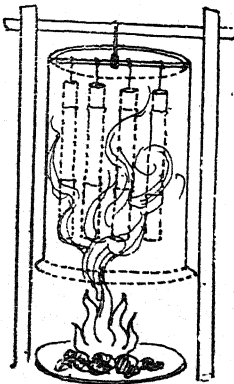
(चित्र १३३)

इसके बाद ऊपरी मुँहवाले हिस्से पर एक बार लपेटकर घुमाव का काम करना पड़ता है और इस प्रकार किनारे का काम पूरा किया जाता है। किन्तु, घुमाववाली कमचियों के छोर को इस विधि से लाना जरा कठिन है।

(ख) एक ही सामान से मढ़ना—यह विधि बहुत-कुछ उपर्युक्त प्रथम विधि के सदृश ही है। प्रत्येक ६ से ६ फ्रेमवाली कमचियों के साथ मढ़ने-वाली कमची मढ़ी जाती है और फ्रेम-वाली कमची को ऊपरवाली कमची से विभक्त नहीं करना पड़ता है।

जब फ्रेमवाली कमचियों की संख्या उन रिक्त स्थानों की संख्या से विभक्त की जाती है, जिस होकर मढ़नेवाली कमची निकाली जाती है, तब उसके बाद की फ्रेमवाली एक कमची बची रहती है। इस विधि से तैयार की गई वस्तु सुन्दर होती है। इसके तरीके चित्र १३० में दिखाये गये हैं।

सूपनुमा पूर्ण-क्रिया—यह विधि और भी अधिक कलात्मक तथा व्यावहारिक कार्यों में प्रयुक्त होती है। इसकी विधि इस प्रकार है—

सर्वप्रथम फ्रेमवाली कमचियों को लगा लेते हैं और ऐसा करते समय किनारा मढ़नेवाली कमचियों के लिए खाली स्थान भी बचाते चलते हैं।

लेकिन टोकरी की बुनाई की विधि से बने पिंजड़ों में मढ़नेवाली कमचियों के लिए उपयुक्त रिक्त स्थान रखते हैं। अतः, चित्र १३१ में प्रदर्शित एक विशेष औजार द्वारा 'सूपनुमा पूर्ण-क्रिया' की जाती है। किन्तु, फ्रेमवाली कमचियों को लगाकर यह क्रिया नहीं होती, जैसा चित्र १३२ में दिखाया गया है।

जब मढ़नेवाली कमची का एक छोर लगा रहे, तब किनारे की बुनाई का तरीका (चित्र १३२ में प्रदर्शित) यह है कि मढ़नेवाली कमची उस रिक्त स्थान में प्रवेश कराई जाती है, जो चार जाली फ्रेमवाली कमचियों की बगल में है और जिसमें फिर यही क्रिया दुहराई जाती है।

मढ़नेवाली कमची अँगरेजी की संख्या 8 के आकार में अथवा अँगरेजी अक्षर S के आकार में चलती है। सूपनुमा पूर्ण-क्रिया सीखने के लिए स्मरण रखना चाहिए कि चार जाल आगे बढ़कर फिर लौटकर दूसरे जाल तक आना पड़ता है।

पीपानुमा बुनाई में चार जाली आगे जाना और फिर दूसरी जाली तक वापस आना नहीं चल सकता। इसलिए किनारे की मढ़ाई दूसरे ढंग से की जाती है। इस मढ़ाई के लिए चित्र १३१ में प्रदर्शित औजार को, कमची-प्रवेश का रास्ता बनाने के लिए, घुसेड़ते हैं और फिर उसी से होकर मढ़नेवाली कमची को भी घुसेड़ देते हैं। उसके बाद औजार को निकालकर दूसरे स्थान में प्रवेश कराते हैं।

सूपनुमा पूर्ण-क्रिया की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मढ़नेवाली सामग्री की चौड़ाई वस्तु के मुँह की चौड़ाई तथा रिक्त स्थानों की चौड़ाई के अनुकूल होनी चाहिए।

मढ़नेवाले सामान की चौड़ाई से मढ़ने के झुकाव का पता चलता है और ठीक झुकाव होने से वस्तु का किनारा अच्छा उतरता है।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर पिंजड़े तथा टोकरियों को निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—

(१) पीपानुमा पिंजड़ा बुनाई।
(२) वर्गाकार जाल बुनाई।
(३) वर्गाकार पेंदा बुनाई।
(४) मधुकोष-जाल बुनाई।
(५) फूल पेंदा बुनाई।
(६) जाली बुनाई।
(७) अन्य बुनाइयाँ।

बाँस की बनी वस्तुओं की पूर्ण-क्रिया—

खासकर कलात्मक वस्तुओं को ही इस रूप में तैयार करते हैं। उक्त तैयारी में निम्नलिखित बातें महत्त्वपूर्ण हैं—

(क) **वस्तु की स्वच्छीकरण-क्रिया**—साफ की हुई कमचियों से वस्तु बनाने को 'वेणु-वस्तुओं का स्वच्छीकरण' कहते हैं। लेकिन, कभी-कभी बनी वस्तु ही साफ की

जाती है। बनी वस्तु को कई बार उबालने और साफ करने से उसका रंग और सुन्दर होकर निखर उठता है।

जो वस्तु साफ की गई सामग्री की बनी नहीं होती, उसे हल्के 'विस्मार्क ब्राउन' रंग से रँग देते हैं।

(ख) **रँगाई**—धुँआ देकर भी बाँस के सामानों में रंग किया जाता है। इसे चित्र १३३ में दिखाया गया है। टीन के एक खोखले डिब्बे में बाँस के टुकड़ों को लोहे की कड़ियों से लटका दिया जाता है। नीचे लोहे का एक चदरा बिछाकर कोयला जला देते हैं। कोयले का धुँआ टीन के डिब्बे में लटके बाँस के सामानों में लगता है और उससे सामान में रंग आ जाता है।

धुँआ लगाकर बाँस में जो रंग लाया जाता है, उसे प्राकृतिक रंग कहते हैं। रसोई-घर के धुएँ में एक लम्बे अरसे तक (१ से लेकर १० वर्ष तक) बाँस को रखकर कुछ लोग रंगीन बनाते हैं।

गृहस्थों के घर के छज्जे विशेषतः बाँस के बने होते हैं, जिनमें रसोई-घर के छज्जे के बाँस धुएँ लगने के कारण रंगीन हो जाते हैं। ये बाँस जितने पुराने होंगे, उनमें उतना ही अच्छा ओर स्थायी रंग चढ़ता है। भारत में लाठी, सोंटा और छड़ी में सुन्दर रंग लाने तथा उसे मजबूत बनाने के लिए छप्पर में उस जगह खोंसते हैं, जहाँ नीचे में दूध औंटा जाता है। गरम दूध के वाष्प और धुएँ से जैसा सुन्दर रंग और टिकाऊपन बाँस में आते हैं, वैसा अन्य धुएँ से नहीं। ऐसे बाँसों की कमचियों के द्वारा बनाई गई वस्तुएँ अत्यन्त सुन्दर और टिकाऊ होती हैं। जापान में ऐसे बाँसों से बहुमूल्य वस्तुएँ तैयार की जाती हैं। खेद है कि हमारे यहाँ के लोग इसका उचित व्यवहार नहीं जानते हैं।

इसी तरह बाँस को रँगने के लिए मौलिक रंग का व्यवहार भी होता है। केवल कूची से रंग चढ़ा देने से ही वह पक्का नहीं होता, इसलिए उसे उबाला जाता है।

उबालते समय अधिक देर तक उबालना अच्छा है, लेकिन बहुत कम तापमान पर उबालने के परिणाम उत्तम होते हैं। ऐसे रंग से रँगने से वह पक्का नहीं होता। वह, धूप लगने से उड़ जाता है। इसलिए इस बात की सावधानी रखनी पड़ती है कि सीधी धूप में बाँस की ऐसी बनी वस्तु को व्यवहार में न लायें।

रसायन-पद्धति से रँगने की कुछ विधियाँ यहाँ दी जाती हैं—

गंधक के धुएँ से और गंधक-तेजाब से बाँस का स्वच्छीकरण—धुएँ से स्वच्छीकरण की विधि वही है, जो धुएँ से रँगने की होती है पर, गंधक के तेजाब से जब वस्तु-निर्माण की सामग्री का स्पर्श करते हैं और उसमें थोड़ी गरमी देते हैं, तब सामग्री का रंग काला हो जाता है। बाँस की त्वचा हटाकर या उसको साफ कर ही यह रँगाई की जाती है और उसमें अमोनियम (Ammonium) का जल (NH, OH) डालकर हल्का कर देते हैं।

नाइट्रिक एसिड—(क) नाइट्रिक एसिड को पतला कर उसे एक ब्रश के द्वारा लगाया जाता है और तब सुखाकर उसपर तरल अमोनियम का प्रयोग किया जाता है।

(ख) गाढ़ा नाइट्रिक एसिड लगाने पर रंग भूरा हो जाता है; पर यदि इसकी शक्ति कम कर दी जाय, तो जल्द ही पीला रंग हो जाता है।

औरामिन (Auramin)—दो गैलन पानी में एक ग्राम औरामिन मिलाकर सामग्री को डुबो देने से उसका रंग पीला हो जाता है।

बिस्मार्क भूरा—दो गैलन जल में ८ से १० ग्राम बिस्मार्क भूरा डालने से लाली लिये हुए भूरा रंग हो जाता है। लेकिन, रंग की मात्रा बदल देने से भूरे से काला रंग हो जाता है।

मिथेल वॉयलेट (Methyl Violet)—दो गैलन पानी में इस रसायन का आठ ग्राम मिलाने से पीले रंग से बैंगनी रंग हो जाता है।

मालकाइट ग्रीन (Malachite Green)—दो गैलन जल में आठ ग्राम मालकाइट मिलाने से बाँस का रंग हरा हो जाता है।

बिस्मार्क ब्राउन ३५ ग्राम, मालकाइट ग्रीन ८ ग्राम और जल २ गैलन मिलाकर काला रंग बनाया जाता है।

बिस्मार्क ब्राउन ३५ ग्राम, मिथेल वॉयलेट ८ ग्राम, मालकाइट ग्रीन ४ ग्राम—इन सबको दो गैलन जल में मिलाकर और त्वचा-रहित बाँस की सामग्री को ३० से ४० मिनट तक डुबोकर रखते हैं, जिससे वह उत्तम कोटि के काले रंग में रँग जाती है।

देवदार की जड़ को जलाकर उसके धुएँ को बाँस की बनी सामग्री में लगाने से सामग्री का रंग बढ़िया काला हो जाता है और यह रंग बहुत पक्का होता है। भींगे कपड़े से पोंछ देने पर रंग और भी चमकीला हो जाता है।

कारीगरों के लिए कलात्मक वस्तुओं के रँगने की बात सबसे अधिक महत्त्व रखती है। रँगने की प्रक्रिया में और भी कुछ विधियाँ हैं, जो नीचे दी जाती हैं—

(क) वस्तुओं को सुखा लेना।
(ख) रंग से धुएँ के रंग में अथवा भूरे रंग में रँगना।
(ग) सामानों की सतह को पोंछ देना और रंगीन भागों को गाढ़ा या पतला बनाना।
(घ) वार्निश या जापानी लाह चढ़ाना।
(ङ) वस्तु पर से धूल पोंछ देना।
(च) अन्तिम बार की रँगाई (Polish) करना।

इनकी प्रणाली नीचे दी जाती है—

लाली लिये हुए धुएँ का रंग सुन्दर दिखाई पड़ता है, लेकिन अखरोट (Walnut) के रंग में रँगने से और सुन्दर दिखाई पड़ता है।

जिस सामग्री को रँगना है, उसे खूब ठीक से सुखा लेना चाहिए, अन्यथा उसपर सुन्दर रंग भी नहीं चढ़ सकता और वह सामग्री फट भी जा सकती है। रँगने के लिए पतले लोहे के चदरे का टब बनाया जाता है।

धुएँ के रंग के सदृश रगने की प्रणाली

प्रथम विधि—बिस्मार्क को ५ गैलन जल में घोल लीजिए। इस घुलन के पतलापन की जाँच, बाँस के टुकड़े को उसमें करीब १० सेकेण्ड तक डालकर, की जाती है। रंग का उचित पतलापन या गाढ़ापन तब माना जाता है, जब बाँस का टुकड़ा सूख जाने पर काला हो जाय। टुकड़े का रंग अगर पीला आया, तो उसमें बिस्मार्क ब्राउन मिला देना चाहिए। इसे २० से ३० मिनट तक उबालना चाहिए।

प्रथम घुलन में रंग लेने के बाद वस्तु को पूर्णरूप से सुखा लेना चाहिए। नहीं सुखाने से उसका लाल रंग फीका हो जायगा और उसे पोंछ देने पर तो लाली बिलकुल नहीं रह जायगी।

द्वितीय विधि—मिथेल वॉयलेट ८० ग्राम, मालकाइट ग्रीन ४० ग्राम और जल ५ गैलन—इन तीनों को मिलाकर प्रथम विधि में दी गई विधि से घुलन के गाढ़ापन की जाँच करते हैं। बाँस के जिस टुकड़े की परीक्षा करते हैं, वह काला हो जाता है। लगभग दो मिनट में वस्तु रँग जाती है।

(१) **हल्की भूरी रँगाई**—बिस्मार्क ब्राउन से रँगाई करने के समय २० से ३० मिनट तक रंग को उबालने पर सुन्दर होता है। घुलन गाढ़ा रहने पर रंग कालापन लिये होता है और पतला रहने पर रंग पीला हो जाता है।

(२) **पोंछना**—रंग चढ़ा देने के बाद वस्तु को सुखा देना चाहिए। उसके बाद उसे महीन बालू के सहारे भींगे कपड़े से पोंछ देना चाहिए। इससे गाढ़ा चमकीला रंग निकल आयगा। वस्तु की सतह को कुछ हल्के हाथ से पोंछना चाहिए, अन्यथा जोर से दबाकर पोंछने पर भीतर से हल्का रंग निकल आयगा।

सामग्री पर जहाँ नहीं पोंछा गया है, वहाँ कालापन लिये और जहाँ ठीक से पोंछा गया है, वहाँ चमकीली लाली लिये सुन्दर रंग आता है। पोंछने के समय बालू के साथ कपूर का तेल मिला देना चाहिए। तेल-मिली बालू को हटा देना आसान है; लेकिन पानी से भींगी हुई बालू को पोंछ लेने के बाद साफ करना कठिन होता है।

(३) **लेप लगाना** (Coaling)—जापान, चीन और बरमा के निवासी लाह में कपूर का तेल अथवा गैसोलिन (Gasoline) डालकर ब्रश से लेप चढ़ाते हैं। ऐसी लाह हाथ और शरीर को नुकसान पहुँचाती है। लाह का लेप सबसे उत्तम होता है; लेकिन कभी-कभी चपड़े की वार्निश का भी व्यवहार किया जाता है।

(४) **छिड़काव** (Dusting) **की प्रथम विधि**—इस लेप के चढ़ाते समय छिड़काव के लिए नीचे लिखे तरीके से पाउडर बनाते हैं और उसका सामग्री पर छिड़काव करते हैं—

ह्वाइट पॉलिशिंग सेण्ड	५ भाग
रेड ,, ,,	२ भाग
कार्बन ब्लैक	१ भाग
टेल्कम पाउडर	२ भाग

बाँस पर लेप लगा देने के बाद उपर्युक्त सामानों को उसपर बारी-बारी से छिड़क देते हैं और तब रूई से उसे झाड़ देते हैं। ऐसी अवस्था में बाँस के जोड़ों और गिरह-स्थानों के पास जो उजला पाउडर का कुछ अंश रह जाता है, उससे बाँस की सुन्दरता बढ़ जाती है और वह प्राचीन-जैसा लगने लगता है।

छिड़काव की द्वितीय विधि—जब चपड़ा-बार्निश से लेप करते हैं, तब उसे सुखाने के पहले, प्रथम विधि के समान ही, छिड़ककर फिर झाड़ देते हैं।

छिड़कने का काम ठीक से नहीं करने पर वस्तु गन्दी हो जाती है। इसलिए छिड़कने में सावधानी और अनुभव दोनों जरूरी है।

(५) **पॉलिश करना**—सामान्यतः मोम से पॉलिशिंग की जाती है; किन्तु नहीं मिलने पर पाराफिन अथवा मोमबत्ती व्यवहार में लाई जाती है। इस कार्य में कमेलिया तेल (Camellia Oil) व्यवहार किया जाता है।

निम्नलिखित विधियाँ भारत की अतिप्राचीन विधियाँ है, लेकिन अँगरेजी शासन में जब विदेश से अनेक आवश्यक वस्तुएँ आने लगीं, तब इन विधियों को लोग भूल बैठे। जापान में अभीतक ये विधियाँ विद्यमान हैं।

एक विधि—यह विधि लकड़ी अथवा बाँस की वस्तुओं के रँगने में व्यवहृत होती है। यह लकड़ी या बाँस की वस्तुओं में ही व्यवहार की जाती है। लकड़ी या बाँस पर गेहूँ के आटे में लेप करके ब्रश से भूरिया तथा पॉलिशिंग पाउडर लगा देते है। फिर उसे सुखाकर सैण्ड पेपर से साफ किया जाता है। गिरहों पर सैण्ड पेपर का व्यवहार नहीं करते हैं, जिससे उन स्थानों में यह पाउडर लगा रह जाता है। इसे ठीक से बनाने के लिए पुनः उसी तरह लेप करके सूखने के लिए छोड़ते हैं और फिर सैण्ड पेपर से रगड़कर साफ करते हैं। बाद में कारुनिट लेप लगाकर लाल, पीला और तब काला, एक के बाद दूसरा, रंग चढ़ाया जाता है। पुनः पारदर्शक लेप चढ़ाने के लिए महीन सैण्ड पेपर से रगड़ लेने पर पारदर्शक लेप चढ़ाते हैं। फिर, रेपसिड ऑयल लगाकर कपड़े से पोंछते हैं। इस प्रकार रँगाई की कई विधियाँ हैं।

मौलिक रंग से रँगाई का साधारण तरीका

यह विधि सबसे अधिक सरल है। बाँस के सामान को मौलिक रंग के घुलन में रखकर उबालते हैं। साधारण रूप से व्यवहार में आनेवाले रंग ये हैं—

पीला — औरामनि (Auramine)
भूरा — बिस्मार्क ब्राउन (Bismark Brown)
हरा — मालकाइट ग्रीन (Malachite Green)
केसरिया — सफ्रानिन (Safranin)
बैंगनी — मिथेल वॉयलेट (Methyl Violet)
लाल (मजीठ) — मैजेंटा (Magenta)
नीला — सॉलिड ब्लू (Solid Blue)

इस तरह की रँगाई की दो विधियाँ होती हैं—

(क) ऑरगेनिक, जिसमें सल्फ्युरिक एसिड तथा नाइट्रिक एसिड व्यवहार किया जाता है। (ख) जिसमें रंगों की वस्तुएँ होती हैं। इसके भी दो प्रकार होते हैं—मूलभूत रंग और अन्य रंग।

विधि—हमलोग कच्चे माल को रंग सकते हैं; लेकिन कुछ रंग ऐसे हैं, जो वस्तुओं पर बिलकुल नहीं चढ़ सकते। इस कारण सामान्यतः कच्चे माल से सर्वप्रथम तेल पदार्थ निकाल लिये जाते हैं। तेल निकालने की दो विधियाँ हैं। इनके नाम हैं—वेट स्टाइल तथा ड्राई स्टाइल (भींगी विधि तथा सूखी विधि), जो पहले पृ० ६१-६२ में दी गई हैं। इन दोनों विधियों को व्यवहार में लाया जा सकता है; लेकिन भींगी विधि सूखी विधि से उत्तम होती है। क्योंकि, सूखी विधि से हर जगह से समान रूप में तेल पदार्थ नहीं निकल सकता है। बाँस के सामान को, कॉस्टिक सोडा या सोडियम कार्बोनेट के घोल में, ३० से ५० मिनट तक उबालना चाहिए। खासकर जब हम चाहते हैं कि रंग चमकीला आवे, तब साफ करके प्राकृतिक पीला रंग ले आते हैं; लेकिन ऐसा केवल विशेष स्थिति में ही किया जाता है, सामान्य रूप से ऐसा नहीं होता है। क्योंकि, हमलोग ऐसे बाँस को ही चुनते हैं, जिसकी सतह पर कोई नुकसान नहीं रहता। ऐसा बाँस नहीं मिलने पर परिणाम अच्छा नहीं निकलता है।

अनुपात—रंग की संख्या की कोई सीमा नहीं है। अनुपात के अनुसार अभीष्ट रंग प्राप्त करना चाहिए। कुछ रंगों का अनुपात नीचे दिया जाता है—

पीला — ऑरामिन ०.५ ग्राम, जल ५०० ग्राम।
हरा — मालकाइट ग्रीन ५ ग्राम, जल ५०० ग्राम।
पीला-हरा — मालकाइट ग्रीन १ ग्राम, जल ५०० ग्राम, ऑरामिन १ ग्राम।
केसरिया — सफ्रानिन २ ग्राम, जल ५०० ग्राम।
बैंगनी — मिथेल वॉयलेट २ ग्राम, जल ५०० ग्राम।
भूरा — बिस्मार्क ब्राउन २ ग्राम, जल ५०० ग्राम।
गहरा भूरा — जेनस ब्लैक १ ग्राम, बिस्मार्क ब्राउन २ ग्राम, जल ५०० ग्राम।
काला नं० १ — मिथेल वॉयलेट २ ग्राम, डाइरेक्ट ब्लैक २ ग्राम, जल ५०० ग्राम।
काला नं० २ — जेनस ब्लैक १० ग्राम, मिथिल वॉयलेट १० ग्राम, जल ५०० ग्राम।

नोट—रंगों को थोड़े-से गरम पानी में डालकर और अच्छी तरह मिलाकर ठीक से घुला देना चाहिए। उसके बाद सम्पूर्ण पानी धीरे-धीरे ढालना चाहिए। जब गरम जल के साथ रंग घुलकर बाहर नहीं आवे, तब उसे थोड़ा अल्कोहल मिलाकर घुला लेना चाहिए। बाद, फिर उसे गर्म जल में गलाना चाहिए।

बाँस के सामान (जिसे रंगना है) की संख्या के अनुसार रंग के घोल की मात्रा निर्भर करती है। लेकिन घोल अधिक ही तैयार करना अच्छा होता है, जिससे समय पर उसका अभाव खटके नहीं।

उबालने का बरतन लोहे या जस्ते के चदरे का अथवा एनामेल किये हुए लोहे का बना होता है। उनके अभाव में मिट्टी-तेल का टिन भी व्यवहार किया जा सकता है। जल का तापमान जब ६०° सेंटीग्रेड से अधिक हो जाता है, उसके बाद २० से ३० मिनट तक उबाला जाता है। खास कर काले रंग में एक घंटे का समय जरूरी होता है। रंग के अनुसार ही उबालने के समय में कभी अधिक समय की जरूरत होती है। इसलिए अभीष्ट रंग की सामग्री तैयार हो जाने पर उसे बाहर निकाल लेना चाहिए।

रोटो ऑयल (Roto oil) १ ग्राम को उपयुक्त रंग-घोल ५०० ग्राम में डालने पर उसका परिणाम उत्तम आयगा।

सामान को रँग लेने के बाद उसे ऐसेटिक (Acetic) साल्युशन से धो देते हैं, ताकि रंग बैठ जाय और तब उसे सुखा देते हैं। साधारणतः ऐसा नहीं करने पर भी रंग के ठीक रहने में कोई गड़बड़ी नहीं होती।

पूर्ण-क्रिया—रँग लेने के बाद, अगर बाँस की सामग्री की सतह पर कुछ नुकसान हो गया है, तो उसे पॉलिश करनेवाली महीन बालू से पोंछ देना चाहिए। पश्चात् तेल या मोम से पोंछ देने पर उसमें चमक आ जाती है।

कुछ नई आविष्कृत रँगने की विधि

उपर्युक्त विधि ही सामान्यतः व्यवहार में आती है; लेकिन बाँस की सतह पर जब कुछ नुकसान है, तो उन नुकसान स्थानों को गहरे रंग से रँग देते हैं। खास कर जब उन्हें हल्के रंग से रँगा जाता है, तब नुकसान के चिह्न और स्पष्ट हो जाते हैं। इस त्रुटि को दूर करने के लिए उपर्युक्त विधि सर्वोत्तम है और यह बहुतायत से काम में लाई जाती है।

इस विधि में बाँस की सतह पर की पतली परत को, जिसमें मोम भी रहता है, हटा देते हैं। इस परत में क्लोरोफिल (Chlorophyll) होता है, जिसके कारण उसमें रंग ठीक से पकड़ता है। इस विधि की रूप-रेखा नीचे दी जाती है। फूल बाँस, मकोर और चाभ बाँस में यह विधि व्यवहृत होती है। तेल निकालने में सूखी प्रणाली तथा भींगी प्रणाली—दोनों प्रणालियाँ काम में लाई जाती हैं। धूप में सुखा कर साफ किया जाता है।

अल्कली के द्वारा उबालना—पाँच प्रतिशत गाढ़े कास्टिक सोडा के साथ उबाला जाता है। इसके बाद कड़ी कूची से रगड़ा जाता है। इससे बाँस की सतह बहुत ही अच्छी और चिकनी हो जाती है।

अल्कली की शक्ति को क्षीण करने के लिए सामग्री को पतले सल्फ्युरिक एसिड में डुबो दिया जाता है, जिससे इसकी शक्ति क्षीण हो जाती है।

धोना—पानी में डुबोकर एसिड को धो डालते हैं।

सुखाना—धूप में तथा गरमी पहुँचा कर सुखाना चाहिए। ये दोनों विधियाँ ठीक हैं। किन्तु, एसिड से निकालकर और पोंछकर तुरत सुखाना चाहिए।

रँगना—मौलिक रंग से रँगा जाता है। उदाहरण के लिए नीचे की बातों पर ध्यान देना चाहिए —

(क) जल में रंग को घोलकर, छिड़काव करनेवाले यंत्र से उसे सामग्री पर छिड़कते हैं। थोड़ी देर के लिए सामग्री को यों ही छोड़ देते हैं, फिर जल से धो देते हैं।

(ख) सामग्री को रंग के घोल में डुबो देते हैं। जिस समय आटा या पेस्ट इधर-उधर लगा रहे, तभी उनको तुरत रंग देना चाहिए। उसके बाद सामान को जल से धो देते हैं।

(ग) बाँस पर किसी कूची या कलम के द्वारा या रबड़ की डिजइननुमा मुहर के द्वारा रंग से इच्छित डिजाइन बना लेते हैं और कुछ देर के लिए छोड़ देते हैं। उसके बाद अगर उसे गरम करना जरूरी है, तो गरम करके कुछ देर के बाद ठंडा हो जाने पर धो देते हैं और फिर सुखा देते हैं।

(घ) मिश्रित पेस्ट को बाँस पर लगा देते हैं और कुछ देर तक यों ही छोड़ देते हैं। कुछ देर बाद गरम जल में या रंग के घोल में डुबो देते हैं और तब सुखाते हैं।

(ङ) लौंग ऊड एक्सट्रेक्ट तथा पॉली क्रॉमिक एसिड पोटासियम सॉल्युशन के द्वारा काला रंग रँगते हैं।

(च) पिगमेंट के द्वारा भी रँगते हैं।

रंग के द्वारा पूर्ण-क्रिया—बाँस के ऊपर की पतली परत, जो हटा दी जाती है, को पुनः लाने के लिए लैक बार्निश या लाह से पेंट करते हैं। इससे उसमें चमक भी आ जाती है। बाँस के जिस सामान में यह विधि उपयुक्त होती है, उसे स्वतंत्र रूप से रँगे जाने का गुण आ जाता है। इसके अनुसार, किसी भी ऐसे रंग का व्यवहार किया जा सकता है, जिसका अभी तक उस सामान में व्यवहार नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ, बाँस को रंग में रंगने के लिए साधारणतः ३० से ४० मिनट का समय लगता है; लेकिन इस विधि से केवल १५-१६ मिनट का ही समय अपेक्षित है।

लौंग ऊड एक्सट्रेक्ट से रँगने की विधि

(क) **काला** नं० १—सर्वप्रथम सोडियम कार्बोनेट और कास्टिक सोडा के २ प्रतिशत घोल के साथ आधे घंटे तक उबालना चाहिए। उसके बाद उन्हें एक घंटे तक निम्नलिखित घोल के साथ उबालना चाहिए —

लौंग ऊड एक्सट्रेक्ट २० : जल २००—

रँग जाने के बाद सामान को बाहर निकाल लेना चाहिए और जल में धोकर सुखा लेना चाहिए। इस तरीके से रंग खूब गाढ़ा आता है, लेकिन सामान की अपनी चमक नष्ट हो जाती है। चमक बनी रह सके, इसके लिए उसे महीन पॉलिशिंग बालू से पॉलिश कर देना चाहिए और तेल अथवा मोम लगाकर चमक लानी चाहिए। जैसी स्थिति हो, उसके अनुसार, चमक लाने के लिए लाह का भी लेप किया जाता है। लेकिन, तेल या मोम लगाने के बाद लाह से पेंट करना ठीक नहीं होता है।

काला नं० २ —दूसरी विधि से भी बाँस को काले रंग में रँगा जा सकता है। सर्वप्रथम उसे टेनिन एसिड १५ : जल १०० के घोल में १ से २ घंटे तक डुबोये रखते हैं। उसके बाद उसे केल्सियम ऑक्साइड २ : जल २०० के घोल में डुबो देते हैं। फिर, एसिटिक एसिड में (टी० डब्ल्यू० ४ डिग्री) आधे घंटे तक डुबोते हैं। सब के अन्त में उसे आधे घंटे तक लौंग ऊड एक्सट्रेक्ट १० : जल १०० के घोल में उबालते हैं।

गहरा भूरा —बाँस को लौंग ऊड एक्सट्रेक्ट २० : जल २०० के घोल में ४० मिनट तक ६० सेंटीमिटर तापमान पर उबालते हैं, और तब बाहर निकाल लेते हैं। उसके बाद १ प्रतिशत पॉली क्रॉमिक एसिड पोटासियम के गरम घुलन में करीब २० मिनट तक छोड़ देते हैं। इससे रंग भूरा हो जाता है।

डुबोने के विषय में उपर्युक्त बातें जो बताई गई हैं, वह चाभ बाँस के विषय में हैं। दूसरे प्रकार के बाँसों को उनकी त्वचा के कड़ापन के अनुसार कम या अधिक देर तक डुबोये रखते हैं।

रंगों के अतिरिक्त रासायनिक पदार्थों द्वारा रँगना

सिल्वर नाइट्रेट द्वारा रँगाई —साधारण रंग से की गई रँगाई से यह आरगेनिक सॉल्ट द्वारा की गई रँगाई ज्यादा टिकाऊ होती है; लेकिन इसमें एक यह त्रुटि होती है कि उससे मनचाहा रंग आसानी से नही पकड़ता। सिल्वर नाइट्रेट को विधि से हल्का लाल रंग से गाढ़ा भूरा तक का रंग रँगा जा सकता है। बाँस की सतह पर सर्वत्र एक-सा रंग पकड़ सके, इसमें भी थोड़ी कठिनाई होती है; लेकिन कारीगर अगर पटु रहा तो रंग सुन्दर आयगा। इस विधि को कार्यान्वित करने के पहले बाँस से तेल पदार्थ बिलकुल निकाल लेते हैं। इसमें सूखी प्रणाली तथा भींगी प्रणाली—दोनों ठीक होती हैं; लेकिन भींगी प्रणाली और अधिक अच्छी होती है। उसके बाद सतह को रामरज की तरह की एक मिट्टी से पोंछ देते हैं और सिलवर बाथ में डुबोकर सुखा देते हैं तथा धूप में फैला देते हैं। इस विधि को तबतक दुहराते रहते हैं, जबतक कि मनचाहा रंग नहीं आ जाता है।

रंग सर्वत्र एक समान हो, इसके लिए पतला सिलवर बाथ इस्तेमाल करते हैं। इसे सतह पर पतला करके चढ़ा देते हैं और इस कार्य को कई बार दुहराते हैं।

सिलवर नाइट्रेट तथा पॉली क्रॉमिक एसिड पोटासियम से रँगने की विधि— उपर्युक्त ढंग से सिलवर बाथ के बाद सामान को सुखा देते हैं। उसके बाद उनपर पॉली क्रॉमिक एसिड पोटासियम का घोल लगा देते हैं। कुछ देर तक सूखने के लिए छोड़ देते हैं और फिर पानी से धोकर उसे सुखा देते हैं। अगर रंग बहुत पतला आवे तो इसी विधि को बार-बार दुहराना चाहिए। पहले तो सामान लाली लिये भूरा रंग का होगा; लेकिन धीरे-धीरे वह गाढ़ा भूरा हो जायगा।

इस विधि से जो रंग आता है, वह बहुत सुन्दर होता है और फूल रखने की चँगेली को रँगने के लिए यह बहुत उपयुक्त विधि है। लेकिन इस ढंग की रँगाई ज्यादा खर्चीली होती है और अनुभवी कारीगर की अपेक्षा रखती है।

नाइट्रिक एसिड या सल्फ्युरिक एसिड से रँगने की विधि—नाइट्रिक एसिड के अलावा सल्फ्युरिक एसिड भी बाँस रँगने के काम में आता है। नाइट्रिक एसिड बाँस को भूरा या पीला कर देता है और सल्फ्युरिक एसिड उसे काला बना देता है। इस विधि को ऑरगेनिक विधि कहते हैं।

लेप या पिगमेंट से रँगाई—लेप या पिगमेंट से बाँस की सतह का रंग नहीं बदलता, बल्कि उस रंग से बाँस की त्वचा को केवल ढक दिया जाता है। अगर बाँस की त्वचा की रंगत ठीक है, तो उसपर पेंट या पिगमेंट व्यवहार करना कठिन है; क्योंकि बाँस की त्वचा ऐसी रहती है कि उसपर ठीक से ये दोनों चीजें नहीं लगाई जा सकतीं। इसलिए, त्वचा को निकाल देना पड़ता है अथवा सैंड पेपर से उसे रुखड़ा बना देना पड़ता है।

चीना मिट्टी की रँगाई—चीना मिट्टी के साथ सल्फ्युरिक एसिड मिलाकर उसका लेप देकर गरम करना चाहिए। इससे रंग भूरा हो जाता है। अगर लेप गाढ़ा हुआ, तो रंग गाढ़ा काला होगा और पतला हुआ, तो रंग बिलकुल दूसरी किस्म का हो जायगा। नाइट्रिक एसिड और चीना मिट्टी मिलाकर लेप देकर गरम करने पर काला रंग आता है। बाँस का रंग अगर प्राकृतिक या उजला रखना चाहते हैं, तो सामुद्रिक घास (सेवार) को भिंगोकर बाँस पर रखकर गरम करना चाहिए। इससे बाँस का वह भाग, जो घास से ठंडा रहेगा, उजला हो जायगा और शेष भाग का रंग स्वाभाविक ही रह जायगा।

बाँस का रंग उजला बनाने की एक सबसे सरल विधि—गंधक का प्रयोग करके सर्वप्रथम बाँस के छोटे-छोटे टुकड़ों को सकड़ी पर सिलसिले से रखते हैं। उसके बाद उसके नीचे किसी बरतन में गंधक रखकर जलाया जाता है। उस जलते हुए गंधक के धुएँ से वे टुकड़े उजले हो जाते हैं। ५० से ६० ग्राम गंधक एक बोझ बाँस को रँगने में लगता है।

दूसरी विधि—हाइड्रोजन पारॉक्साइड के घुलन में साफ करने की शक्ति है। हाइड्रोजन ऑक्साइड ५ से ८ प्रतिशत होना चाहिए। चौबीस घंटे तक घोल में सामान को डुबोकर रखना चाहिए।

तीसरी विधि—ब्लीचिंग पाउडर और जल तथा थोड़ा-सा सल्फ्युरिक एसिड तीनों के घोल में बाँस को ८ से २४ घंटे तक डुबोये रखना चाहिए। जापान में इसका व्यवहार सर्वत्र होता है।

कृत्रिम ढंग से रँगाई—बाँस की ऊपरी सतह बहुत चिकनी होती है। इस कारण जल्दी उसमें रंग नहीं पकड़ता। उसके नीचे एक दूसरी त्वचा होती है। इस त्वचा में ऐसे स्थान होते हैं, जिनसे होकर हवा नीचे प्रवेश करती है। इस त्वचा को हटा देने से रँगाई आसान हो जाती है।

चिकनी सतह को भी रँगने की कृत्रिम विधि होती है। इसके लिए एक खास तरीका है। एक खास प्रकार का पेस्ट होता है, जो चिकनी मिट्टी २ भाग, पॉलिशिंग पाउडर १ भाग और लाइम १ भाग मिला कर बनता है। इन सबमें नाइट्रिक एसिड मिला देते हैं। फिर, बिनेरे १५ तथा हाइड्रोक्लोरिक एसिड भी मिला देते हैं। इस लेप को बाँस पर चढ़ा देते हैं। इससे बाँस में एक अच्छा ओप आ जाता है।

दूसरी विधि—नाइट्रिक एसिड तथा हाइड्रोक्लोरिक एसिड के सम भाग को मिश्रित कर और उसमें पानी मिलाकर घोल बना लेते हैं। इस घोल को बाँस के भीतरी भाग में प्रवेश कराना चाहिए। इस लेप को फरवरी से अप्रैल महीने तक के समय में काम में लाया जाता है। इसके व्यवहृत होने पर २ से ४ महीने तक में बाँस पर काले धब्बे हो जाते हैं। १० से १२ महीने तक में उसमें लाली आ जाती है तथा दूसरे वर्ष के फरवरी मास तक उजले धब्बे आते हैं, लेकिन उसका रंग बहुत हल्का होता है।

रँगने में कम समय लगे, ऐसी विधि के लिए बाँस की सतह पर प्रतिक्रिया उत्पन्न करनेवाले पदार्थों का प्रयोग करते हैं। इसके लिए मोनोग्रेन नामक रासायनिक पदार्थ को व्यवहार में लाते हैं।

(१) **ऑरगेनिक विधि**—(क) रामरज मिट्टी को सल्फ्युरिक एसिड में मिलाकर चीना मिट्टी के खरल में ठीक से घोंट देते हैं। उनका अनुपात है : मिट्टी ४ भाग, सल्फ्युरिक एसिड १ भाग तथा जल ३ भाग। घोल तैयार हो जाने पर डिजाइन बने भाग को, उजला रखने के लिए, काजू के पेंट से भर देते हैं। फिर, उक्त घोल से पेंट करके सम्पूर्ण बाँस को १०० सें० तापमान के एलेक्ट्रिक चेम्बर में रखकर २० मिनट तक सुखा देते हैं। उसके बाद घोल को धो देते हैं। काजू पेंट को भी सूती कपड़े से पोंछकर हटा देते हैं। हटाने पर डिजाइन बनाया हुआ भाग उजला हो जाता है और शेष भाग काला। तत्पश्चात् सम्पूर्ण भाग पर मोम लगा देते हैं।

नाइट्रेट ऐनामेल पेंट—(ख) डिजाइन बने हुए भाग में ब्रश के सहारे इस पदार्थ को लगाते हैं। इसे घर के अन्दर सूखने को छोड़ देना चाहिए। फिर, उपर्युक्त 'क' में दिया गया घोल सम्पूर्ण भाग में लगा देना चाहिए। तब उसे एलेक्ट्रिक चेम्बर में ८० सें० के ताप में २० मिनट तक रख देना चाहिए। फिर ठंडे पानी से उसे धो देना चाहिए। इसके बाद घोल को थिनर (Thinner) से साफ कर देना पड़ता है। इसका परिणाम उपर्युक्त 'क' वाली विधि के समान ही होगा।

(ग) डिजाइन को काला करने के लिए ऊपर 'क' में दिये गये घोल से डिजाइन भाग को पेंट करते हैं और एलेक्ट्रिक चेम्बर में, १०० तापमान में, २० मिनट तक रख देते हैं। फिर, निकालकर उसे कुछ देर ठंडा होने के लिए रख छोड़ते हैं। ठंडा होने के बाद उसे ठंडे पानी से धो देना पड़ता है। इससे डिजाइनवाला भाग काला और शेष भाग प्राकृतिक रंग का हो जाता है।

(घ) सल्फ्युरिक एसिड के प्रयोग से काला रंग होता है और नाइट्रिक एसिड से भूरा। दोनों के प्रयोग की विधि एक ही है। विधि इस प्रकार है—

बाँस में रेंड़ी-तेल लगाकर पानी में भींगे कपड़े के सहारे आहिस्ते से पोंछ दीजिए। फिर, सल्फ्युरिक एसिड का एक भाग और जल का तीन भाग एक बरतन में मिलाकर एसिड घोल बनाइए और बाँस पर लगा दीजिए, फिर रूई के हल्के स्पर्श से स्वच्छ कर दीजिए, जिससे बाँस में पानी के बुलबुले-जैसे गोल-गोल बिन्दु लग जायँ। फिर, उसे जलती हुई आग में दूर से दिखाइए। इससे बाँस पर काले धब्बे आ जायँगे। जहाँ सल्फ्युरिक

एसिड लगा रहेगा, वहाँ काला धब्बा आ जायगा और जहाँ लेप लगा होगा, वहा पूर्व का रंग रह जायगा।

इस प्रयोग से लाभ यह होता है कि बाँस पर प्राकृतिक ढंग का दाग बन जाता है, जिससे बाँस की सुन्दरता बढ़ जाती है। इससे कलात्मक शिल्प-वस्तुएँ भली भाँति तैयार हो सकती हैं।

रंग करने की अनुभूत विधि और अनुपात—मालकाइट ग्रीन १ ग्राम, पानी ४०० ग्राम तथा एसियाटिक एसिड ५ बूँद। इन सब को मिलाकर १०० से १२० सें० तापमान में २० मिनट तक गरम करें। ४० सें० तापमान पर बाँस को उसमें रख दें और १२० सें० होने पर उसे निकालकर ठंडा होने के लिए छोड़ दें। फिर, ठंडे पानी से धो डालें और धूप में सुखा लें। एसियाटिक एसिड में यह गुण है कि वह रंग को स्थायी बना देता है। उसके बाद उसमें थोड़ा-सा एसिडम एसिटिकम (Acidum Aceticum) और ग्लेशियल एसिटिक एसिड (Glacial Acetic Acid) करीब १० ग्राम लेकर ठीक से मिलाकर उस बरतन को एक बड़े पात्र में रख दें। जब तापमान ४० सें० हो जाय, तब सामान को उसमें रखें। तापमान को १०० सें० तक पहुँचने की हालत में २० मिनट तक छोड़ रखें। पानी और सूख जाय, तो उसमें पुनः थोड़ा पानी दे दें। फिर, सामान को निकाल-कर ठंडा होने के लिए छोड़ दें। उसके बाद सामान को ठंडे पानी से धोकर फिर कपड़े से पोंछ दें, एवं सामान को धूप अथवा विद्युत्-चेम्बर में रख दें। कमरे में रखने पर तीन दिनों के लिए छोड़ दें। सामान में जलीय अंश १५ प्रतिशत अवश्य रह जाना चाहिए, नहीं तो इससे अधिक घट जाने पर सामान फट जायगा।

जिस बरतन में रासायनिक पदार्थ रखा जाता है, उसे एसेटिक एसिड में पानी मिलाकर साफ करना चाहिए। इस काम के लिए थिनर और अल्कोहल भी व्यवहार कर सकते हैं। थिनर में बेंजल अल्कोहल, बुटल अल्कोहल नार्मल (Benzyl Alcohol, Butyl Alcohol normal) तथा इथेल एसिटेट (Ethyl Acetate) मिले होते हैं।

बिस्मार्क (भूरा)—इसकी विधि वही है, जो उपर्युक्त 'दूसरी विधि' नामक शीर्षक में वर्णित है। बाँस का वजन ३८ ग्राम रहने पर बिस्मार्क ०.३८ ग्राम होना चाहिए। पहले थोड़ा पानी मिलाकर ठीक से घोल दें। फिर, अधिक पानी मिलाकर बाद में एसेटिक एसिड १० ग्राम मिलावें। बाद में उसे हीटर पर रखकर उसमें बाँस को ४० सें० तापमान में रख दें। २० मिनट तक इस हालत में रखने के पश्चात् उसे निकालकर थोड़ी देर के लिए ठंडा होने के लिए छोड़ देना चाहिए। फिर, पानी से धोकर कपड़े से पोंछ देना पड़ता है।

औरामिन—बाँस के सामान को रँगने की व्यावहारिक विधि वही है, जो विधि कपड़े के रँगने के काम में लाई जाती है। सर्वप्रथम बाँस के सामान का वजन ले लेते हैं। अगर बाँस का सामान १०० ग्राम हुआ, तो रासायनिक रंग १ ग्राम होगा। उसके बाद ओरामिन (पीला) एक बरतन में लेकर उसमें थोड़ा-सा पानी डालकर किसी बाँस या लकड़ी से उसे पूर्ण रूप से मिला लेना चाहिए। फिर, उसमें सामान को डुबो

देना चाहिए। सामान को समतल रूप में डालना आवश्यक है, लम्ब रूप में नहीं। बाद, बरतन को हीटर पर रखकर ४० सें० तापमान में २० मिनट तक बाँस को रखने के बाद निकाल लेना चाहिए। थोड़ी देर तक ठंडा होने के लिए छोड़ देना चाहिए। तत्पश्चात् बाँसों को निकालकर पानी से धोकर कपड़े से पोंछना चाहिए।

रोडामिन (लाल) —इसमें भी उपर्युक्त विधि ही व्यवहृत होती है। बाँस का वजन अगर ३८ ग्राम हो, तो रोडामिन ०.३ से ८ ग्राम तक होना चाहिए। पहले थोड़ा पानी देकर ठीक से मिला लेना पड़ता है। तब अधिक पानी देकर फिर एसेटिक एसिड १० ग्राम मिलाया जाता है। पानी पोंछकर उसे हीटर पर रखकर ४० सें० तापमान में बाँस के सामान को रख दें। १०० सें० तापमान चढ़ जाने के बाद सामान को निकाल-कर उसे कुछ देर तक यों ही छोड़ दें और फिर ठंडे पानी से उसे धोकर कपड़े से पोंछ देना पड़ता है।

मिश्रित रंग रोडामिन (लाल) और औरामिन (पीला)=नारंगी —बाँस अगर ३८ ग्राम हो, तो ऊपर के दोनों रंगों का मिला हुआ भाग ०.३८ ग्राम होना चाहिए। उसमें पहले थोड़ा जल देकर घोल बना लेना चाहिए, फिर अधिक पानी देना चाहिए। उसके बाद एसेटिक एसिड १० ग्राम मिलाना चाहिए। पात्र के बाहरी भाग के जल को पोंछ देना चाहिए। फिर, उसे हीटर पर रखना उचित है, जब तापमान ४० सें० हो। १० मिनट में तापमान १०० सें० हो जायगा। उसके बाद उसमें सामान रखकर २० मिनट तक यों ही छोड़ देना चाहिए। पश्चात् बाहर निकालकर कुछ देर ठंडा होने दीजिए। पीछे ठंडे पानी से धोकर सूखने के लिए रख दीजिए।

औरामिन और मालकाइट ग्रीन —बाँस का वजन ३८ ग्राम होने पर ऊपर के दोनों रंगों का बराबर-बराबर भाग, ०.३८ ग्राम, होना चाहिए। उसमें थोड़ा जल मिलाकर घोल बना लें और बाद में अधिक पानी मिला दें। उसके बाद एसेटिक एसिड १० ग्राम मिलाकर पात्र के बाहरी भाग से पानी पोंछ देना चाहिए। फिर, उसे हीटर पर रखना चाहिए, किन्तु इसे ४० सें० से अधिक तापमान पर नहीं रखते हैं। वैसा होने पर सामान के फट जाने की आशंका रहती है।

मौलिक रंग

बाँस के लिए यह मौलिक रंग बहुत अच्छा रंग होता है। इसके अतिरिक्त एसिड से रँगाई तथा प्रत्यक्ष रँगाई भी होती है।

प्रयोग की कुछ विधियाँ —

	रंग	अनुपात	जल	नमक	तापमान	समय
१.	विस्मार्क (भूरा) रोडामिन (लाल)	दोनों १-१ ग्राम	२०० सी०सी०	बहुत थोड़ा	६० सें०	५ मिनट

	रंग	अनुपात	जल	नमक	तापमान	समय
२.	बिस्मार्क ब्राउन	०.२ ग्राम सी०सी०	२००	बहुत थोड़ा	६० सें०	५ मिनट
	मालकाइट ग्रीन	०.०६ ,, ,,	,,	,,	,,	,,
३.	डाइरेक्ट : काला	०.०२ ,,	,,	,,	,,	,,
४.	मालकाइट ग्रीन : हरा		,,	,,	,,	,,

कमचियाँ रँगने के कुछ मौलिक रंगों के अँगरेजी नाम

क्रम-सं०	रंग			१.५ प्रतिशत	०.२ प्रतिशत
१.	Crystal Violet (क्रिस्टल वायलेट)		,,	,,	,,
२.	Crystal Violet ,, ,,	$(\frac{1}{6})$	,,	,,	,,
	Fuchsine (फूकसिन)	$(\frac{5}{6})$			
३.	Fuchsine ,,		,,	,,	,
४.	Fuchsine ,,	$(\frac{1}{3})$	,,	,,	,,
	Safranine (सेफरेनिन)	$(\frac{2}{3})$			
५.	Rhodamine B Conc. (रोडेमिन)		,,	,,	,,
६.	Safranine OK (सैफरेनिन)		,,	,,	,,
७.	Safranine OK (सैफरेनिन)	$(\frac{1}{2})$			
	Chrysoidine Powder (क्रिस्वायडिन पाउडर)	$(\frac{1}{2})$	,,	,,	,,
८.	Safranine OK (सैफरेनिन)	$(\frac{1}{2})$			
	Auramine O (औरामिन)	$(\frac{1}{2})$	,,	,,	,,
९.	Crysoidine Powder (क्रिस्वायडिन पाउडर)		,,	,,	,,
१०.	Bismark Brown G Conc. (बिस्मार्क ब्राउन)		,,	,,	,,
११.	Auramine O (औरामिन)	$(\frac{2}{3})$			
	Bismark Brown G Conc. (बिस्मार्क ब्राउन)	$(\frac{1}{3})$	,,	,,	,,
१२.	Auramine O (औरामिन)	$(\frac{2}{3})$			
	Acridine Orange RO (एक्रिडिन औरेन्ज)	$(\frac{1}{3})$	,,	,,	,,
१३.	Auramine O (औरामिन)		,,	,,	,,
१४.	Malachite Green (मालकाइट ग्रीन)	$(\frac{1}{20})$			
	Auramine O (औरामिन)	$(\frac{19}{20})$	,,	,,	,,
१५.	Malachite Green (मालकाइट ग्रीन)	$(\frac{1}{6})$			
	Auramine O (औरामिन)	$(\frac{5}{6})$	,,	,,	,,
१६.	Malachite Green (मालकाइट ग्रीन)	$(\frac{1}{3})$			
	Auramine O (औरामिन)	$(\frac{2}{3})$	,,	,,	,,

क्रम-सं०	रंग		१·५ प्रतिशत		प्रतिशत ०·२
१७.	Malachite Green (मालकाइट ग्रीन)	(1/2)			
	Auramine O (औरामिन)	(1/2)	,,	,,	,,
१८.	Brilliant Green GX (ब्रिलियेण्ट ग्रीन)		,,	,,	,,
१९.	Malachite Green (मालकाइट ग्रीन)		,,	,,	,,
२०.	Brilliant Cyanine 6 GX (ब्रिलियेण्ट स्यानिन)		,,	,,	,,
२१.	Brilliant Cyanine 6 GX (ब्रिलियेण्ट स्यानिन)	(1/2)			
	Methylene Blue (मेथेलीन ब्लू)	(1/2)	,	,,	,,
२२.	,, ,, ,,		,,	,,	,,
२३.	Victoria Blue B Conc. (विक्टोरिया ब्लू)	(1/3)	,,	,,	,,
२४.	,, ,, ,,				
	Crystal Violet (क्रिस्टल वायलेट)	(2/3)	,,	,,	,,

बाँस रँगने के कुछ मौलिक रंग

क्रम-सं०	रंग		१ प्रतिशत
२५.	Auramine O (औरामिन)		
२६.	Auramine O ,,	(5/6)	
	Acridine Orange RO (एक्रिडिन आरेञ्ज)	(1/6)	,,
२७.	,, ,, ,, ,, ,,		,,
२८.	Bismark Brown G Conc. (बिस्मार्क ब्राउन)		,,
२९.	Chrysoidine Powder (क्रिस्वायडिन पाउडर)		,,
३०.	Bismark Brown G Conc. (बिस्मार्क ब्राउन)	(10/20)	
	Malachite Green (मालकाइट ग्रीन)	(1/20)	,,
३१.	Fuchsine (फूकसिन)	(1/3)	
	Safranine OK (सैफरेनिन)	(2/3)	,,
३२.	,, ,, ,,		,,
३३.	Rhodamine B Conc. (रोडेमिन)		,,
३४.	Safranine OK (सैफरेनिन)	(1/2)	
	Auramine O (औरामिन)	(1/2)	,,
३५.	Safranine OK (सैफरेनिन)	(1/2)	
	Chrysoidine Powder (क्रिस्वायडिन पाउडर)	(1/2)	,,
३६.	Bismark Brown G Conc. (बिस्मार्क ब्राउन)	(17/20)	
	Methyl Violet (मिथेल वायलेट)	(3/20)	,,
३७.	Fuchsine (फूकसिन)		,,

क्रम सं०	रंग		१ प्रतिशत
३८.	Crystal Violet (क्रिस्टल वायलेट)	($\frac{1}{6}$)	
	Fuchsine (फ़ूकसिन)	($\frac{5}{6}$)	,,
३९.	Crystal Violet (क्रिस्टल वायलेट)		,,
४०.	Victoria Blue B Conc. (विक्टोरिया ब्लू)	($\frac{1}{3}$)	
	Crystal Violet (क्रिस्टल वायलेट)	($\frac{2}{3}$)	,,
४१.	Victoria Blue B Conc. (विक्टोरिया ब्लू)		,,
४२.	Methylene Blue SGN (मेथीलिन ब्लू)		,,
४३.	Auramine O (औरामिन)	($\frac{24}{25}$)	
	Malachite Green (मालकाइट ग्रीन)	($\frac{1}{25}$)	,,
४४.	Auramine O (औरामिन)	($\frac{17}{18}$)	
	Malachite Green (मालकाइट ग्रीन)	($\frac{1}{18}$)	,,
४५	Auramine O (ओरामिन)	($\frac{5}{6}$)	
	Malachite Green (मालकाइट ग्रीन)	($\frac{1}{6}$)	,,
४६.	Auramine O (औरामिन)	($\frac{2}{3}$)	
	Malachite Green (मालकाइट ग्रीन)	($\frac{1}{3}$)	,,
४७.	,, ,, ,, ,,		,,
४८.	Brilliant Cyanine 6 GX (ब्रिलियेण्ट स्यानिन)		,,

बाँस रँगने के कुछ मौलिक एसिड

४९.	Rocelline NS Conc. (रासेलिन)	१ प्रतिशत
५०.	Acid Phlexine P Conc. (एसिड फ्लेक्सिन)	,,
५१.	Eosine G (इओसिन)	,
५२.	Silk Scarlet (सिल्क स्कारलेट)	,,
५३.	Acid Orange II (एसिड आरेन्ज)	,,
५४.	Methyle Orange (मेथेल औरेन्ज)	,,
५५.	Acid Violet 5 BN (एसिड वायलेट)	,,
५६.	Soluble Blue (सॉल्युबुल ब्लू)	,,
५७.	Nigrosine (निग्रोसिन)	,,
५८.	Acid Blue Black 10 B (एसिड ब्लू ब्लैक)	,,
५९.	Brilliant Milling Green (ब्रिलियेण्ट मिलिंग ग्रीन)	,,
६०.	Metanil Yellow (मेटानिल येलो)	,,

बाँस रँगने के कुछ प्रत्यक्ष (Direct) रंग

६१.	Japanol Brown M (जापानोल ब्राउन)	१ प्रतिशत
६२.	Nippon Fast Red BB Conc. (निपन फास्ट रेड)	,,

क्रम-सं०	रंग	१ प्रतिशत
६३.	Direct Brilliant Rose BD Conc. (डाइरेक्ट ब्रिलियेण्ट रोज)	,,
६४.	Direct Scarlet B (डाइरेक्ट स्कारलेट)	,,
६५.	Nippon Orange R Conc. (निपन आरेञ्ज)	,,
६६.	Chrysophenine G Conc (क्रीसोफेनिन)	,,
६७.	Japanol Fast Black Conc. (जापानोल फास्ट ब्लैक)	३ प्रतिशत
६८.	Direct Sky Blue 6 BK (डाइरेक्ट स्काई ब्लू)	१ प्रतिशत
६९.	Nippon Dark Green B Conc. (निपन डार्क ग्रीन)	,,
७०.	Direct Brown KGG (डाइरेक्ट ब्राउन)	,,
७१.	Nippon Brown 3 G (निपन ब्राउन)	,,
७२	Direct Brown RG (डाइरेक्ट ब्राउन)	,,

(चित्र १३४)

कृत्रिम तरीके से बाँस को विभिन्न रूप देना

इच्छानुकूल बाँस तैयार करना—कोठ में जब पहले बाँस निकलता है और लगभग दो फीट का हो जाता है, तभी अलग से बने लकड़ी या धातु के त्रिकोण, चतुष्कोण अथवा षट्कोण (यानी इच्छित आकृति के) साँचे को उस छोटे बाँस में पहना देते हैं। एक साथ मनोनुकूल कई साँचे बनाकर रख लेते हैं। जैसे-जैसे बाँस बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे साँचे को अँगूठी की तरह एक-पर-एक रखकर बाँस में पहनाते जाते हैं। इसका प्रदर्शन चित्र १३४ में किया गया है। इस विधि से ऊपर तक बाँस की आकृति इच्छित साँचे के रूप में बनकर तैयार हो जाती है। ऐसे बाँस कर्मचियों के काम में नहीं आते हैं। इनसे अधिकतर फ्रेमवाले काम लिये जाते हैं—जैसे, लैम्प-स्टैंड, बेंच के साँचे, दरवाजे या खिड़की की चौखट, टेबुल के ढाँचे आदि। इसके अतिरिक्त जहाँ-तहाँ लकड़ी को चीरकर तिकोन, चौकोन आदि बने सामानों का व्यवहार होता है, वहाँ-वहाँ ऐसे बाँसों का प्रयोग हो सकता है।

बाँस के ऊपर प्रकृतिगत दागों की तरह ही कृत्रिम रूप से दाग बनाना—कोठ (झाड़ी) में
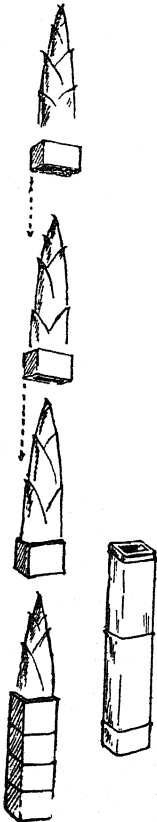
बाँस जब लगभग एक साल का हो जाय, तब उसके ऊपर जहाँ-तहाँ नाइट्रिक एसिड अथवा सलफ्युरिक एसिड का छींटा दे देना चाहिए या कपड़े अथवा किसी पदार्थ से किसी तरह का कुछ रूप देना चाहिए। उसके दो वर्ष बाद आप देखेंगे कि अपने-आप बाँस के ऊपर विभिन्न प्रकार के सुन्दर अलंकार बन गये हैं। ऐसे बाँसों को कलापूर्ण ईप्सित वस्तुओं के बनाने में व्यवहार करते हैं। बाँस के ऊपर के ऐसे कृत्रिम दाग प्राकृतिक रूप धारण कर सकते हैं। ऐसे बाँसों की बनी सामग्री से कलापूर्ण और सुन्दर-से-सुन्दर चीजें तैयार की जा सकती हैं। जैसे—सिगरेट-बक्स, सिगरेट की राख झाड़ने के पात्र, दियासलाई रखने के पात्र, टेबुल-लैम्प-स्टैंड आदि।

बाँस के ऊपर अलंकरण करना और रंग देना—इस विधि के अनुसार बाँस के ऊपर पहले पाराफिन नामक रसायन से अलंकार का रूप बना लेते हैं। बाद, हाइड्रोलिक ऑक्साइड एसिड को बाँस पर लगा देते हैं और कुछ क्षण सूखने के लिए छोड़ देते हैं, पश्चात् पाराफिन को हटा लेते हैं। पाराफिन जिस-जिस स्थान पर लगा रहता है, वहाँ अलंकार के रूप में बाँस का स्वाभाविक रंग रह जाता है और शेष स्थानों में दूसरा रंग हो जाता है। इसमें खूबी यह है कि चित्रांकणवाले स्थान पर बाँस का प्राकृतिक रंग ही हम पाते हैं।

चतुर्थ भाग

बाँस के विविध व्यावहारिक कार्य

पिंजड़ा

पिंजड़ा-बुनाई—पिंजड़ा-बुनाई का अपना विशेष स्थान है। इस बुनाई में पिंजड़े के पेंदे तथा पार्श्व की बुनाई एक ही प्रकार से होती है।
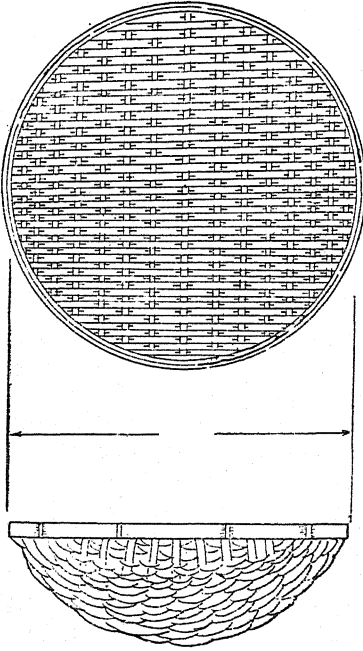
पिंजड़ा-बुनाई द्वारा तैयार काम निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं—

(क) गोल मुँहवाले कटोरे के आकार का।

(ख) एक सिरे पर गोलाकार बुना रहता है; लेकिन दूसरे सिरे पर मुँह बना रहता है।

(ग) पिंजड़े और टोकरी का विशेष अन्तर समझना कठिन है।

लेकिन, पिंजड़ा भींगे सामान को रखने के लिए होता है और टोकरी सूखी वस्तु रखने के लिए। अन्न रखने के लिए जो टोकरी बनाई जाती है, उसकी बुनाई त्रिभुजाकार होनी चाहिए, जिससे उसमें अन्न के दाने अटक नहीं जायँ। पिंजड़ा-बुनाई की मूलभूत बातें तृतीय भाग के प्रारम्भ में द्रष्टव्य हैं।

(चित्र १३५)

गोल झुरी या छैंटी

गोल झुरी चित्र १३५ और १३६ में प्रदर्शित है। इसका अनेक कामों में व्यवहार किया जाता है।
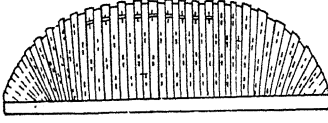
(चित्र १३६)
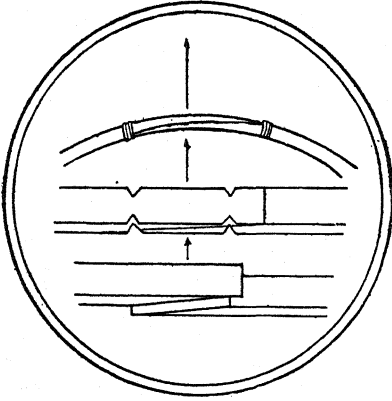
(चित्र १३७)
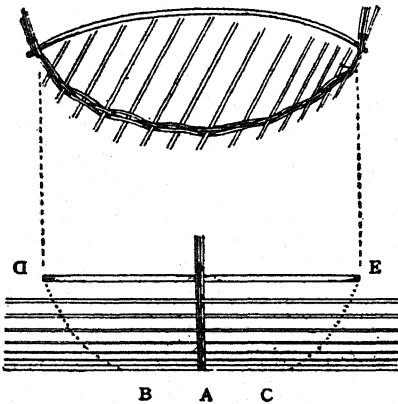
(चित्र १३८)

जालीदार गोल झुरी बालू या पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़ों के रखने के लिए व्यवहार में लाई जाती है। इस कारण यह मजबूत बनाई जाती है। सुन्दर और घनी बुनावट-वाली झुरी चावल या गेहूँ रखने के काम में भी आती है।

झुरी की बुनावट—सर्वप्रथम किनारे का घेरा (रिंग, चित्र १३७) बनाते हैं। फ्रेम के सामान को अलग रख देते हैं और तब बुनाई के सामान से बुनना आरम्भ करते हैं। अनेक स्थानों पर बुनाई के सामान लगाते हैं और किनारे का घेरा पूरा करते हैं। इस बुनाई में बाँस को दो हिस्से में फाड़कर उसे फ्रेम के दोनों ओर लगाकर मढ़ते हैं।

बनाने की विधि इस प्रकार है—

(क) किनारे पर के घेरेवाले सामान से घेरा बनाते हैं। इस घेरे की लम्बाई करीब ३ फुट होती है। दोनों छोरों को मिलाकर बाँध देते हैं और दोनों के जोड़ पर अँगरेजी अक्षर V की शक्ल में काटते हैं—जैसा चित्र १३८ में प्रदर्शित है। उसके बाद मजबूत तार अथवा डोरी से बाँध देते हैं।

(ख) जब गोल झुरी बनानी हो, तब सर्वप्रथम उसके मध्य भाग से बुनाई शुरू करनी चाहिए। इसे ३ से ५ कमचियों तक बुनकर चित्र १३८ में प्रदर्शित ढंग से उसका छोर लगा देना चाहिए। झुरी की गहराई को ठीक से संतुलित कर लेना चाहिए। ऐसी अवस्था में फ्रेम के सामान की संख्या विषम होगी ही।

जालीदार झुरी

इसकी बुनाई भी झुरी के ढंग की होती है और फ्रेम के सामान एक ऊपर, एक नीचे करके तब बुनाई का सामान लगाते हैं। चित्र १३८ के नीचे में दिखाये गये प्रथम A और B वाले पार्श्व बुनते हैं और तब C और D वाले पार्श्व। किनारे के घेरे के निकट बुनाई के सामान को पीछे की ओर मोड़ देते हैं और उसका त्वचावाला भाग ऊपर की ओर रखते हैं। बुनाई की कमची को प्रत्येक पाँच से दस कमचियों पर मोड़ दिया जाता है।

(चित्र १३९)

बुनाई की कमचियाँ चौड़ी या पतली—दोनों तरह की ठीक होती हैं, लेकिन फ्रेम की कमचियों के अनुसार उनका संतुलन कर लिया जाता है।

भात छानने के लिए चाभ बाँस से बनी टोकरी की बुनाई तथा फ्रेम की कमचियाँ उसी आकार की होती हैं; लेकिन बुनाई और फ्रेम की कमचियाँ समानान्तर होती हैं।

झुरी के मध्य भाग में जब बुनाई की कमची जोड़नी होती है, तब जोड़ के स्थान पर बाँस को चार भागों में बाँटकर उसके मिले हुए रूप से बुनते हैं। अन्यथा, जोड़े गये भाग से टोकरी के टूट जाने की आशंका रहती है।

झुरी का पेंदा चित्र १३५ में प्रदर्शित ढंग से बुना जाता है।

गोलाकार भाग को बुनने की विधि—चित्र १३८ के
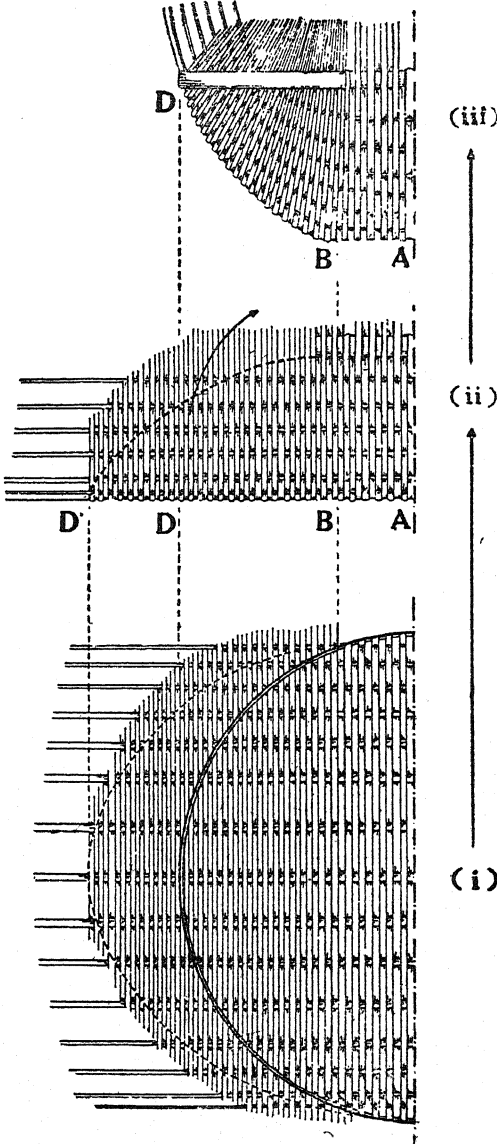
B, C, D और E भाग वक्र गोलाकार भाग कहलाते हैं। इस भाग में व्यवहृत होने-वाली बुनाई की कमचियाँ पेंदे की ओर से जरा पतली रहती हैं। करीब दो फुट तक अधिक कसकर बुनते हैं। उसके बाद गोलाकार बुनाई आती है। इस बुनाई के समाप्त हो जाने पर बुनाई के छोटे-छोटे सामान व्यवहृत होते हैं और किनारे के घेरे पर उसे मोड़ने की जरूरत नहीं होती।

यह बुनाई चित्र १३६ के प्रथम और द्वितीय भाग में प्रदर्शित ढंग से समाप्त होती है। बुनी हुई झुरी के कटे भाग में कमची को किनारे के घेरे तक घुसेड़ देते हैं और झुरी के आधार तक बढ़ा देते हैं।

फ्रेम की कमचियाँ लगाना—पूर्व के पृष्ठ ११० में दी गई विधि के अनुसार फ्रेम की कमची को बुनाई की कमची में, किनारे के घेरे के घुमाव के बाद, लगा देते हैं। इसी समय फ्रेम की कमची को संतुलित कर झुरी का आकार ठीक कर लेते हैं। पश्चात्, झुरी की बुनाई की कमची के बाकी बचे भागों को काट डालते हैं और गोल झुरी तैयार हो जाती है, लेकिन उसका किनारा पूरा नहीं हुआ रहता है।

किनारे को पूरा करना—इस झुरी का किनारा खास ढंग से, घुमावदार तरीके से बनाया जाता है। यह विधि अन्य तरीकों से सरल है और बहुतायत रूप से इसी का व्यवहार किया जाता है। नीचे उसकी विधि बताई जाती है—

चित्र १३८ में दिखाया गया है कि सिरे का घेरा किनारे के घेरों के बीच में रखा जाता है। घेरों के जोड़े हुए भाग को उत्तम बनाना महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। यह निम्नलिखित प्रकार से बनाया जाता है—

प्रत्येक घेरे के सिरे को इस प्रकार छीलकर मिला देते हैं कि जिससे वह भाग भी अन्य भागों के समान ही गोलाकार हो जाता है। तब उसे झुरी से संयुक्त कर देते हैं, लेकिन पहले घेरे को मध्य भाग में लगाना आरम्भ किया जाता है और अन्त में जोड़े हुए भागों को बाँधा जाता है। बाँधते समय इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि वे भाग समान दूरी पर बाँधे जायँ। दो घुमाव बाँधकर तार को मढ़ देते हैं।

सिरे और किनारे के घेरे एक ही बाँस के बनाये जाते हैं। घेरों की गिरहों का सिलसिला ठीक रहने से वस्तु देखने में अच्छी लगती है।

गोलाकार झुरी के लिए सामान—गोलाकार झुरी का आकार किनारे के घेरे के आकार तथा फ्रेम की सामग्री की संख्या पर निर्भर करता है। वस्तु बनाते समय ही, बाँस के भेद से, आकार में होनेवाले भेद का पता चल जाता है और उसके अनुसार साधारण कमी-बेशी की जाती है।

भात रखने की टोकरी

यह टोकरी झुरी की बुनाई के ढंग से बुनी जाती है। इस टोकरी में गरमी के दिनों में भात रखते हैं और उसे किसी ठंडे स्थान में रख देते हैं, जिससे भात बासी न हो जाय। इसमें रख देने से भात में हवा लगती रहती है, इसलिए भात ज्यादा देर तक अच्छा

बना रहता है। अगर भात को ज्यादा देर रखना है, तो उसे ऐसी ही टोकरी में रखना चाहिए। यह टोकरी भोजन की सामग्री, आलू आदि के बीज, मिठाई की टिकिया आदि को सुरक्षित रखने में व्यवहृत होती है।

सामान्यतः यह फूल पेंदा-बुनाई से तैयार की जाती है। झुरी पेंदा-बुनाई से टोकरी बनाने की अवस्था में इसका आकार पहलदार या कटोरे के आकार का हो जाता है।
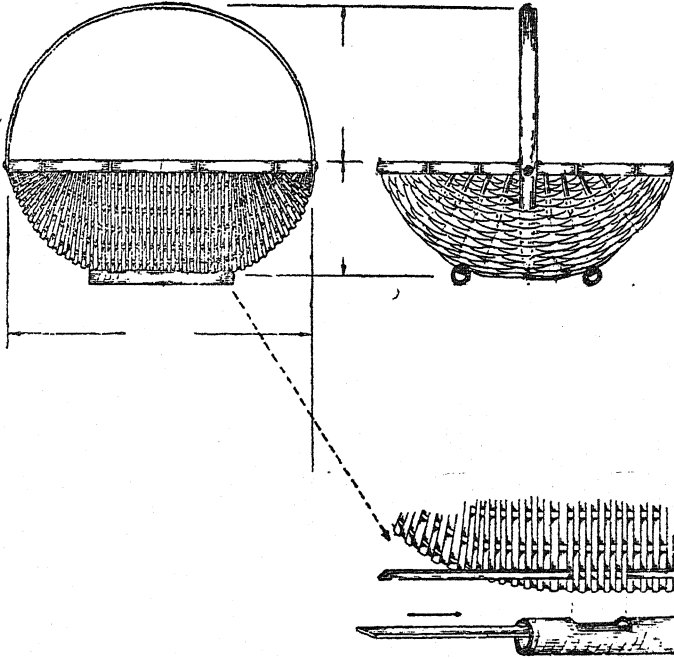
(चित्र १४०)

कटोरेवाले आकार की टोकरी अधिक सुविधाजनक होती है। यह चित्र १४० में प्रदर्शित है। भात की टोकरी बनाना बहुत आसान होता है। यह करीब-करीब गोल टोकरी के ही समान होती है। लेकिन, इसे प्रतिदिन धोया जाता है, और तब भात रखने के काम में यह लाई जाती है। इस कारण, इस बात की सावधानी बरती जानी चाहिए कि यह अच्छे सामानों से बनाई जाय। मुट्ठा तथा ढक्कन लगा देने से यह और सुविधाजनक हो जाती है।

बनावट—सर्वप्रथम किनारे पर घेरा बनाना चाहिए। अगर उसका आकार वृत्ताकार से अधिक वर्गाकार के समान हो, तो गोलाकार टोकरी बुनकर उसके बाद किनारा पूरा करना चाहिए। मुट्ठा लगाने से उसके पीछे के जुड़े हुए भाग छिप जाते हैं। फ्रेम बनानेवाली सामग्री का व्यवहार उत्तम होता है।

पाँव लगाना—चित्र १४० में प्रदर्शित ढंग से दो पाँव लगाने चाहिए। पाँवों का व्यास १ इंच से १ इंच तक होता है, और उसकी लम्बाई ५ से ७ इंच होती है।

किन्तु, टोकरी के आकार के अनुसार ही उसके पाँव का व्यास होना चाहिए। पाँव के इस बाँस को, जहाँ वह टोकरी के पेंदे से मिलता है, उतनी दूर तक काट डालते हैं और उनके भीतर फाड़ा हुआ बाँस लगाकर टोकरी के पेंदे के साथ घुसेड़ देते हैं। इसे चित्र १४० के निचले भाग में दिखाया गया है। अगर पाँववाले बाँस का वह भाग नहीं काटा जायगा, तो पेंदे पर पाँव ठीक से नहीं बैठ सकेगा।

मुट्ठा बनाना—आधा इंच चौड़ा और मुँह की तिगुनी लम्बाईवाला चीरा हुआ बाँस ठीक से छीला जाता है और सिरों पर मोड़कर पतला कर दिया जाता है। उसके बाद इस मुट्ठे को टोकरी के जाल में घुसेड़ देते हैं और सिरे पर काँटी ठोक देते हैं। बाद, काँटी को भीतर में मोड़ देते हैं। इस प्रकार, मुट्ठा मजबूत हो जाता है।

ढक्कन—ढक्कन भी फूल-पेंदा, जालीदार अथवा सादा बुनाई से तैयार किया जाता है। किन्तु. इस भाग में साधारण जालीदार बुनाई के विषय में बताया गया है। इस विधि के अनुसार गोल बाँस, जिसकी लम्बाई टोकरी के व्यास से थोड़ी-सी अधिक होती है और चौड़ाई १/८ इंच से ३/१६ इंच तक होती है, ५०, ६० भागों में विभक्त कर दिया जाता है। इन भागों को ४ से ५ भागों में, पूरी लम्बाई में, बुन लिया जाता है। ढक्कन के सिरे पर १/४ इंच से ३/८ इंच चौड़े बाँस व्यवहृत होते हैं।

चावल धोनेवाली टोकरी

इस टोकरी का व्यवहार धोये हुए चावल से पानी को निकालने में होता है। इसकी बनावट सिवा मुँह को छोड़कर अन्य गोलाकार टोकरियों के समान ही होती है।

बाँस की कमचियों की भिन्नता पर इस टोकरी की भिन्नता भी निर्भर करती है। यह चाभ बाँस और दूसरे प्रकार के बाँसों की भी बनाई जाती है। इन भिन्न प्रकार के बाँसों से बननेवाली टोकरियों की बनावट में बहुत थोड़ा फर्क होता है।

चाभ बाँस की टोकरी—इसका मुँह फ्रेमवाली कमची लगाने की विधि के समान ही बनाया जाता है, जो पहले बताया जा चुका है। इसका किनारा मढ़कर पूरा किया जाता है। इसकी बनावट की कुछ आवश्यक ज्ञातव्य बातें नीचे दी जाती हैं—

(क) मुँह की तरफ की बुनाई खत्म हो जाने पर अन्त के बाँस की कमची मुँह पर रख देते हैं और सिरे को मोड़कर बुनावट में घुसेड़कर फ्रेमवाली कमची लगाते हैं। अन्त में किनारा बनाने की कमची से किनारा तैयार किया जाता है।

(ख) इसका दूसरा पार्श्व भी गोल टोकरी के समान ही होता है।

(ग) किनारा बनाने का काम मढ़कर पूरा करते हैं।

चाभ बाँस की बनी सुपलियाँ—चावल रखनेवाली सुपली देखने में बहुत सुन्दर तथा व्यवहार में बहुत ही सुविधाजनक होती है। इसके बनाने में चाभ बाँस का व्यवहार होता है। सिर्फ किनारे का घेरा मुलायम बाँस का बनाया जाता है। ४ या ५ सुपलियाँ एक सेट में लगा दी जाती हैं। किनारा वेणी के रूप में बुनकर पूरा किया जाता है।

पूर्व की टोकरियों से कुछ विभिन्न बातें —

(१) बुनाई के सामानों को खास ढंग से बनाया जाता है।
(२) बुनाई की विधि में थोड़ा परिवर्त्तन करना पड़ता है।
(३) किनारा वेणी के रूप में पूरा किया जाता है।

चावल धोनेवाली टोकरी के बाँस के विषय में —बुनाई के कार्य के लिए दो या तीन वर्ष पहले के चाभ बाँस का व्यवहार इसमें किया जाता है और मढ़ाई के काम के लिए एक वर्ष पुराना बाँस का। फ्रेम की सामग्री करीब ६-६ फुट की होती है। इस कारण, टोकरी ६ फुट लम्बे बाँस से बनाई गई कमचियों से ही तैयार होती है।

बाँस को फाड़ने के लिए दुहरी धारवाली छुरी काम में लाई जाती है; लेकिन अनुभवी कारीगर चित्र २१ 'घ' (पृ० ६४) में प्रदर्शित छोटी छुरी को भी काम में लाते हैं और वे फाड़े हुए सामान को त्रिभुजाकार बनाते हैं। यह टोकरी त्रिभुजाकार ही बनाई भी जाती है। इन सामानों से बनी टोकरी में धोया हुआ चावल नहीं सटता।

चाभ बाँस को ऐसा रूप प्रदान करना बहुत कठिन होता है। मढ़ाई का काम एक वर्ष पुराने बाँस की सामग्री से होता है, जो फाड़कर जमा करके रखी जाती है। मढ़ाई का काम करते समय सामान को तीन भागों में विभक्त कर लेते हैं, उसके पूर्व कई दिनों तक उसे पानी में फूलने के लिए रखते हैं।

किनारे के घेरे का निर्माण —गोलाकार झुरी भी इस गोल टोकरी के समान ही बनाई जाती है। अगर उपयुक्त बाँस नहीं मिले, तो इन दोनों के घेरे के निर्माण में मकोर बाँस के निचले भाग से बनी सामग्री का व्यवहार करना चाहिए।
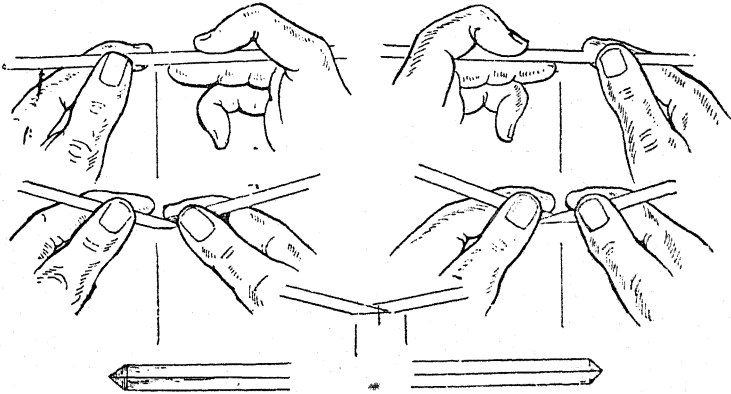
(चित्र १४१)

फ्रेम की कमची को मोड़ना—झुरी को उसके मुँह की ओर से बुनते हैं। सभी फ्रेमवाली कमचियों को मोड़कर दोनों भागों को एक दूसरे के समानान्तर रूप में बना लेते हैं, जैसा चित्र १४१ में दिखाया गया है। फ्रेम की कमचियों का त्वचा-वाला भाग बाहर की ओर रखकर मोड़ते हैं। यह भी इसी चित्र के नीचे अँगरेजी अक्षर एक्स X चिह्नित भाग में दिखाया गया है। इसकी मुड़ाई भी इसी चित्र में प्रदर्शित ढंग से की जाती है। मोड़ने का स्थान, नाखून से चिह्न देकर, निश्चित कर लिया जाता है।

प्रथम बुनाई : जालीदार बुनाई को बढ़ाना—ज्यादा संख्या में फ्रेम की कमचियों को ले लेते हैं और बुनाई की कमचियों से ऊपर-नीचे लगा-लगाकर बुनाई करते जाते हैं। मुँह पर फ्रेम की कमचियों को गोलाकार मढ़ने के लिए मोड़ते हैं और पुनः मुँह पर ही लौटा लाते हैं। उसके बाद उसको केन्द्र की ओर बुनते हैं। बुनते समय फ्रेम की कमचियों को गोल आकृति बनाने के लिए जोड़ते भी हैं।

फ्रेम की कमचियों को जोड़ने का तरीका यह है कि छोटी तथा बड़ी प्रत्येक १५ के लिए क्रमशः ३ तथा ४ फ्रेमवाली कमचियाँ बढ़ाते हैं।
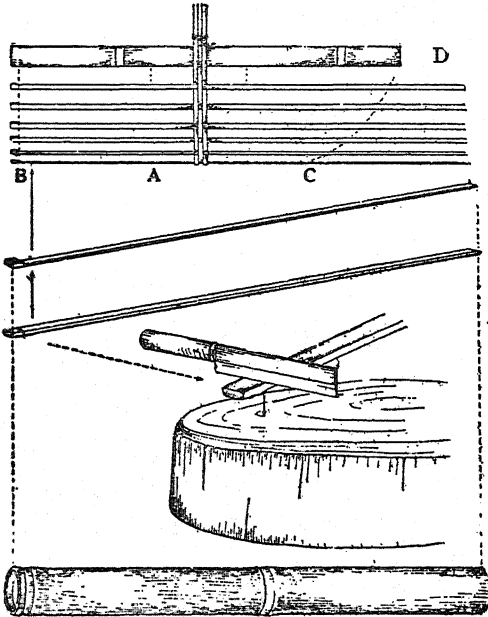
(चित्र १४२)

फ्रेमवाली कमचियों के मढ़ते समय उसका त्वचावाला भाग भीतर की ओर रखते हैं और बुनाई की कमचियों का त्वचावाला भाग बाहर की ओर। किनारे के घेरे को घुमाते हुए बुनाई की कमचियों से बुना जाता है; लेकिन प्रत्येक ५ से १० बुनाई पर एक घुमाव देना अधिक अच्छा होता है। सिर्फ घुमावदार बुननेवाली कमची किनारे के घेरे में नहीं लगाई जाती है।

केन्द्र — फ्रेमवाली कमचियों को लगाने तथा गोलाकार मढ़ने की विधि गोलाकार झुरी के ही समान होती है। सबसे निकट के बढ़े हुए जाल के दो को छोड़ सभी फ्रेमवाली कमचियाँ

समानान्तर होती हैं, जो किनारे पर घेरे को मढ़े रहती हैं और चित्र १४२ के ऊपरी भाग में दिखाये गये ढंग से भुरी में लगाई गई होती हैं।

किनारे को पूरा करना—बाहरी किनारे पर लगी कमचियों को, जिनका व्यास मुँह के बराबर होता है, किनारे के घेरे के साथ जोड़ के स्थान पर लगा दिया जाता है और भीतरी किनारेवाली कमचियाँ मुँह के भीतरी भाग में घुसा दी जाती हैं।

किनारे को मढ़नेवाली कमचियों को, व्यवहार करने के पहले जल में डुबो लेना चाहिए और तब मुँहवाले भाग को दाहिनी ओर से मढ़ना चाहिए। मुँहवाले भाग केवल घुमावदार ही मढ़े जाते हैं।

किनारे को घेरनेवाली कमचियाँ पहले पतली बनाई जाती हैं, जो घुमावदार मुँह की ओर होती हैं। बाद, वे चौड़ी बनाई जाती हैं, जो मुँह के पृष्ठ भाग में होती हैं। इस प्रकार बनाया गया किनारा अधिक सुन्दर होता है।

इस बात की सावधानी बरती जानी चाहिए कि घुमावों के बीच रिक्त स्थान नहीं रहे और प्रत्येक घुमाव एक ही प्रकार के कोण बनावे, अर्थात् वे सब एक दूसरे के समानान्तर हों। किनारे पर लगी सामग्री को अँगरेजी अक्षर S के रूप में मढ़ते हैं। इस विधि से मढ़ने के कारण ऊपर से लगाई गई कमचियाँ ढीली नहीं होंगी। जालीदार बुनाई में प्रवेश कराकर ही किनारे मढ़नेवाली कमची के दोनों छोरों को लगाते हैं।

सूप

सूप भी उन्हीं कामों में व्यवहृत होता है, जिन कामों में चावल धोनेवाली टोकरी व्यवहृत होती है। इन दोनों के बनाने की सामग्री को एक-दूसरे में बदल देना बहुत ही आसान है; क्योंकि दोनों के लिए एक ही प्रकार की सामग्री लगती है।

यह सूप ६ प्रकार का होता है और बाहर भेजने के लिए लम्बाई में एक साथ पैक किया जाता है। २५ सबसे बड़े, ३० मझोले में सबसे बड़े, ३५ साधारण मझोले, ४० मझोले में सबसे छोटे, ४० छोटे, ५० सबसे छोटे सूपों को एक साथ पैक किया जा सकता है।

बनावट की दृष्टि से चावल धोने की टोकरी और चौरस सूप एक ही कोटि के माने जाते हैं। सूप की बनावट की विधि भात रखने की टोकरी के समान ही होती है और वह भी चाभ बाँस की सामग्री से बनाया जाता है।

चित्र १४३ में ही सूप की बुनावट का नमूना दिखाया गया है। इसका आकार किनारे के घेरे के व्यास तथा फ्रेमवाली सामग्री की संख्या के आधार पर निर्भर करता है। सूप के आगेवाले नुकीले स्थान से किनारे के बुनने और तैयार कर लेने का काम पूरा होता है। अन्य भागों के कार्य बिलकुल चावल धोने की टोकरी के समान ही किये जाते हैं।

सूप के लिए सामग्री तैयार करना—चावल धोने की टोकरी के समान यह भी चाभ बाँस की सामग्री से ही बनाया जाता है। जब छोटे सूप के फ्रेम की कमचियाँ

१/८ इंच चौड़ी हों, तब बुनाई की कमचियों की चौड़ाई उसका ६/८वाँ भाग होती है। बड़े सूपों में उसी अनुपात से कमचियों की चौड़ाई बढ़ाते चलते हैं।

अनाज फटकने का सूप

यह सूप मोटे और रुखड़े तरीके से बनाया गया होता है। इसका ऐसा नाम पड़ने का कारण यह है कि इससे धान, गेहूँ, जई आदि अन्नों को फटकने का काम लेते हैं।

बनावट—(क) आरंभ में दोनों ओर के फ्रेम की सामग्री बाँस के धड़ के भाग की बनी होती है। पीठ पर फ्रेम की जो सामग्री लगाई जाती है, वह त्वचा की ओर से होती है। इसके बुननेवाली सामग्री की पीठ ऊपर रहती है। प्रत्येक १० बुनाई पर दो फ्रेमवाली कमची बढ़ाई जाती है।

(ख) घेरा देने के लिए आधी चौड़ाईवाली बुनने की सामग्री व्यवहृत होती है, जिसका त्वचावाला भाग भीतर की ओर रहता है।

(ग) सूप का किनारा, भाथीनुमा पूर्ण-क्रिया बुनाई के ढंग से तैयार किया जाता है।
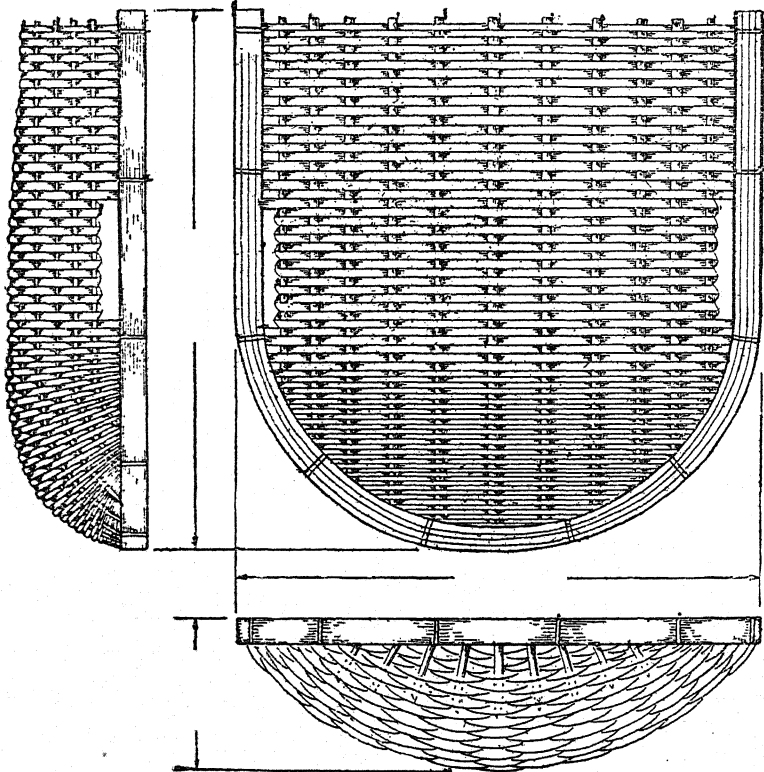
(चित्र १४३)

नोट—पाँच इंच और छह इंच व्यासवाले बाँस से एक बड़ा सूप और छोटे आकार की सुपलियाँ तैयार होती हैं। एक ही आकार का मुँह बनने से ये सुपलियाँ सुन्दर दीखती हैं और बड़ी, मझोली तथा छोटी आकारवाली सुपलियाँ, एक सेट बनने से, बाहर भेजने में बहुत सुविधाजनक होती हैं।

बालू रखने की टोकरी

चित्र १४३ में प्रदर्शित बुनावट इस प्रकार की टोकरी का भी एक प्रकार है। यह कभी-कभी सब्जी अथवा अनाज रखने में भी व्यवहृत होती है।

यह टोकरी भी मोटे तरीके से बनी एक प्रकार से अन्य तरह की टोकरियों-जैसी ही है। लेकिन, इसकी मजबूती अधिक होती है। इसके बनाने की विधि भी अन्य टोकरियों के समान ही होती है। दूसरी टोकरियों से इसके बनाने की विधि में थोड़ी-बहुत जो भिन्नता है, वह नीचे दी जाती है—

बाँस की तैयारी—पहले जिन टोकरियों की चर्चा की गई है, वे 'चाभ' बाँस से बनाई जाती हैं। यह टोकरी अधिक मजबूत तब होती है, जब 'हरौती' बाँस से बनती है।

इसके बुनने में इस बात की सावधानी बरती जानी चाहिए कि बाँस की बनी सामग्री की गिरहें टोकरी के गोलाकार अथवा टेढ़े भाग में आ जावें, अन्यथा टोकरी बनाना बहुत कठिन हो जायगा। बाँस की गाँठ को ऐसा काटना चाहिए, जिससे वह बनानेवाली सामग्री के छोर पर आवे। उसके बाद उसे छुरी से चीरना तथा फाड़ना चाहिए, जिसकी प्रक्रिया चित्र १४२ में दिखाई गई है।

इसके किनारे के सिरे का बाँस बाहरी और भीतरी किनारे पर लगाया जाता है, जिससे किनारा सुन्दर हो जाता है। सिरे का बाँस ४ से ८ भागों में विभक्त रहता है, लेकिन शुरू में बाँस को विभक्त नहीं करना चाहिए। किनारे को तैयार करने के काम में बारीक तार अथवा बेंत का व्यवहार किया जाता है। साधारण टोकरी ६ इंच से ७ इंच व्यासवाले बाँस की बनाई जाती है।

बनावट—बालू रखने की टोकरी के मुँह मोड़ लेने के बाद किनारे के बाँस के दोनों छोरों को बाँध देना चाहिए।

उसके पश्चात् फ्रेम बनानेवाली सामग्री का क्रम ठीक कर जालीनुमा बुनाई की विधि से बुनना चाहिए। नौसिखुओं को, चीरी हुई तीन कमचियों से फ्रेम बनानेवाली कमची के केन्द्र में अस्थायी रूप से बुनना चाहिए और दोनों चीरे हुए बाँस के दोनों छोरों को किनारे के घेरे के साथ बाँध देना चाहिए। सर्वप्रथम चित्र १४२ के A और C भागों को बुनना चाहिए और तब B और D वाले भागों को।

अस्थायी रूप से बुने भाग को A और C भागों की बुनाई पूरी होने पर निकालकर फेंक देते हैं। रिक्त भाग टोकरी को पकड़ने के लिए होता है। बाद, इसे मढ़कर बुन लिया जाता है। चित्र के B और D भागों की बुनाई गोलाकार टोकरी अथवा चावल धोने की टोकरी के समान होती है।

टोकरी को पकड़ने के लिए काफी स्थान चाहिए, अन्यथा हाथ जख्मी हो जा सकता है। चूँकि, बालूवाली टोकरी भारी सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने के काम में आती है, इसलिए बुनाई की सामग्री किनारे के घेरे पर घुमा दी जाती है। घुमाते समय कमचियों को ऐंठना चाहिए, जिससे उसका त्वचावाला भाग सदा बाहर रहे और घेरे पर एक ही ऊँचाई का घुमाव हो।

पेंदे पर बुनाईवाली सामग्री में जोड़ नहीं होना चाहिए। उसको किनारे तक पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए। बुनाईवाली दूसरी कमचियों को दूसरी ओर से बुनना चाहिए।

गोलाकार बनाने की प्रणाली—अन्य टोकरियों के सदृश ही इसमें भी फ्रेम की सामग्री को सबसे पहले लगाते हैं। फ्रेम के बने हुए भाग को काट देने पर बालू रखने की टोकरी तैयार हो जाती है। सिर्फ उसका किनारा ही अन्तिम रूप में तैयार करना बाकी रह जाता है।

किनारे की पूर्ण-क्रिया—गोलाकार टोकरी या चावल धोने की टोकरी के समान ही इसके किनारे को भी, कमचियों को कई भागों में चीरकर तथा उन्हें फिर एक साथ मिलाकर वेणी-गुम्फन-बुनाई की प्रक्रिया से पूरा करते हैं।

वर्गाकार जालीदार बुनाई द्वारा बाँस के काम

इस बुनाई का वह ढंग है, जिसमें बुनाई की सामग्री से वर्गाकार बुनाई करते हैं। इसके फ्रेम की सामग्री तथा इस ढंग से बनी वस्तुओं को जालीदार टोकरी कहते हैं।

ऐसी बुनाई, जिसमें बड़े-बड़े वर्गाकार जालीदार छेद रहते हैं, उसे फ्रेम-बुनाई और छोटी-छोटी कमचियों से बने छोटे रिक्त स्थानों की घनी बुनाई कहते हैं।

इस वर्गाकार जालीदार बुनाई से तैयार वस्तुओं को, तैयार करने की विधि के अनुसार, तीन भागों में बाँट सकते हैं।

(१) केवल पेंदे में वर्गाकार बुनाई हो।

(२) वर्गाकार जालीदार बुनाई से वर्गाकार या आयताकार वस्तुएँ बनाई जायँ। जैसे—पुस्तक रखने की टोकरी, कपड़ा रखने की टोकरी आदि।

(३) सभी भाग इसी बुनाई से तैयार किये गये हों।

वर्गाकार जालीदार बुनाई द्वारा बनी टोकरियों के आकार फ्रेमवाली कमचियों की लम्बाई तथा संख्या द्वारा निश्चित किये जाते हैं। फ्रेम की कमचियों की संख्या निम्नांकित होती है—

(१) विषम संख्या में।

(२) मुख्यतः सम संख्या में; कभी-कभी विषम संख्या में।

(३) निश्चित रूप से ही सम संख्या में।

वर्गाकार जालीदार पेंदेवाला कार्य—पेंदे को वर्गाकार जालीदार बुनाई से बुनते हैं और गोलाकार तथा पार्श्वों को साधारण बुनाई से। इसका नमूना चित्र १४४ में प्रदर्शित है।
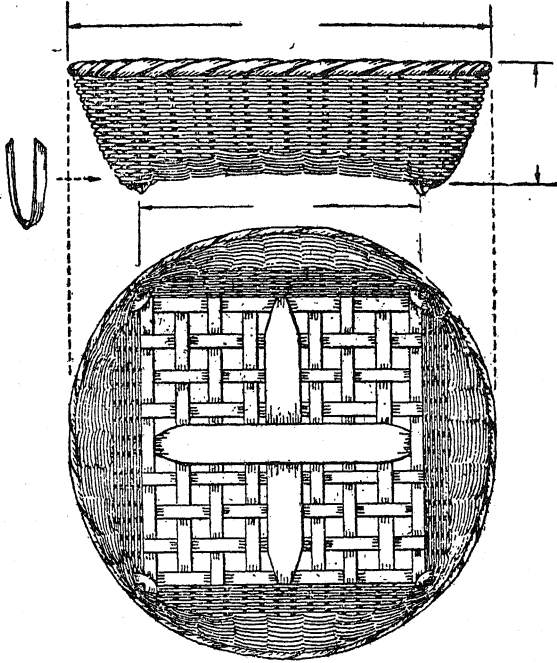
(चित्र १४४)

वर्गाकार पेंदे, फूल-पेंदे, जालीदार पेंदे और झुरी पेंदे की बुनाई से तैयार टोकरियों के पार्श्व के भाग देखने में विभिन्न प्रकार के लगते हैं।

इस बुनाई की बनी टोकरी, जिसके पेंदे तथा टेबुल के बीच रिक्त स्थान होता है, पानी को बाहर निकालने में अथवा चलनी के रूप में व्यवहृत होती है।

बड़ी चलनी

यह चलनी पानी बाहर करके किसी वस्तु को सुखाने के काम में आती है। चित्र १४४ में प्रदर्शित ढंग से ही इसका निर्माण किया जाता है। इसका मुँह चौड़ा, लेकिन ऊँचाई कम होती है। बड़ी चलनी अक्सर सब्जी को धोने या भोज्य पदार्थ को धूप में सुखाने के काम में लाई जाती है।

सामग्री तैयार करना—चलनी के फ्रेम की कमच्चियों को बाँस के निचले हिस्से से तैयार करते हैं और शेष भाग को चार भागों में बाँट देते हैं। तीन भाग बुनने के काम में आते हैं, और एक भाग किनारे, मुट्ठे और पेंदे में अलग से लगाने के लिए होता है।

पेंदे की बुनाई—चित्र १४४ में प्रदर्शित ढंग से खड़ी तथा पड़ी फ्रेम की सामग्री को एक-दूसरे के ऊपर-नीचे करके वर्गाकार बुनाई करते हैं।

खड़े फ्रेम की सामग्री जमीन पर रख दी जाती है और उन्हें तख्ते से दबा देते हैं और तब पड़ी सामग्री से उन्हें बुना जाता है। तख्ते से सामग्री को दबाये रखने से बुनने में आसानी होती है। सावधानी इस बात की रखी जानी चाहिए कि गाँठवाला

भाग किनारे अथवा पार्श्व की गोल बुनाई में नहीं आवे। फ्रेम बुनने की सामग्री एक-दूसरे से बराबर दूरी पर रहें और उनके त्वचावाले भाग ऊपर हों।

जब पेंदा बुनने का काम समाप्त हो जाय, तब उसकी कमचियों को ऊपर उठा दिया जाता है। फिर, बुनाई की कमचियों से उठे हुए भाग में साधारण बुनाई करते हैं। ऐसी अवस्था में बुनाईवाली कमचियों के त्वचावाले भाग को ऊपर करके रखते हैं। जब पेंदे का काम और उठे हुए ऊपरी भाग की बुनाई का काम समाप्त हो जाय, तब मुँह के किनारेवाले भाग को वेणी-गुम्फन-प्रक्रिया से बुनकर समाप्त कर दिया जाता है।

गोलाकार बुनाई—गोलाकार बुनाई का भी ढंग वही है, जो पहले बताया जा चुका है, अर्थात् फ्रेमवाली कमचियों को कोने पर थोड़ा मोड़ना चाहिए। अस्थायी रूप से और भी बाँस को, व्यास के रूप में, लगाकर पेंदे को चौरस बनाये रखना चाहिए। पेंदे को खाली रखना और अच्छा है।

उसके बाद टोकरी को घुटने पर लेकर फ्रेमवाली कमचियों को बाँये हाथ से मोड़ना चाहिए। बुनाईवाली कमची को ४ से ५ घुमाव तक बुनना चाहिए। उससे गोलाकार मोड़ पूरा हो जाता है।

ऐसा करते समय फ्रेमवाली कमचियों की दूरी समान ही होनी चाहिए। उसके बाद कोनों पर फ्रेम की कमचियों को एक-दूसरे के निकट लाकर केन्द्र में चौड़ा बना देते हैं। बुनाईवाली कमची के छोर को फ्रेम की चार कमचियों के बीच लगा देना चाहिए।

पार्श्व-बुनाई—पार्श्व-बुनाई गोलाकार बुनाई को जारी रखना मात्र है। इसलिए इस बुनाई के केवल बगल के भाग ही दिखाई पड़ते हैं। इसमें बुनाई की कमचियों की चौड़ाई अधिक हो सकती है और बीच में चौड़ी कमची से करीब तीन बार मढ़ देते हैं। अगर यह कमची रँगी हुई हो, तो और अच्छा।

फ्रेम की कमचियों का लगाना—फ्रेम की कमचियों के लगाने के सम्बन्ध में पहले पृष्ठ ११८ की दूसरी या तीसरी विधि में जो तरीका बताया गया हैं, वही यहाँ भी है।

किनारे को पूरा करना—कमचियों को कई भागों में चीरकर तथा उन्हें एक साथ मिलाकर वेणी-गुम्फन-प्रक्रिया की बुनाई से पूरा किया जाता है। दोनों विधियाँ बताई जा चुकी हैं। इसके लिए पृष्ठ १२३ पढ़ना चाहिए।

किनारे को वेणी-गुम्फन-बुनाई से पूरा करने की विधि में भीतर तथा बाहर दोनों ओर से—किनारे के बाँस लगाते हैं और तब किनारा मढ़नेवाली कमची से घुमावदार ढंग से दो बार मढ़कर पूरा करते हैं।

पाँव लगाना—कभी-कभी चलनी में, पानी के बहाव की सुविधा के लिए, कोने पर पाँव लगाये जाते हैं। पाँव लगाने की विधि इस प्रकार है—जैसा आगे चित्र १५२ में

दिखाया गया है। १ इंच से १। इंच व्यासवाले गोल गिरहदार बाँस लेकर उसे बुनाई में, फ्रेम के सामान के साथ-साथ किनारे के घेरे तक घुसेड़ देते हैं। पाँव लगाने की दूसरी विधि यह है कि चीरे हुए बाँस को बुनाई में घुसेड़कर दो-तीन भाग तक बाँध देते हैं।

मुट्ठे लगाना—जब टोकरी में मुट्ठा लगा दिया जाता है, तब उसका वही काम हो जाता है, जो चावल रखनेवाली टोकरी का होता है। ऐसी हालत में वेणी-गुम्फन-बुनाई तथा बाँस को कई भागों में विभक्त कर और उन भागों को एक साथ लगाकर किनारे को पूरा करना आसान होता है। निम्नलिखित बातें विशेष द्रष्टव्य हैं—

(१) फ्रेमवाली कमचियों को बहुत पतला बनाना चाहिए।

(२) समकोण बनाते हुए मोड़ना चाहिए।

(३) किनारे को वर्गाकार रूप में पूरा करते हैं। किनारे की सभी कमचियाँ, पूरा करने के पूर्व, गरम लोहे द्वारा मोड़ दी जाती हैं। इसके लिए पृष्ठ १६० में लिखित मोड़ने की विधियों के साथ चित्र १४६ देखना चाहिए।

वर्गाकार जालीदार बुनाई के द्वारा वर्गाकार वस्तुओं का निर्माण

इस तरह की वस्तुओं के निर्माण के लिए फ्रेमवाली कमचियाँ अत्यन्त पतली हों और उनकी जालीदार बुनाई, जिसकी जाली अत्यन्त छोटी-छोटी हो, को वर्गाकार बुनाई कहते हैं। गोलाकार भाग ताप द्वारा मोड़े जाते हैं और पेंदे के समान ही बुनाई के सामानों द्वारा पार्श्व की बुनाई होती है।

कमची को कई भागों में चीरकर उन भागों को एक साथ मिलाकर उन्हें बाँधकर किनारा तैयार किया जाता है। किनारे को एक बार या लगातार कई बार मढ़ते हैं। इस कार्य में महत्त्वपूर्ण बातें निम्नलिखित हैं—

फ्रेम की कमचियाँ पतली तैयार की जाती हैं। लकड़ी के घन पर एक औजार के द्वारा कमचियों को खींचकर पतला बनाया जाता है, जो पूर्व के पृष्ठ ८६-८७ में बताया जा चुका है। फ्रेम की कमचियाँ सूखी हों। एक ही समय बहुत-सी फ्रेमवाली कमचियाँ बनाने के लिए चित्र ३३ में दिखाये गये ढंग से चीरने की विधि व्यवहृत होती है।

आयताकार पेटी

पुस्तक अथवा वस्त्र रखने के लिए आयताकार पेटी बनाई जाती है। साँचे का आकार चित्र १४५ में दिया गया है। इस साँचे के द्वारा कमचियों की लम्बाई निश्चित की जाती है, और उन्हें मोड़ने में सुविधा होती है। आगे चित्र १४६ में बड़े आकारवाली पेटी के पेंदे की बुनाई दिखाई गई है, जिसमें मोड़ने की प्रक्रिया के साथ मोड़ का स्थान-निर्देश किया गया है। इसके अनुसार पेटी और उसके ढक्कन के आकार में आधे इंच से ५/८ इंच का भेद पड़ता है।

किनारा समाप्त करने के पहले सिरे की कमचियों तथा किनारे की कमचियों को मोड़ लेना चाहिए। मोड़ने का चिह्न आगे लिखे गये ढंग से होना चाहिए—

बाहरी किनारे की कमची प्रत्येक कोने पर १/८ इंच अधिक लम्बी होनी चाहिए और पेटी के बाहरी किनारे की कमचियाँ कोनों पर १/१६ इंच लम्बी होनी चाहिए। इसी तरह भीतरी किनारे की कमचियाँ कोनों पर १/८ इंच छोटी रखनी चाहिए।
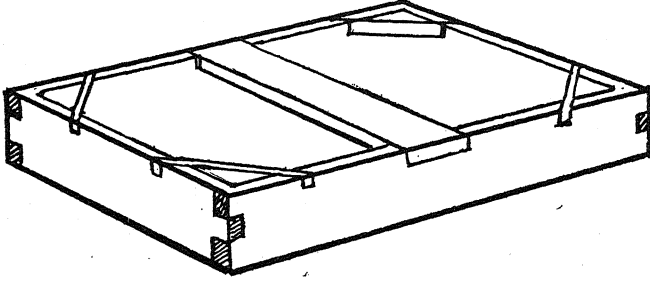
(चित्र १४५)
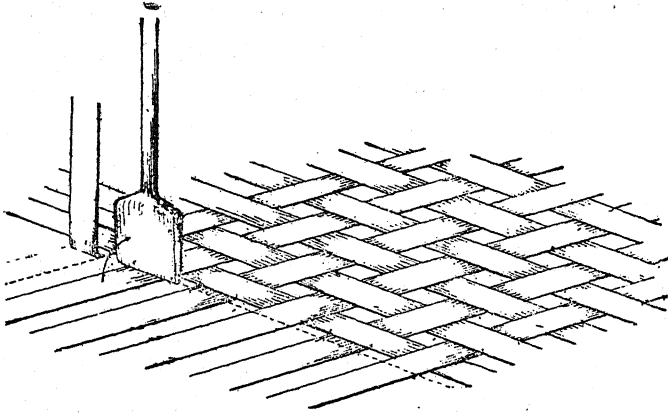
(चित्र १४६)

चिह्नित ढंग से कमचियों को मोड़ने में भीतरी, बाहरी तथा सिरे की कमचियों को हटाकर मोड़ा जाना चाहिए और उनके बीच में कहीं पर कोई स्थान खाली नहीं छोड़ना चाहिए।

ताप द्वारा मुड़ाई में लोहेवाले औजार को गरम कर निर्दिष्ट स्थान पर कुछ क्षण रखा जाता है और आहिस्ता-आहिस्ता कमचियों को पकड़कर टेढ़ा किया जाता है। जबतक ६० डिग्री से कुछ अधिक मोड़ न हो जाय, तबतक गरम औजार के सहारे टेढ़ा करते रहते हैं। साथ-साथ पानी दे-देकर ठंडा भी करते जाना चाहिए, नहीं तो सामानों के पुनः सीधा हो जाने की संभावना रहती है।

पत्रों और अखबारों को रखने के लिए पेटी और बड़े आकार की 'वस्त्र-पेटी' तथा छोटे आकार की पेटी भी बनाई जाती है। इस प्रकार की पेटियाँ बनाने के लिए धब्बेदार बाँस या रँगे हुए बाँस का व्यवहार करते हैं।

सामान्यतः पेटी का ढक्कन बाँस के त्वचावाले भाग की कमचियों से और पेटी के नीचे का भाग बाँस के भीतरवाले अंश की कमचियों से बनाये जाते हैं। पेटी का आकार सुन्दर हो, इसके लिए उसके ढक्कन का बीचवाला भाग उठा हुआ बनता है और पेटी के पेंदेवाला खोखला।

इस प्रकार, भिन्न-भिन्न आकृति की, बाजार करने की, पेटियाँ बनाई जा सकती हैं। चिट्ठी-पत्री रखने के लिए जिस विधि से पेटियाँ बनाई जाती हैं, उसी विधि से ऐसी पेटियाँ भी बनती हैं। चित्र में दिया गया साँचा वर्गाकार साँचे से कुछ भिन्न है। किन्तु, बनाने की पद्धति में कोई अन्तर नहीं है। साँचे के व्यवहार से वस्तुओं के आकार-प्रकार सुव्यवस्थित रहते हैं। इस साँचे के सहारे आकृति जल्दी-जल्दी ठीक की जा सकती है और वस्तुएँ अधिक संख्या में तैयार की जा सकती हैं।

कमचियों को तैयार करने की विधि —बुनाई की कमचियाँ फ्रेम की कमचियों के समान एक ही बार बना ली जाती हैं। इन कमचियों के लिए जो बाँस व्यवहार में लाया जाना चाहिए, उसका व्यास ६ इंच हो और उसकी गिरहें दूर-दूर पर हों।
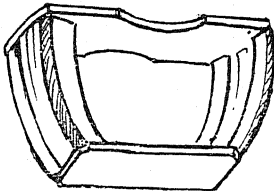
(चित्र १४७)

पेंदे की बुनाई—पेंदे की बुनाई सुपली की बुनाई के समान ही होती है। उसका, तैयार हो जाने के बाद का, आकार ऊपर दिया गया है।

(चित्र १४८)

ताप से मोड़ना—जब पेंदे की बुनाई खत्म हो जाती है, तब जिन भागों को मोड़ना रहता है, वहाँ पेंसिल से स्केल के सहारे चिह्न कर देते हैं और वहीं से उन्हें मोड़ते हैं। गरम लोहे के व्यवहार से कमचियों को मोड़ना चाहिए। इस बात की
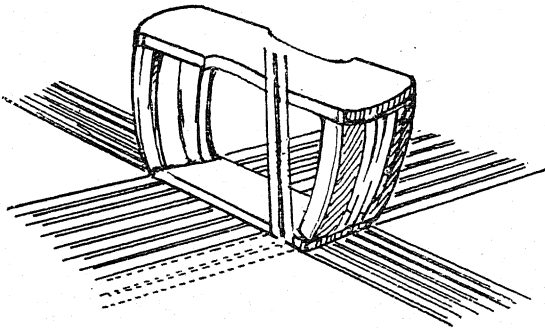
सावधानी बरतनी चाहिए कि अत्यधिक ताप मोड़ के स्थान को जला नहीं दे; क्योंकि बुनने की कमचियाँ बहुत पतली होती हैं। पहले बतलाई गई विधि के अनुसार ही ताप के द्वारा मुड़ाई होनी चाहिए।

पार्श्व-बुनाई—जब ताप द्वारा मोड़ने का काम खत्म हो जाय, तब साँचे की सहायता से पेटी के पार्श्व-भाग की बुनाई करनी चाहिए। चित्र १४७ केवल साँचे का चित्र है। चित्र १४८ में दिखाया गया है कि पेंदे की बुनाई के बाद किस तरह साँचे के सहारे टोकरी में मोड़ दिया जाता है। इस विधि में नुकीले कोने बनाने के लिए चीरी हुई बहुत-ही पतली कमचियों का व्यवहार करना चाहिए। कमचियाँ यदि मोटी हों, तो कोना बनाते समय मोड़नेवाले स्थान पर वे टूट जाती हैं।

(चित्र १४९)

(चित्र १५०)
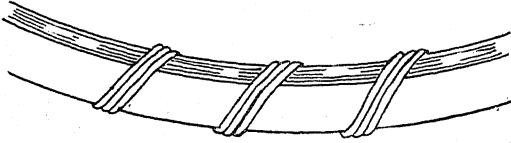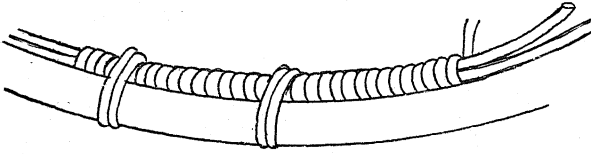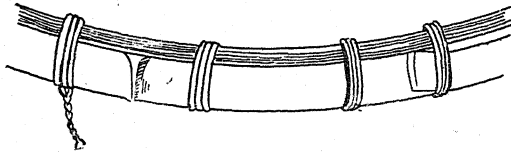
(चित्र १५१)

फ्रेम की कमचियों को मोड़ना—किनारे को पतला बनाने से पेटी सुन्दर होती है। चित्र ११२ में प्रदर्शित ढंग से किनारे की फ्रेमवाली कमचियों को एक दूसरे के किनारे मोड़कर पूरा करते हैं। यदि मोड़ नहीं देना है, तो फ्रेम की कमचियों को किनारे पर साट देते हैं, ताकि किनारा अलग न होने पावे।

किनारे को पूरा करना—इस काम में लहरदार गुम्फनवाली बुनाई की जाती है। इसकी बुनाई चित्र १४९ में दिखलाई गई है। किनारे की कमचियों को, किनारे पर लगाने के पहले, ताप से मोड़ लेते हैं। बाहरी किनारेवाली कमचियों को पतली बनाते हैं और जोड़ के स्थानों पर अँगरेजी अक्षर V के आकार का बनाकर तार से बाँध देते हैं। भीतर की कमचियाँ भी जोड़ पर पतली काटी जाती हैं; किन्तु उन्हें बाँधने की जरूरत नहीं पड़ती।

किनारे की बाहरी तथा भीतरी कमचियों के बीच सिरे पर खाली जगह में कमची घुसेड़ देते हैं; लेकिन इसकी मुटाई वही होती है, जो पार्श्व-बुनाई की होती है।

किनारे की कमची की चौड़ाई सिरे की कमची के बराबर होती है, और उसमें बुनाई की कमचियों की चौड़ाई जोड़ देते हैं। किनारे की भीतरी और बाहरी तथा सिरे की कमचियों को मिलाकर बाँध देते हैं और आखिर में बेंत से भी बाँध देते हैं। इसे चित्र १५० में दिखाया गया है, और फिर चित्र १५१ में निखरा हुआ बन्धन दिखलाया गया है। चित्र १५० के अनुसार किनारे को सुन्दर रूप देने के लिए, उपरी भाग में, पतली गोलाकार कमचियों को चारों ओर से बेंत लपेटकर स्थान स्थान पर बाँध देते हैं। इस कार्य से उपरी भाग मजबूत और सुन्दर हो जाता है।

चित्र १५१ में बुनाई की कमचियों को घुमाने के बाद बेंत से सिरे को बाँध देते हैं। ऐसा करते समय बाहर से भीतर की ओर घुमाव देते हैं। जब घूमकर फिर प्रथम स्थान पर आ जाते हैं, तब बेंत के सिरे को प्रथम दोनों घुमाव में डालकर जकड़ देते हैं।

वस्त्र रखने की टोकरी

यह टोकरी कई आकार की बनाई जाती है। एक प्रकार की टोकरी को, एक छोटी और बड़ी मिलाकर, एक सेट तैयार किया जाता है। दूसरे प्रकार की टोकरी, जिसे कागज रखने की टोकरी कहते हैं, के ढक्कन तथा अन्य भाग का एक सेट एक बार तैयार किया जाता है। वस्त्रवाली टोकरी की सामान्यतः लम्बाई वही होती है, जो सयाने लोगों के कपड़ों को चौपत देने पर उनके रखने के योग्य हो सके।

इसकी भी बनावट प्रायः वही है, जो कागज-पत्र रखनेवाली टोकरी की होती है। केवल भिन्नता यही है कि इसके पेंदे में मजबूती के लिए ऊपर से बाँस जोड़ने पड़ते हैं।

इस काम के लिए बाँस का चुनाव—इस पेटी के फ्रेम तथा बुनाई की कमचियों की चौड़ाई कुछ ज्यादा होती है। इसलिए, इसमें ७ इंच व्यासवाला बाँस व्यवहार किया जाना उत्तम होता है।

वर्गाकार बुनावट की टोकरी

बुनाई की अत्यन्त पतली कमचियों से यह टोकरी बनाई जाती है। वर्गाकार जालीदार बुनाई की विधि से यह टोकरी तैयार होती है। जब यह बुनाई चारखाने के समान होती है, तब इसे 'चारखानेदार बुनाई' कहते हैं।

वर्गाकार बुनाई-पेंदे या वर्गाकार बाँस के कार्य के लिए बुनाई के दूसरे ही सामानों का व्यवहार किया जाता है; लेकिन यह 'चारखानेदार बुनाई' वाला पेंदा केवल फ्रेम के सामानों से बुना जाता है और तब मोड़ा जाता है। उसके बाद बुनाई के सामान को छोड़-कर पार्श्व बुनाई करते हैं।

ये टोकरियाँ फ्रेमवाले सामानों से बनाई जाती हैं और इनका आधार फ्रेम के सामानों की लम्बाई तथा चौड़ाई द्वारा निश्चित किया जाता है।

जैसा चित्र १५३ में दिखाया गया है, उसके अनुसार वर्गाकार टोकरी के प्रत्येक किनारे के केन्द्र से, केन्द्र तक की दूरी, पेंदे के किनारे की दूरी होती है। इस बात की

सावधानी बरती जानी चाहिए कि पेंदे का किनारा, पेंदा-बुनाई के किनारे से छोटा हो और पेंदा-बुनाई के किनारों के केन्द्र पेंदे के किनारे हों। पेंदे की बुनाई के केन्द्रों के फ्रेम के सामान एक दूसरे को पार करके बुने जाते हैं और तब किनारा बुना जाता है। ऐसी अवस्था में फ्रेम के सामानों की संख्या सम होनी चाहिए।

चूँकि, पेंदा वर्गाकार होता है और किनारा गोल, इसलिए वर्गाकार बुनाईवाली टोकरियाँ छोटे-बड़े अनेक आकारों की तथा सस्ती-मँहगी दामों की बनाई जाती हैं।

साधारण वर्गाकार टोकरियाँ गोबरछत्ते को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के काम में व्यवहृत होती हैं और इन टोकरियों के बनाने में यह काम मूलरूप में करना होता है, इसलिए पहले वर्गाकार टोकरियों को बनाने की विधि सीखनी चाहिए।

बाँस का चुनाव—यह टोकरी ८ इंच व्यासवाले बाँस से तैयार की जाती है। कारीगर लोग अधिकतर इसके लिए 'चाभ' की एक खास किस्म पसन्द करते हैं; क्योंकि यह बाँस अनेक भागों में चीरा जा सकता है।

पेंदे की बुनाई—लम्बाई तथा चौड़ाई के १४ फ्रेमवाले सामानों को एक फुट वर्गाकार बुन लेते हैं। केन्द्र के दो सामान और दोनों ओर के सामान, त्वचा की ओर से लगाये रहते हैं। इन सामानों से एक खास किस्म की बुनाई की जाती है।

फ्रेम के सामान का त्वचावाला भाग बाहर की ओर होना चाहिए। इन सामानों के बीच में रिक्त स्थान होना जरूरी है। दोनों ओर के फ्रेम के सामानों के केन्द्र में गाँठें नहीं होनी चाहिए, अन्यथा वस्तु गोलाकार नहीं होगी।

गोलाकार बनाने की तैयारी—गोलाकार बनानेवाले भाग को हाथ से थोड़ा-सा मोड़ने का इशारा-भर कर देना चाहिए। एक ओर केन्द्र से दूसरी ओर के केन्द्र तक पेंदे का किनारा होता है। इस लकीर पर सामान को धीरे-धीरे मोड़ना चाहिए और तब सामान को गोलाकार बनाने के लिए मुलायम कर लेना चाहिए। इस तरीके से यह काम बहुत सुगम हो जाता है।

मोड़ने का काम निम्नलिखित प्रकार से होना चाहिए—तख्ते को पेंदे के बल रख-कर उसे पाँव से दबा देना चाहिए और तब मोड़ना चाहिए।

पार्श्व-बुनाई—घुटने पर रखकर, फ्रेम के सामान को मोड़ते हुए टोकरी बुनी जाती है, अर्थात् सामान को छाती में सटा लेते हैं और दोनों हाथों से फ्रेम के सामान को पकड़कर अँगुलियों से बुनते हैं।

इस प्रकार की बुनाई में एक महत्त्व की बात यह है कि बाँह को ढीला नहीं रखना चाहिए और पेंदे का कोना उत्तम ढंग से बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इन्हीं भागों से बुनाई को सिलसिले के साथ ठीक कर बुनना चाहिए। टोकरी की बुनाई में यही गोलाकार बुनाई सबसे अधिक कठिन होती है। एक ओर की बुनाई पूरी हो जाने पर दूसरी ओर की बुनाई करनी चाहिए।

उसके बाद सभी कोनों पर दो या तीन बार बुनना चाहिए, अन्यथा टोकरी छिन्न-भिन्न हो जायगी। टोकरी की ऊँचाई ८ इंच होती है। टोकरी के मुँह का व्यास इसके निचले भाग से थोड़ा छोटा होता है। तब टोकरी देखने में अच्छी लगती है।

फ्रेम के सामान लगाने की विधि—वर्गाकार बुनाई की टोकरी में फ्रेम के सामान को एक दूसरे के ऊपर करके बुनते हैं। इनके किनारे को काट देने पर भी ये नहीं टूटते। किन्तु, कीमती टोकरियों के लिए पूर्व के भाग में लिखित ढंग से ही किनारे को पूरा करते हैं।

किनारे को पूरा करना—यह टोकरी सबसे अधिक सस्ती होती है, इसलिए इसका किनारा चित्र ८६ के ऊपरी भाग के अनुसार और पार्श्व-बुनाई चित्र १५२ में प्रदर्शित ढंग से पूरे किये जा सकते हैं। इसमें किनारे का बाँस जोड़ते हैं और मगजीवाले बाँस से प्रत्येक जाल को एक या दो बार मढ़ते हैं।

खिलौने रखने की डलिया

इसकी बुनाई उपर्युक्त टोकरी की बुनाई से कहीं अधिक सरल है। सीखनेवालों को पहले इसी टोकरी के द्वारा वर्गाकार बुनाई सीखनी चाहिए।
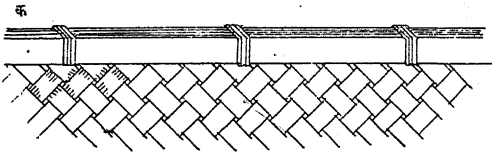
(चित्र १५२)

बनावट—चित्र १५२ में प्रदर्शित ढंग से ही पेंदे की बुनाई पूरी करनी चाहिए। इसके किनारे बाँधने का काम विशेष रूप में किया जाता है। कारीगर पेंदे में पेंसिल से चिह्न लगाकर उसके अनुसार वर्ग बना लेते हैं। इससे टोकरी का पेंदा स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

चिह्न की हुई लाइनों पर मोड़कर चारों पार्श्वों को बुनते हैं, और फिर सबको एक में मिला देते हैं। इसके अतिरिक्त किनारे पर की कमची जोड़ देते हैं और मगजीवाली कमची से प्रत्येक घर को बुनते हैं। उसके बाद मुट्ठे को जोड़ देते हैं।

बच्चे लाल, नीले, गुलाबी या भूरे रंग से रँगे बाँस की कमचियों की बनी डलिया को ज्यादा पसन्द करते हैं। इसलिए, ऐसी डलिया को रँगीन बनाना अधिक उपयुक्त है।

अन्य वर्गाकार बुनाईवाली टोकरियाँ

वर्गाकार बुनाई की अन्य टोकरियों के आकार फ्रेम बनाने के सामान की लम्बाई तथा चौड़ाई से तय किये जाते हैं।

टोकरियों के बनाने की विधियाँ भी वे ही हैं, जो ऊपर में बताई गई हैं।

पायेदार टोकरी—कटोरे के आकार की मौनी (टोकरी) गृहस्थी के कामों में बहुत

ही उपयोगी होती है। इसके बनाने के सामान तथा उनके आकार भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं।
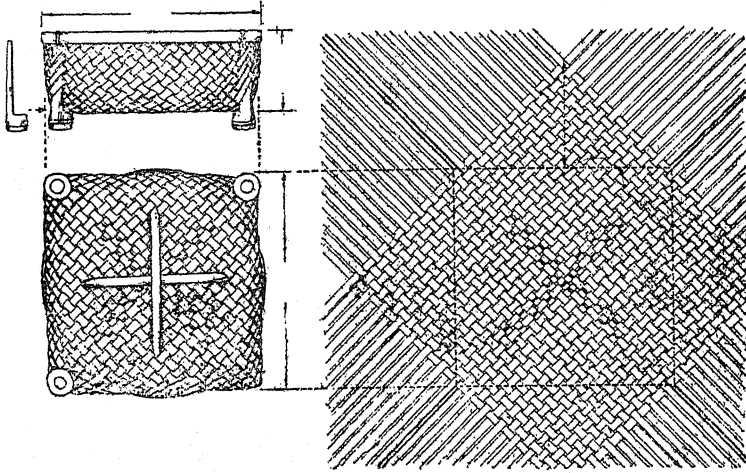
(चित्र १५३)

पेंदे की बुनाई—चित्र १५३ का दाहिना भाग—केन्द्र से दोनों ओर दो गाँठोंवाले सामान से ८ बुनाई बुनकर उसके बाद एक गाँठवाली कमचियों से इसे बुनना चाहिए।

गोलाकार—ऊपर बुनाई की जो प्रक्रिया दी गई है, वही यहाँ भी व्यवहृत होती है।

पार्श्व-बुनाई—पार्श्व-बुनाई में, पाँवों को लगाने के लिए कोनों पर बाहरी तीन बुनाई के ऊपर, फ्रेम बनानेवाले सामान को बुनते हैं। अन्य भागों की बुनाई वर्गाकार बुनाई की टोकरी के समान ही होती है और किनारे को वेणी-गुम्फन-बुनाई विधि से पूरा करते हैं।

पाँव—२/३ इंच से १ इंच व्यासवाले गोल गिरहदार बाँस को छोटी-छोटी गुल्ली के रूप में काटकर उन्हें टोकरी के रिक्त स्थानों में—जो तीसरा भाग बनाते समय बनाये जाते हैं—किनारे तक घुसेड़ देते हैं। उसके बाद किनारे पर छोटे-छोटे छेद बनाकर उन्हें तार से मढ़कर काम पूरा कर देते हैं।

ऊपर से लगाये गये पतले बाँस—जैसा १५३ की बाईं ओर के चित्र के निचले भाग में प्रदर्शित किया गया है, पतले फाड़े बाँस को पेंदे में अलग से लगाना चाहिए। ऐसा करने से पेंदा कड़ा बना रहता है।

वर्गाकार पेंदा-बुनाईवाली वस्तु

उपर्युक्त नाम इस कारण दिया गया है, चूँकि इन वस्तुओं के पेंदे की बुनाई वर्गाकार होती है। कभी-कभी इसे बेड़ा-बुनाई (Raft weaving) भी कहते हैं।

(चित्र १५४)

'वर्गाकार पेंदा-बुनाई' ही वर्गाकार बुनाई की एक खास किस्म होती है। इसके विषय में पहले ही बताया जा चुका है। इस बुनाई की विधिवाला चित्र १५४ में प्रदर्शित है।

वर्गाकार पेंदा-बुनाई को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है —
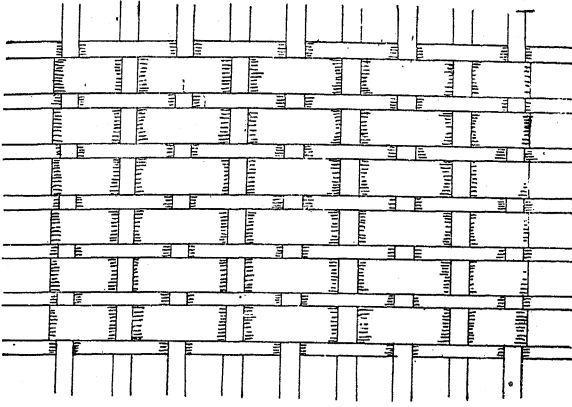
(क) केवल पेंदे में वर्गाकार पेंदे की बुनाई का व्यवहार करना होता है। इस तरह की छोटी टोकरी और रद्दी की टोकरी एक ही विधि से बनाई जाती है।

(ख) इसमें ऊपर से लगाये जानेवाले बाँस को लगाना और ऊपरी भाग को भी वर्गाकार बनाना जरूरी होता है।

(ग) पार्श्व-बुनाई के सामानों से ही झुरी की भी वर्गाकार पेंदा बुनाई करते हैं। रद्दी की टोकरी, मछली रखने की टोकरी तथा अन्य टोकरियाँ—सभी इसी ढंग से बनाई जाती हैं।

(घ) पार्श्व तथा पेंदे को तैयार करने में वर्गाकार बुनाई व्यवहार में लाते हैं। भोजन रखने की टोकरी और रद्दी कागजों को रखने की टोकरी में भी इसी प्रकार की बुनाई का प्रयोग किया जाता है।

(ङ) वर्गाकार जाल-पेंदा-बुनाई के आकार फ्रेम की कमचियों की लम्बाई तथा संख्या से और पेंदे के बाँस के आकार से निश्चित किये जाते हैं। कुछ ही टोकरियों को छोड़कर प्रायः सभी वस्तुएँ विषम संख्यावाली फ्रेम की कमचियों से बनाई जाती हैं।

वर्गाकार पेंदेवाली बाँस की वस्तुएँ—इस तरह की वस्तुओं के पेंदे की बुनाई मुलायम बाँस की बनी सामग्री से होती है। इसकी बुनाई चित्र १५५ में प्रदर्शित ढंग की होती है। इन वस्तुओं की फ्रेमवाली कमचियाँ निश्चित रूप से विषम संख्या में होती हैं। इनके पार्श्व-भागों को, पेंदे की कमचियों तथा बुनाई की कमचियों को मोड़कर बुनते हैं।

(चित्र १५५)

कभी-कभी किनारा वेणी-गुम्फन-बुनाई के ढंग से या 'घिरावदार' ढंग से पूरा किया जाता है। किन्तु, इसमें खास किनारे बनानेवाले सामान व्यवहृत नहीं किये जाते। इसका किनारा फ्रेम की कमचियों से ही बनाया जाता है।

गोलाकार चँगेली (खाद्य रखने की टोकरी)

चित्र १५५ में प्रदर्शित हाथ में टाँगकर ले जानेवाली चँगेली को गोलाकार टोकरी कहते हैं; क्योंकि इस टोकरी की बगल गोल होती है। यह टोकरी अंडे, सब्जी, फल आदि रखने में व्यवहृत होती है। इसके बनाने में कई तरह की बुनाइयों से काम लिया जाता है।

बुनावट— इसके निचले भाग के पेंदे की बुनाई, चित्र १५४ में प्रदर्शित ढंग से, त्वचा-भाग को ऊपर रखकर, होनी चाहिए। एक ही बुनाई की कमची से बुनने के लिए फ्रेम की कमचियों की संख्या विषम होनी चाहिए। इसलिए या तो फ्रेम की कमचियो में एक

और जोड़ देना चाहिए अथवा केन्द्र में स्थित फ्रेम की एक कमची को दो भागों में बाँट देना चाहिए। पेंदा बुनने की कमचियाँ पतली होनी चाहिए, जो बुननेवाली अन्य कमचियों में से ही चुनी जाती हैं। पेंदे की बुनाई के कोनों पर दो या तीन बार घुमावदार मजबूत बुनाई करनी होती है। इससे बुनाई आसानी से हो सकती है।

गोलाकार बनाना—फ्रेम की कमचियों को मोड़ने के बाद गोलाकार बनानेवाले बाँस का व्यवहार करना चाहिए। पेंदे में अस्थायी रूप से बाहर से बाँस बाँध देते हैं। उसके बाद टोकरी को घुटने पर रखकर, बायें हाथ से फ्रेम की कमचियों को मोड़ते हुए करीब पाँच घुमाव बुनते हैं। तब इसका गोलाकार रूप स्वतः हो जाता है।

इस बात की सावधानी रहनी चाहिए कि फ्रेम की कमचियाँ एक दूसरी से समान दूरी पर हों। किन्तु, कोनों पर फ्रेम की कमचियाँ एक-दूसरी से मिली हों और केन्द्र में अलग-अलग हों।
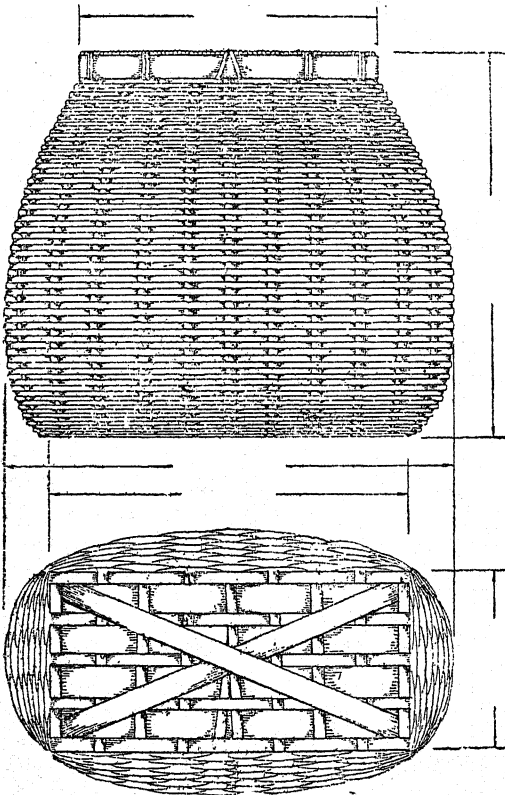
(चित्र १५६)

बुनाईवाली सामग्री को जोड़ते समय गाँठवाले भागों पर 'चार बुनाई' की जाती है। अन्यथा टोकरी की बुनावट वहीं पर खराब हो जायगी।

पर्श्व-बुनाई—टोकरी के पार्श्वों को अगर थोड़ा चौड़ा करके बुना जाय, तो टोकरी देखने में अच्छी लगेगी।

किनारे को पूरा करना—पूर्व के अध्याय में निर्दिष्ट रीति से ही इस टोकरी के किनारे को भी पूरा करते है। इस पूर्ण-क्रिया में भी पहली ही विधि से फ्रेम की कमचियों को लगाना चाहिए और उसे वेणी-गुम्फन-बुनाई की विधि से पूरा कर लेना चाहिए।

मुट्ठा तथा पाँव—चित्र १५५ में प्रदर्शित ढंग से पार्श्व-बुनाई में ही मुट्ठे को लगाते हैं और किनारे के बाँस से सटाकर उसमें काँटी जड़ देते हैं। इसी तरह उक्त चित्र के निचले हिस्से में दिखाये गये तरीके से कोनों पर फाड़े हुए बाँस को घुसाकर पाँव बना देते हैं।

रद्दी कागज रखने की टोकरी

यह टोकरी अनेक ढंग से बनाई जाती है। यह, चित्र १५६ में प्रदर्शित है। यह वर्गाकार बुनाई के आधार पर ही प्रायः बुनी जाती है। वर्गाकार बुनाई के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है।

इसकी बुनाई भी पूर्वोक्त विधि से ही होती है; किन्तु फ्रेम की कमचियाँ ताप द्वारा मोड़ी जाती हैं। इसलिए, इस टोकरी के कोने नुकीले होते हैं। पार्श्व सीधा बुना जाता है और किनारा वेणी-गुम्फन-बुनाई की विधि के द्वारा पूरा होता है।

मछली रखने की टोकरी नं० १

चित्र १५६ में मछली रखने की टोकरी दिखाई गई है। इसके बड़े मुँह पर सूत का बना जाल लगाते हैं। कभी-कभी मछुए के लाभ के खयाल से टोकरी का मुँह छोटा भी बनाया जाता है। इसका किनारा जालीदार घुमाव के द्वारा पूरा किया जाता है। कभी-कभी भाथीनुमा बुनाई के द्वारा भी इसके किनारे को पूरा करते हैं। इसके प्रत्येक अंग की बुनाई के लिए निम्नलिखित तरीके अपनाये जाते हैं—

पेंदे की बुनाई—इसके लिए फ्रेम की कमचियों की संख्या विषम होनी चाहिए।

गोलाकार बनाना—तीन वार बुनने के बाद फ्रेम बनानेवाली कमचियों को मोड़ना चाहिए। अगर पेंदे का व्यास १५/१८ इंच है, तो इसके लिए २/४ इंच पेंदेवाले बाँस का व्यवहार करना चाहिए। पेंदे से करीब ४-५ घर बुनकर तब पार्श्व में छोटी बुनाई करते हैं।

फ्रेम की कमचियों को लगाना—इस काम में भीतरी मोड़ या बाहरी मोड़, जो भी हो, दोनों तरीके ही अच्छे होते हैं।

किनारे को पूरा करना—वेणी-गुम्फन-बुनाई के द्वारा किनारे को बुनकर, बेंत से कई स्थानों पर उसे बाँधकर, पूरा करते हैं।

मछली रखने की टोकरी नं० २

इसमें पूर्व-प्रदर्शित मछली रखने की टोकरी से थोड़ी भिन्नता होती है। इसके भी अन्य भाग ऊपर के समान ही हैं। इसमें केवल इतना ही भेद है कि इस टोकरी का गला पतला होता है, किन्तु मुँह गले से चौड़ा। और, सब बुनाई एक-सी होती है।

पेंदे की बुनाई—फ्रेम की कमचियों की संख्या विषम बना लेनी चाहिए।

गोलाकार पार्श्व-बुनाई—तीन से चार घर चौड़ा बुनकर उसके बाद फ्रेम की कमचियों को मोड़ते हैं। गोलाकार बनाने के लिए बुनाई की पतली कमचियाँ व्यवहार करते हैं और मजबूती से बुनते हैं। आर्ट पेपर पर छपे फलक ३ वाले चित्र में प्रदर्शित ढंग से

गरदनवाले भाग को छोड़कर पार्श्व की बुनाई की जाती है। पार्श्व की बुनाई इस चित्र के निचले हिस्से में दिखाई गई है और गले की बुनाई ऊपरी हिस्से में।

बाँये हाथ से फ्रेम की कमचियों को दबा-दबाकर तथा मोड़कर मजबूती से बुनना चाहिए। इसे फलक ४ वाले चित्र में देखा जा सकता है।

फ्रेम की कमचियों पर पानी छिड़क देना चाहिए, ताकि वह फैल सके और मुलायम रहे तथा बुने जाने पर भी कमचियाँ ढीली नहीं हों।

बुनाई की पतली-पतली कमचियों का व्यवहार करना चाहिए, अर्थात् वर्गाकार सामानों का व्यवहार सर्वोत्तम होता है। फ्रेम के सामानों को बाहर की ओर मोड़कर टोकरी को उलटकर धरती पर रख देते हैं और तब छाती से दबाकर बुनते हैं।

मछली रखने की टोकरी नं० ३

यह टोकरी पहली और दूसरी विधि से बनी टोकरी से भिन्न होती है। उस टोकरी से इसका गला कुछ अधिक चिपटा होता है और किनारे की बुनाई एकबन्धनी होती है। चित्र में प्रदर्शित मछली रखने की यह टोकरी इस प्रकार की टोकरियों में सबसे बड़ी होती है। ऐसी टोकरी के लिए जो बाँस व्यवहार में लाया जाता है, उसकी त्वचा को हटा देते हैं और उसे हल्के भूरे रंग में रँग देते हैं। इसके बाद वर्गाकार पेंदा-बुनाई के द्वारा पेंदे को पूरा करते हैं ओर पार्श्व-बुनाई करते समय अँगरेजी अक्षर X जैसे चिह्न के पास बुनाई की दूसरी कमचियाँ जोड़ी जाती हैं, ताकि पार्श्व के बीच का भाग फैला हुआ रहे। टोकरी की गरदन पर बाँस का घेरा लगा दिया जाता है। इस टोकरी की बुनाई पहले की टोकरियों की अपेक्षा सरल है।

मछली रखने की टोकरी नं० ४

इसका भी स्वरूप पहलेवाली टोकरी के समान ही है; किन्तु इसकी आकृति उससे भिन्न होती है। यह टोकरी मछली रखने की टोकरियों में सबसे बड़ी, ऊँची तथा वर्गाकार होती है। इसमें एक भीतरी ढक्कन भी होता है, जिसमें मछली को गिराने के लिए छोटा-सा छेद रहता है। बाँस की केवल एक गाँठवाली बुनाई की कमचियाँ, गाँठों को छिपाने के लिए, इसकी बुनाई में व्यवहृत होती है तथा पार्श्व के बीचवाले भाग विभिन्न प्रकार के बनाये जाते हैं।

पीठ पर ले जाई जानेवाली मछली की टोकरी

इस टोकरी के बुनने के कई तरीके हैं। यह टोकरी चित्र १५६ वाली टोकरी के सदृश ही होती है। केवल बाहरी भाग के आकार में थोड़ा भेद है। कृषक इस टोकरी में जलपान तथा भोज्य-पदार्थ भी रखकर खेतों पर ले जाते हैं। किसी तरह के खाद्य-पदार्थ ढोने के लिए यह अत्युत्तम है। यह उपर्युक्त नं० ४ वाली टोकरी के समान ही समझी जाती है। इसके बुनने में भी कोई विशेष कठिनाई नहीं है। केवल बाहर से बाँस लगाना ही इसमें विशेष बात होती है, जिससे थोड़ा-सा भेद पड़ जाता है।

इसकी गोलाकार बुनाई के लिए पतली कमचियों का व्यवहार होता है। सिरे के लिए तथा मुँह छोटा बनाने के लिए भी पतली कमचियों का ही व्यवहार करते हैं। त्वचा-भागवाली कमचियों की बनी टोकरी बहुत मजबूत होती है।

पेंदे की बुनाई—त्वचा-भाग से समानान्तर धरातल को और पतली कमचियों से दूसरे भाग को बुनना अच्छा है। इसमें फ्रेम की एक कमची को जोड़कर उसे विषम संख्या में कर लेना चाहिए। पहले कोने पर दो बार मढ़कर बुनते हैं और तब तीन घुमाव बुनकर बगल में फ्रेम की कमचियों को मोड़ देते हैं।

गोलाकार बुनाई—बुनाई की कमचियों को जोर से तानकर तीन बार बुनना पड़ता है। उसके बाद गोलाकार बुनाई आरम्भ होती है और तब मोटे सामान तथा पार्श्व-बुनाई के सामान से बुनते हैं।

पार्श्व-बुनाई—पेंदे से १·८ इंच तक सीधा बुनना चाहिए। उसके बाद फ्रेम की कमचियों को भीतर की ओर मोड़ने का प्रयत्न करते हुए मजबूती से कसा हुआ बुनना चाहिए, जिससे उसका मुँह छोटा हो। छोटे मुँहवाली टोकरी ज्यादा अच्छी लगती है।

फ्रेम की कमचियाँ लगाना तथा किनारे को पूरा करना—फ्रेम की कमचियों को बाहरी मोड़ की विधि से बाँधना चाहिए और किनारे को वेणी-गुम्फन-प्रणाली से पूरा करना चाहिए। इसकी विधि पूर्व भाग के बुनाई-प्रकरण में बतलाई जा चुकी है।

बाहर से बाँस लगाना—भीतर की ओर से काटकर तथा ताप देकर कोने को मोड़ना चाहिए। दोनों छोरों को नुकीला बनाकर किनारे में घुसा देना चाहिए।

वर्गाकार पेंदेवाली व्यावहारिक वस्तु

चौड़े तथा मजबूत किनारेवाले बाँस का व्यवहार कर वर्गाकार टोकरी बनाते हैं और इस टोकरी का बनाना वर्गाकार कार्यों के समान ही होता है। इस तरह की टोकरी को मोदी के यहाँ काम करनेवाले लड़के अधिकतर व्यवहार में लाते हैं।

प्रत्येक घुमाव के लिए नया सामान लगाकर इसके पार्श्व की बुनाई की जाती है। इससे होता यह है कि बाहर से बाँस लगाने में आसानी हो जाती है। इस टोकरी के निर्माण में बाहर से बाँस लगाना और किनारे को पूरा करना—ये दो ही कठिन काम हैं। यह टोकरी दो प्रकार की होती है—वर्गाकार और आयताकार।

इसकी बुनाई के लिए उपयुक्त बाँस—इसकी बुनाई के लिए जिस बाँस से सामान तैयार किया जायगा, वह बाँस ५ से ६ इंच व्यास का होना चाहिए और किनारे तथा बाहर से लगाया जानेवाला बाँस ८ से ९ इंच व्यास का। उससे अधिक या कम होने पर ताप द्वारा मोड़ते समय मोड़ पर से बाँस के चटक जाने का भय सर्वदा बना रहता है।

एक बड़े आकारवाले बाँस से एक मझोली टोकरी बन सकती है और एक दिन में मोटे तौर से कारीगर इस तरह की तीन टोकरियाँ (छोटी, मझोली तथा बड़ी) बना लेता है। अधिक दक्ष और अभ्यस्त कारीगर इससे ज्यादा भी बना सकता है।

उन हिस्सों में, जहाँ ऊपर से बाँस लगाया जाता है, दो समानान्तर बनाये गये भीतरी हिस्से में बाँस को लगाना चाहिए; क्योंकि ये ऊपर से लगाये गये चौड़े बाँस से छिप जाते हैं। अन्य भागों में त्वचा-युक्त पेंदे का बाँस व्यवहार किया जाता है।

पेंदे के लिए बुनाई का सामान—एक सूत चौड़ी 'दो-बुनाई' की कमचियों से निम्न-लिखित बुनाई दो या तीन घुमाव तक करते हैं और तब बाहर लगाये जानेवाले अस्थायी बाँस को व्यास के रूप में लगाते हैं। उसके बाद गोलाकार बनाने के लिए मजबूती से कस-कसकर बुनते हैं।

पार्श्व-बुनाई—पहले छोटी टोकरी के लिए बुनाई की चौड़ी कमचियों को पाँच घुमाव और बड़ी टोकरी के लिए आठ घुमाव बुनते हैं। बुनाई के द्वारा ही पेंदे का आकार निश्चित किया जाता है। किनारा-बुनाई अथवा पार्श्व-बुनाई इसी आकार-प्रकार पर निर्भर करती है।

प्रत्येक घुमाव में नया सामान व्यवहार करना पड़ता है। इसलिए, टोकरी के छोटे पार्श्व में, चार किनारों को और चार छोरों को, फ्रेम बनानेवाले सामान के भीतर मोड़ दिया जाता है। इसके साथ ही एक ही बाँस का बना सामान व्यवहार करने से गिरहें एक ओर भीतर चली जाती हैं और इससे टोकरी देखने में अच्छी लगती है।

(चित्र १५७)

किनारे के नीचे—पार्श्व-बुनाई पूरी हो जाने पर, बाँस के भीतरी भाग की बुनाई के १/४ सामान से किनारे के नीचे तीन घुमाव बुनना चाहिए। उसके बाद किनारे की बुनाई के पास से फ्रेमवाली कमचियों को काट देना चाहिए; क्योंकि इस प्रकार की टोकरी का किनारा बाहरी बाँस के पेंदे से लगाकर मजबूत बना दिया जाता है, जिससे किनारा नहीं टूटता।

किनारे के नीचे, चारों कोनों पर, चित्र १५७ में प्रदर्शित ढंग
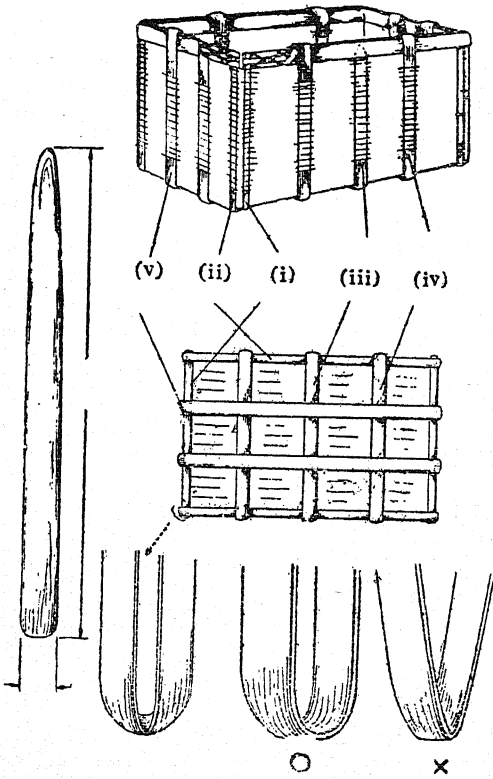
से बुनाई करते हैं और किनारा बनाने के लिए तीन सूत चौड़ा स्थान खाली छोड़ देते हैं। इसी खाली स्थान पर टोकरी का किनारा पूरा किया जाता है।

किनारा—इस टोकरी में किनारे का तथा किनारे से ऊपर का बाँस एक ही समय में लगाया जाता है। किनारे के बाहरी बाँस को आरी से ठीक आकार का काट देते हैं और भीतर का भाग पतला काटकर तार से बाँध देते हैं। लेकिन, ऐसा बाँधा जाना चाहिए, जिससे वह भाग बाहर से लगाये गये बाँस से छिप जाय। भीतरी किनारे का जोड़ा हुआ भाग, बाहरी किनारेवाले भाग के विपरीत मोड़ा जाता है और बाहरी किनारे पर बाँधे गये भागों के साथ मिलाकर पुनः मोड़ दिया जाता है। उसके बाद पार्श्व के दो भागों पर तार से बाँधते हैं। छोटा मुँह भी बनाते हैं, जिससे होकर, छोटे पार्श्व को और किनारे को, बेंत या बाँस से मढ़ते हैं।

बाहरी बाँस लगाना—चित्र १५७ में दिखाये गये क्रम से मोड़े हुए बाँस को इसमें अलग से लगाते हैं।

बुनाई—इसकी सभी बुनाई उसी तरह की होती है, जो टिफिन केरियर आदि टोकरी की बुनाई में बरती जाती है।

(चित्र १५८)

कुटकी बुनाई के द्वारा वर्गाकार रद्दी की टोकरी

कुटकी बुनाई द्वारा बनी वस्तुएँ, बेड़ा-बुनाई द्वारा बुने गये पार्श्व तथा वर्गाकार पेंदा-बुनाई के सामानों से ही बनाई जाती हैं। कुटकी नाम इसलिए पड़ा है कि इस काम के लिए बाँस को थूर करके या बड़ी कागज की कूट की तरह चौड़ा करके काम में लाया जाता है। किन्तु, ऐसा करते समय इस बात का खयाल रखा जाता है कि बाँस की फट्टियाँ हर हालत में अलग नहीं होने पावें।
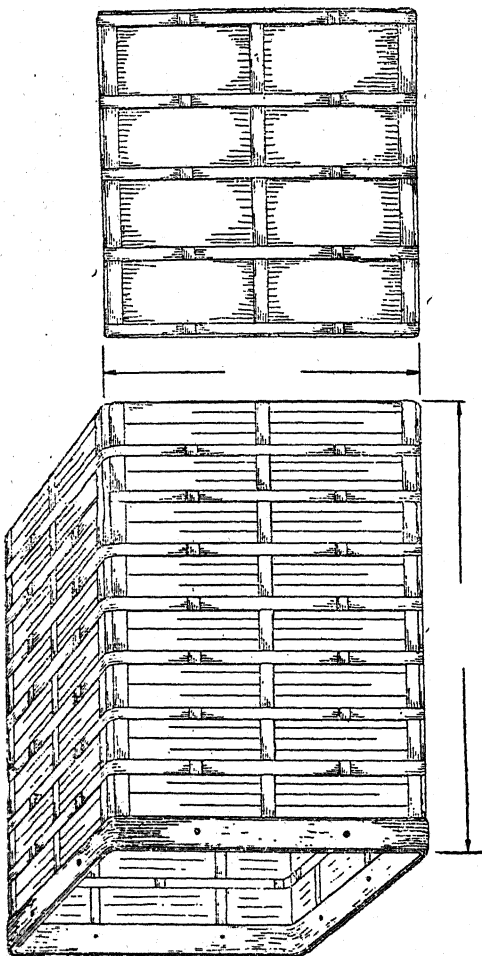
चित्र १५८ के अनुसार पेंदेवाली सामग्री से तथा फ्रेमवाली कमचियों से भी पेंदे को बुनना चाहिए। चारों पार्श्व बुनाई की कमचियों से बुने जाते हैं तथा कुटकी बाँस से पेंदे को बुनते हैं। कुटकी के छोरों को बाँस के फ्रेम से चारों तरफ छिपा देते हैं। इस कारण, इस टोकरी के बनाने के लिए बाँस को ठीक आकार में पहले ही काट लेते हैं और तब बनाते हैं।
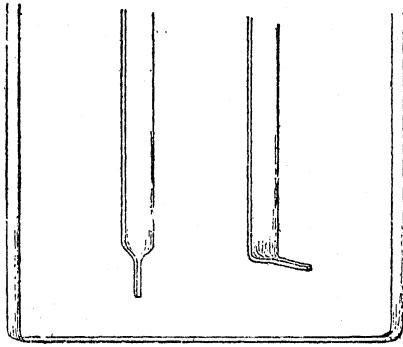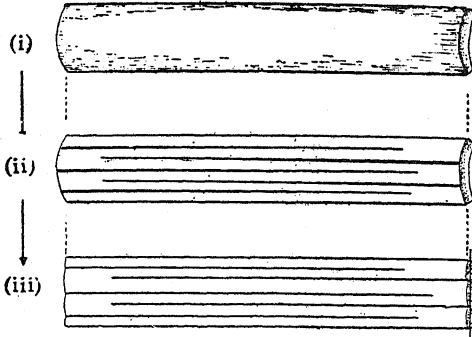
(चित्र १५९)

इसकी बुनाई बाँस से बननेवाली सभी वस्तुओं की बुनाई से सरल होती है। अच्छे कारीगर द्वारा बुने जाने पर ये और भी अच्छी दीख पड़ती हैं। चित्र १५८ में रद्दी कागज रखने की एक टोकरी दिखाई गई है।

फ्रेम का सामान--कुटकी बुनाई में कभी-कभी फ्रेम बनानेवाले सामान को पतली कमचियाँ कहते हैं। कुटकी बाँस के समानान्तर ही फ्रेम बनाने के सामान को भी लगाते हैं। पेंदा बनाने के लिए फ्रेमवाले इस सामान को तिरछे लगे फ्रेम के सामानों के द्वारा बीच से दबा दिया जाता है। सभी फ्रेमवाली कमचियों को ताप द्वारा मोड़ भी देते हैं। ताप द्वारा मोड़ने की प्रणाली पहले बतलाई जा चुकी है।

कुटकी बाँस--चित्र १५९ में दिखाई गई रीति के अनुसार बाँस को दाहिनी ओर से तीन भागों में बाँटते हैं। लेकिन, उसके दोनों छोर जुटे ही रहते हैं। फिर, उन विभक्त भागों को दो-दो भागों में बाँट देते हैं, लेकिन उनका भी छोर सटा ही रहना चाहिए।

उसके बाद इस बाँस को ईप्सित मुटाई में चीर लेते हैं। इन चीरों को रँग देने पर टोकरी देखने में बहुत सुन्दर लगती है।

कोने पर के बाँस--कभी-कभी इस बाँस को 'टेढ़ा बाँस' कहते हैं। इसे भी चित्र १५९ के निचले भाग में दिखाया गया है। यह बाँस सिरे पर एक से डेढ़ इंच लम्बाई में मोड़ा गया है और तब डेढ़ सूत चौड़ा काटकर कोनों पर घुसेड़ दिया जाता है।

किनारे का बाँस--वर्गाकार कार्य के समान ही बाहरी तथा भीतरी किनारेवाले बाँस को वर्गाकार रूप में मोड़कर काम पूरा कर दिया जाता है।

बुनाई की सामग्री--इस काम में आनेवाली एक घेरे के लिए जो कमचियाँ लगती है, वे लम्बी होनी चाहिए। अगर ये कमचियाँ धुआँ दिये हुए बाँस की बनी होंगी, तो इनका धरातल रंगीन रेखा की तरह अत्यन्त सुन्दर दीख पड़ेगा। कमचियों के बचे हुए भाग को काट देना पड़ता है, जिससे बुनाई सुन्दर मालूम पड़ती है।
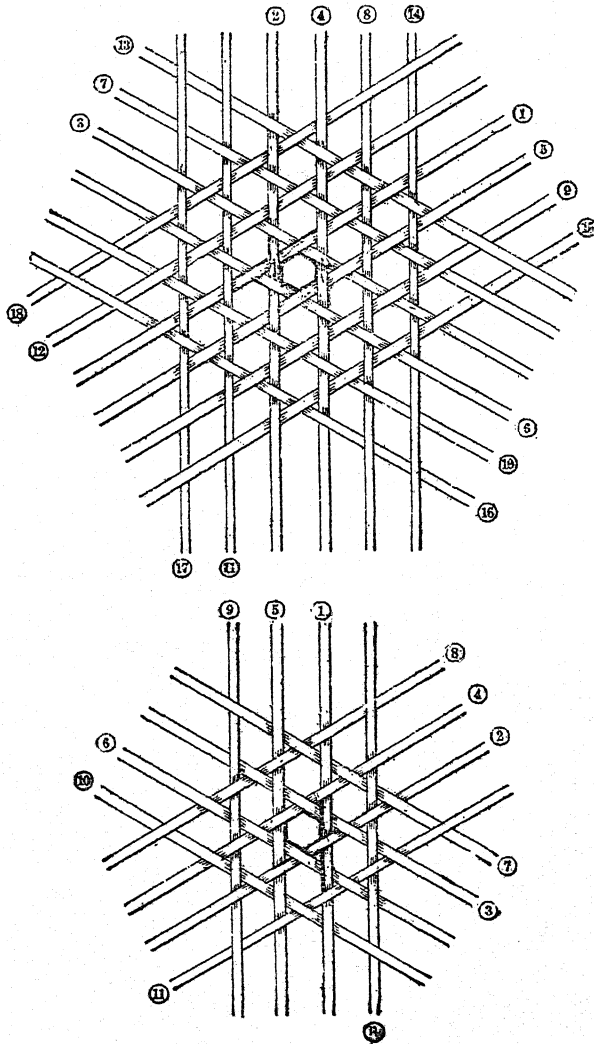
(चित्र १६०)

पेंदे का निर्माण--वर्गाकार पेंदे के समान ही त्वचावाली फ्रेम की कमचियाँ दोनों सिरों पर रखी जाती हैं और तब त्वचावाले तथा भीतरी भाग के सामान को एक के बाद दूसरा सिलसिला लगाकर बैठाते हैं।

पार्श्व--कोनों पर लगनेवाले बाँस को पहले लगा देना पड़ता है और तब कुटकी बुनाई करनी पड़ती है। उसके बाद बुनाई की कमचियों से कस-कसकर मजबूती से बुनना चाहिए। इस तरह की बुनाई में कुटकी बाँस के छोर, कोने पर के बाँस के पीछे, छिप जाते हैं। कोने के फ्रेम बनाने के सामान, कोने के बाँस के पास ही सटे रहने चाहिए। उसके बाद दूसरी तथा तीसरी बुनाई की जाती है।

किनारे की पूर्ण-क्रिया--किनारे पर लगने

वाले बाँस के सिरों को पतला बना देते हैं। बाद, बाँधने के समय उसे काट देते हैं। इसके अतिरिक्त भीतरी तथा बाहरी किनारों को मोड़ देते हैं। इतनी क्रिया समाप्त होने के बाद मध्य किनारे के तथा कोने के बाँस में छेद करके उनमें काँटी ठोक देते हैं। भीतरी भाग में रखनेवाली चीजों की सुरक्षा के लिए मोटा कागज या कपड़ा साट देना आवश्यक है।

बाजार करने की टोकरी

यह पेटी ढक्कन और मुट्ठे के साथ बनाई जाती है। दूकान से वस्तुएँ खरीद करने में इसका व्यवहार सुविधाजनक होता है। महिलाएँ अधिकतर इसे व्यवहार में लाती हैं।

उपर्युक्त रद्दी कागज रखनेवाली टोकरी के बनाने की समस्त प्रक्रिया इसमें भी लागू होती है। अन्तर केवल यही है कि इसमें एक ढक्कन होता है और पकड़ने के लिए मूठ भी लगाई जाती है।

षट्कोण जालीदार बुनाई—इस बुनाई का जाल षड्भुजाकर होता है, इसलिए इस बुनाई को षट्कोण जालीदार बुनाई कहते हैं। बहुतायत ऐसी टोकरियाँ, प्रायः सभी कार्यों में व्यवहृत होती हैं और इनकी बुनाई अनेक प्रकार की बनी अन्य वस्तुओं के बनाने के काम में आती हैं। पहले-पहल फ्रेम खड़ा करने या बुनाई के काम की प्रक्रिया चित्र १६१ के अनुसार लागू होती है।

कार्य के हिसाब से इन टोकरियों का निम्नलिखित रूप में वर्गीकरण होता है—

(१) **षट्कोणवाले फ्रेम की बनी टोकरियाँ**—(क) साधारण कोण के फ्रेमवाली। (ख) अंडाकार, जिसमें पेंदे की बुनाई होती है। (ग) कोन मारकर बनाई गई। (घ) सर्प-टोकरी।

(२) **षट्कोण जालीदार को ढकने या भरनेवाली बुनाई**—(क) पटुए के पत्ते की बुनाई, जिसमें एक जालीवाला ढक्कन होता है। (ख) पटुए के पत्ते की बुनाई, जिसमें दो जालीवाला ढक्कन होता है। (ग) सर्वसाधारण पटुए के पत्तेवाली सादी बुनाई।
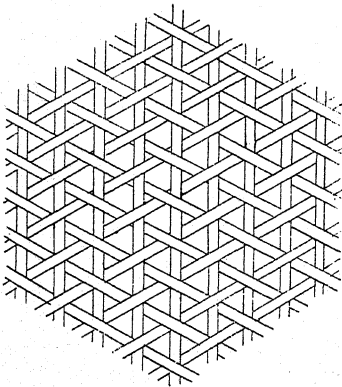
(चित्र १६१)

षट्कोण फ्रेम-बुनाई में पेंदे तथा पार्श्व-बुनाई के लिए बिलकुल एक ही चौड़ाई तथा मुटाई के सामान व्यवहार में लाये जाते हैं। इन टोकरियों का आकार, फ्रेम बनानेवाले सामान की संख्या तथा पेंदे की बुनाईवाली फ्रेम-सामग्री की संख्या द्वारा निश्चित किया
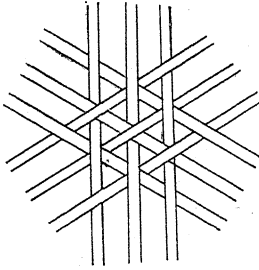
(चित्र १६२)
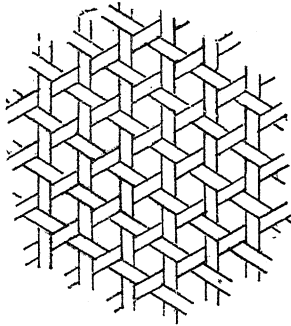
(चित्र १६३)
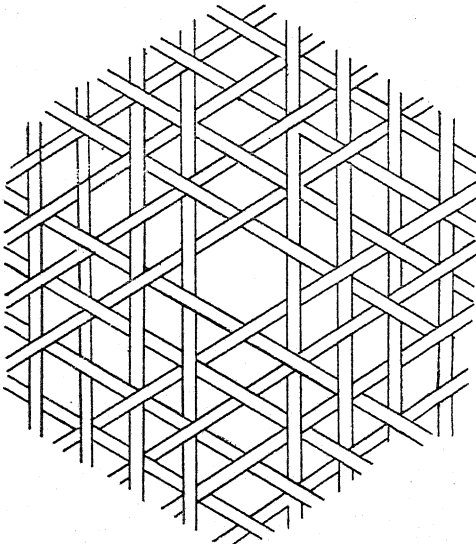
(चित्र १६४)

जाता है। ऐसी टोकरियों को चार फ्रेम और षट्कोण फ्रेम-टोकरी कहते हैं।

षट्कोण फ्रेम-बुनाई की मूलभूत बातें—फ्रेम बनाने की कमचियों तथा बुनाई की कमचियों के एक ही आकार होते हैं। टोकरी के आकार को देखते हुए फ्रेमवाली कमचियों की संख्या में कमी-बेशी की जाती है; लेकिन वे सम संख्या में ही होती हैं।

पेंदे की बुनाई—चौरस बुनाई चित्र १६० में दिखाई गई है और दिखाये गये चित्र १६१, १६२, १६३ और १६४ के अनुसार ही क्रमशः यह बुनाई की जाती है। लेकिन, प्रथम षट्कोण बनाने में फ्रेम की कमचियों के क्रमानुसार उक्त चित्र १६० के दोनों पहलुओं से सहायता लेनी चाहिए।

फ्रेम की कमचियों की संख्या बढ़ाकर बुनना नौसिखुओं के लिए कठिन है, जो चित्र १६५ में प्रदर्शित है। लेकिन, थोड़ा अनुभव हो जाने पर यह काम उनके लिए भी कठिन नहीं रहता है।

षट्कोण फ्रेम-बुनाई का रहस्य इस बात में है कि पहले कमचियों को दबाना चाहिए और तब उठाकर भीतर घुसेड़ना चाहिए। फ्रेम की
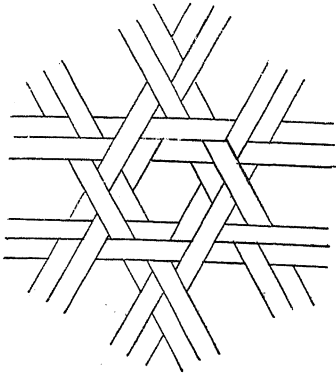
(चित्र १६५)
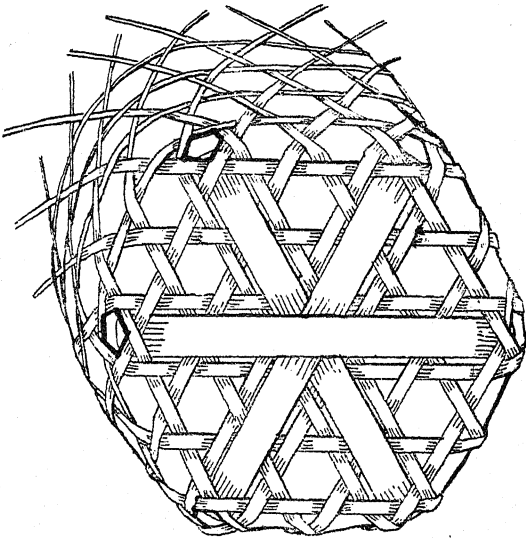
(चित्र १६६)

कमचियों को एक-दूसरी के आमने-सामने पार करते समय ऊपर तथा नीचे लगाते जाना चाहिए।

षट्कोण फ्रेम की गोलाकार पार्श्व-बुनाई—यह ऊपर में बताया जा चुका है कि षट्कोण जालीदार बुनाई केवल चौरस बुनाई है। टोकरी बनाने के लिए पार्श्व-बुनाई आवश्यक है। उसकी विधियाँ नीचे दी जाती हैं—

(क) पेंदे में अस्थायी रूप से बाहरी बाँस घुसेड़ते हैं। चित्र १६६ में दिखाये गये तरीके से ये अस्थायी बाहरी बाँस घुसेड़े जाते हैं और वैसा करने में पेंदे का केन्द्र-भाग चौरस के बजाय पतला कर दिया जाता है। इसका परिणाम उत्तम होता है।

(ख) गोलाकार बुनाई करने के पूर्व फ्रेम की कमचियों को कोने पर मोड़ लेते हैं। यह बात भी पहले ही बताई जा चुकी है।

(ग) उसके बाद फ्रेम की कमचियों को मोड़कर पेंदे के समान ही बुनाई की कमचियों से इसे बुनना चाहिए। जब गोलाकार बुनाई पूरी हो जाय, तब पेंदे के षट्कोण के प्रत्येक पंचमुख जाली में षड्भुजाकार जाली बन जायगी। उन पंचभुजाकार जाल के ६ फ्रेम पर षड्भुजाकार जाल बनाये जाते हैं और अगर जाल यथासंभव छोटे हुए, तो गोलाकार बनाया जाना बहुत सुन्दर लगेगा। इस विधि की सारी चीजें चित्र १६६ में देखी जा सकती हैं।

(घ) बुनाई की कमचियों को लगातार जोड़वाले भागों के करीब तीन इंच ऊपर मोड़ देते हैं और उन्हें फ्रेम की कमचियों में घुसेड़ देते हैं।

(ङ) गोलाकार किये गये भाग को प्रथम बुनाई की सामग्री से बुनने से, गोलाकार बनाने का कार्य प्रायः पूरा हो जाता है और दूसरी बुनाई से षड्भुजाकार जाल के आकार का पेंदा बनाने का प्रयत्न करना पड़ता है। तीसरी बुनाई पूरी हो जाने पर गोलाकार बनाना भी पूरा हो जाता है।

(च) पार्श्व-बुनाई सीधी करने के लिए ठीक उसी आकार की बुनाई की कमचियों से बुनना चाहिए।

(छ) पार्श्व-बुनाई अच्छी हो, इसके लिए पेंदे के आकार का जाल बनाना चाहिए। नये सीखनेवालों के लिए एक ही प्रकार का जाल बनाना कठिन होता है, जिससे वे अक्सर बड़ा जाल बना देते हैं।

(ज) इन टोकरियों की ऊँचाई, बुनाई की सामग्री की संख्या द्वारा निश्चित की जाती है। सामान्यतः टोकरियों में फ्रेम बनाने के सामान तथा बुनाई के सामान की संख्या एक ही होती है।

(झ) जब यह टोकरी अपर्याप्त बुनने की सामग्री से तैयार की जाती है, तब ऐसी अवस्था में फ्रेम की दो-दो कमचियाँ कम कर दी जाती हैं।

(ञ) पार्श्व की तीसरी बुनाई समाप्त कर लेने पर टोकरी को वर्गाकार जालीदार बुनाई से बुनते हैं, जिसके फ्रेम बनने की कमचियाँ भी तीन बार ऊपर-नीचे होती हैं।

(ट) इतना कार्य सम्पन्न हो जाने के बाद बुनाई की कमचियों से पुनः बुनना चाहिए और फ्रेम लगा हुआ षट्कोण जाल भी बनाना चाहिए। तदनन्तर फिर चतुष्कोण बुनाई को दुहराना चाहिए।

(ठ) टोकरी की ऊँचाई के अनुसार चतुष्कोण बुनाई एक या दो बार बुनना पड़ता है और ऐसा करने से टोकरी की मजबूती बनी रहती है।

(ड) फ्रेम की कमचियों को लगाने का तरीका पिछले पृष्ठों में बतलाया गया है, जो चित्र १२७ में प्रदर्शित है।

किनारे को पूरा करना—इन टोकरियों के किनारे को पूरा करने के लिए कमचियों को ऊपर से घुमाकर फिर नीचे लाकर घुसेड़ देते हैं। यह प्रक्रिया सर्वत्र व्यवहार में लाई जाती है। कभी-कभी तार से भी किनारे को बाँधते या बेंत लगाकर और उसे सटा करके लगातार घुमा-घुमाकर बाँध देते हैं।

षट्कोण जालीदार टोकरी के किनारे को घुमाव द्वारा पूरा करने में मढ़ाईवाली सामग्री को भीतर की ओर से बाहर दाहिनी ओर मोड़ते हुए घुमाव बनाते हैं।

इसकी पूर्ण-क्रिया निम्नांकित रीति से करते हैं—मढ़ाई के सामान के बाँये छोर का नीचेवाले किनारे के बाँस के नीचे होकर दो घुमाव बनाते हैं। उसके बाद भीतरवाले किनारे के बाँस को मिलाकर एक घुमाव देते हैं। फिर, बाहरी किनारेवाले बाँस को मिलाकर दाहिनी ओर घुमाव बनाते हैं।
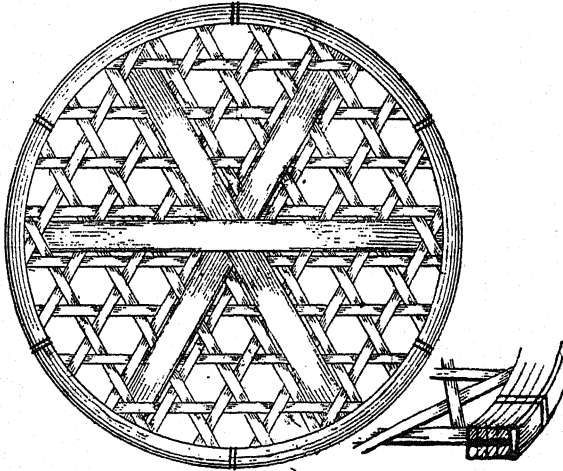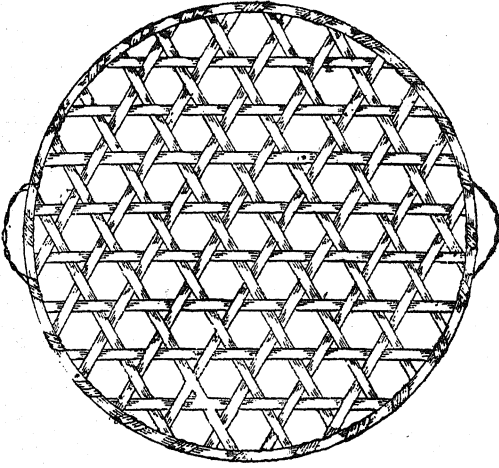
(चित्र १६७)

पूर्ण हुए छोर को, बाहरी किनारे-वाले बाँस पर दो घुमाव बनाकर, जकड़ दिया जाता है। इसके अतिरिक्त ऐसी भी टोकरियाँ हैं, जिनमें सर्वत्र षट्कोण जाल बनाये जाते हैं।

गोलाकार वाष्प-स्थाली

चित्र १६७ में यह स्थाली दिखाई गई है। यह शकरकंद तथा चावल का पिठा उबालने के काम में आती है। उबालने की प्रक्रिया यह है कि पहले चूल्हे पर एक बटलोही में पानी रख-कर नीचे से आग जलाते हैं। फिर, बटलोही के मुँह पर इस स्थाली को रख देते हैं और तब इसमें उबालनेवाला सामान सजा देते हैं। बटलोही में रखे गरम पानी के वाष्प से कुछ देर में सामान पक जाता है। स्थाली का आकार बटलोही के मुँह के आकार से निश्चित किया जाता है। स्थाली के पेंदे का व्यास बटलोही के मुँह के व्यास के बराबर होना चाहिए।

निर्माण—केवल चौरस षट्कोण जाल बुनकर गोलाकार बना देते हैं।

(१) घुमाववाले ढंग से किनारा पूरा करने के लिए किनारे का घेरा स्थाली के आकार के अनुसार बनाते हैं और उसे चौरस बुनाई पर रख देते हैं। फ्रेम के सामान के

किनारे के घेरे से बढ़े भागों को अनेक भागों में विभक्त कर लेते हैं अथवा मढ़ाई के सामान से घुमाव बनाते हैं। अन्त में हैंडिल को जोड़ देते हैं। हैंडिल का भाग चित्र १६७ के ऊपरी हिस्से में दिखाया गया है।

(२) शकरकंद को उबालने के लिए स्थाली बहुत मजबूत बनाई जाती है। इसके लिए बाहरी हिस्से में अलग से चौड़े बाँस लगाये जाते हैं, जिसे उक्त चित्र के निचले भाग में दिखाया गया है। फिर, किनारे को वेणी-गुम्फन-बुनाई से पूरा करते हैं।

(३) चौरस बुन लेने के बाद उसे वृत्ताकार रूप में काट लेना चाहिए।

(४) किनारे के बाँस के छोरों को एक तरह का बनाकर उन्हें लपेट देते हैं। तार मढ़ने के लिए अँगरेजी अक्षर V के सदृश बनाकर बुनाई के बाहरी भाग में उसे जोड़ देते हैं। उसके बाद सिरे के बाँस को नीचे और ऊपर लगाते हैं और तार से बाँध देते हैं। किनारेवाले घेरे में तीन बाहरी बाँस घुसेड़ते हैं।

सबसे सरल षट्कोण जालवाली टोकरी, रद्दी कागजों की टोकरी और फल की टोकरी होती है।

षट्कोण जालवाली टोकरियाँ अनेक आकार की तथा भद्दी और सुन्दर—दोनों किस्म की बनाई जाती हैं। लेकिन, उनमें सबसे सरल टोकरियाँ वे होती हैं, जिनमें सिरे का बाँस लगाये बिना किनारा पूरा किया जाता है और भीतर-बाहर किनारेवाला बाँस लगाकर तार से जोड़ दिया जाता है। प्रत्येक जाल को, दाहिनी ओर एक घुमाव बनाकर अथवा मढ़ाईवाले बाँस से दो घुमाव बुनकर या दो बाँसों से समानान्तर बुनकर बनाते हैं।

सीखनेवालों के लिए सिरों को बाँधकर तथा घेरा बनाकर और बाहरी किनारे के बाँस को घुसेड़कर यह टोकरी बनाना ज्यादा आसान होता है।

भीतरी किनारेवाले बाँस के स्थान पर बाँस का भीतरी भाग व्यवहार करना बुरा नहीं होता है। अच्छी टोकरी बनाने के लिए भीतरी किनारेवाले बाँस के सिरों को चौरस रूप में पूरा करते हैं, जिससे जोड़ोंवाले भाग सुन्दर लगते हैं।

सौदा करने की मूठवाली चँगेली

इसे चित्र १३० में दिखाया गया है। यह फूलबाँस से बनाई जाती है और यह अपनी बुनावट के कारण काफी मजबूत तथा टिकाऊ होती है।

फूलबाँस को चार भागों में बाँटकर उसे चीर देते हैं और तब उसके त्वचावाले भाग की कमचियों को बुनाई के काम में लाते हैं।

बुनाई की कमचियाँ तैयार करने के लिए वे बाँस अच्छे होते हैं, जो लम्बे नहीं होते। लेकिन, मढ़ाई के काम में आनेवाली कमचियों के लिए लम्बा ही बाँस होना चाहिए। अतएव, मढ़ाई के काम को छोड़कर ४ फुट लम्बाईवाला बाँस काफी है।

पेंदे की बुनाई—फ्रेमवाली १४ कमचियों पर एक फुट चौड़ी बुनाई करनी चाहिए।

(चित्र १६८)

गोलाकार पार्श्व-बुनाई—बाहरी बाँस घुसेड़कर गोलाकार बुनना चाहिए और पार्श्व में ६ चरण तक बुनकर ५ इंच ऊँचा बुनना चाहिए।

पटुए के पत्ते जैसी बुनाई—चित्र १६८ (क) वाले चित्र में सिरे की बुनाई के बाहरी फ्रेम की कमचियों के भाग घुमाकर भीतर मोड़ दिये गये हैं और षट्कोण जाल के मध्य से समानान्तर में फ्रेम की कमचियाँ ले जाई गई हैं। फिर, (ख) में भीतर के फ्रेम की कमचियाँ बाहर मोड़कर जाल के मध्य तक बाईं ओर ले जाई गई हैं। इसके पूर्व ही (क) के फ्रेम की कमचियों को प्रत्येक जाल के बीच में घुसा दिया गया है। इसलिए, यह बुनाई पटुए के पत्ते जैसी लगती है।

पेंदे का किनारा—फ्रेम की कमचियाँ, जो पेंदे की बुनाई से ऊपर तक ही रहती हैं, दो चरण बुनी जाती हैं और अन्तिम चरण नीचेवाले पेंदे के किनारे के लिए व्यवहार होता है। पेंदावाला हिस्सा उक्त चित्र के (ग) वाले भाग में प्रदर्शित है।

सामान्य रीति से फ्रेम की कमचियों को लगाते हैं अथवा मढ़ाईवाली कमचियों से घुमाव देकर भी फ्रेम की कमचियाँ लगा देते हैं।

मढ़ाईवाली कमचियों के ८ प्रथम छोर से नीचेवाले किनारे के बाँस को दो घुमाव बुनते हैं। पश्चात्, भीतरी किनारे का एक घुमाव बुनने के बाद मढ़नेवाली कमचियों से बाहरी किनारे-वाला बाँस जोड़ दिया जाता है और तब कमचियों को बाहरी बाँस के बीच लगाया जाता है। उसके वाद किनारे की घुमावदार बुनाई में उसे घुसेड़ दिया जाता है।

रद्दी कागज की टोकरी

चित्र में यथा-प्रदर्शित रद्दी कागज की टोकरी पटुए के पत्तेवाली की ही एक क्रिया है। कागज रखने की रद्दी टोकरी के बारे में पहले कहा गया है। फिर भी, इसकी बनावट में कुछ विशेषता होने के कारण पुनः इसका उल्लेख किया गया है। बुनाई की कमचियों के रूप में उसका व्यवहार हुआ है। दूसरी ओर बुनाई की झुकी हुई कमचियों को फ्रेम की कमचियों के रूप में व्यवहृत करते हैं। इसके किनारे को ऊपर में चौड़ी कमचियाँ देकर पूरा करते हैं।

पेंदे की बुनाई—इसे चित्र १६८ में दिखाये गये रूप के अनुसार ही बुनना चाहिए। यह बताया जा चुका है।

गोलाकार पार्श्व-बुनाई—पेंदे में बाहरी बाँस घुसेड़ने के बाद फ्रेमवाली कमचियों को मोड़ना चाहिए। फ्रेम के सामान के रूप में बाईं ओर झुकी हुई कमचियों को मोड़ना चाहिए तथा बुनाई के सामान के रूप में दाहिनी ओर झुकी हुई कमचियों को। दाहिनी ओर से ऊपर उठाते हुए किनारे का जाल बुनना चाहिए। अभीष्ट ऊँचाई तक बुन लेने के बाद, बुनाई को बदल देना चाहिए और बुनाई के सामान के छोरों को फ्रेम के सामान के भीतर घुसेड़ देना चाहिए। उसके बाद दो घुमाव तक 'रस्सा-बुनाई' करनी चाहिए। इसी बुनाई पर टोकरी में बाहरी बाँस लगाते हैं, जिससे बुनाई की कमचियाँ ढीली नहीं होती। उसके बाद जैसा चित्र में दिया गया है, 'रस्सा-बुनाई' के बीच चौड़ी कमचियों से दो चरण बुना जाता है और ४ घुमाव रस्सा-बुनाई बुनी जाती है।

किनारे को पूरा करना—छिपाकर बुननेवाली बुनाई को बतलाया जा चुका है। इस टोकरी में भीतर की ओर प्रत्येक 'दो बाँस' पर नीचेवाले ४ बाँस घुसेड़ते हैं।

पूर्ण-क्रिया—तैयार हो जाने के बाद ये टोकरियाँ रँगी जाती हैं। रँगने की विधि बताई जा चुकी है।

फूलपेंदा-बुनाई द्वारा बाँस की वस्तुएँ

फूलपेंदा-बुनाई एक प्रकार से पेंदे की बुनाई है, जिसमें फ्रेम की कमचियाँ मोड़ दी जाती हैं और मकड़े के जाल के समान बुनाई की कमचियों से बुनाई की जाती है। यह गुलदाउदी के फूल के समान देखने में लगता है। इसलिए इस बुनाई को फूलपेंदा-बुनाई कहते हैं।

बाँस की बनी वस्तुओं में पेंदे की यह बुनाई बहुतायत से व्यवहृत होती है और यह बुनाई ज्यादातर ढक्कन, पेंदा आदि के बुनने के काम में आती है। इस तरह की बुनाई नौसिखुओं के लिए कठिन होती है। उसके लिए निम्नलिखित विधि ठीक होती है।

सर्वप्रथम बाँस का गोल साँचा बना लिया जाता है और उसमें व्यास के रूप में फ्रेमवाली कमचियाँ लगा दी जाती हैं। साँचा अस्थायी रूप में बना लिया जाता है। बाद, बुनाई की कमचियों से बुना जाता है। पेंदे की बुनाई खत्म हो जाने पर गोल साँचे
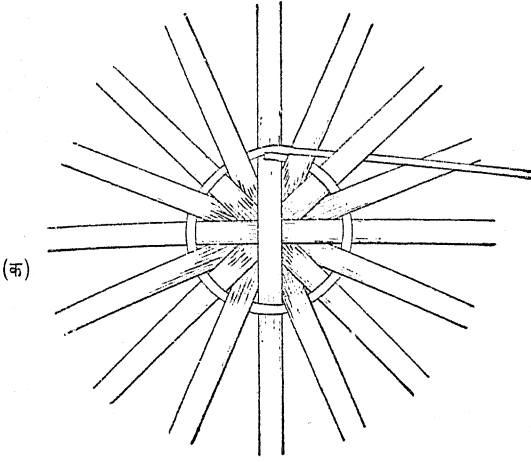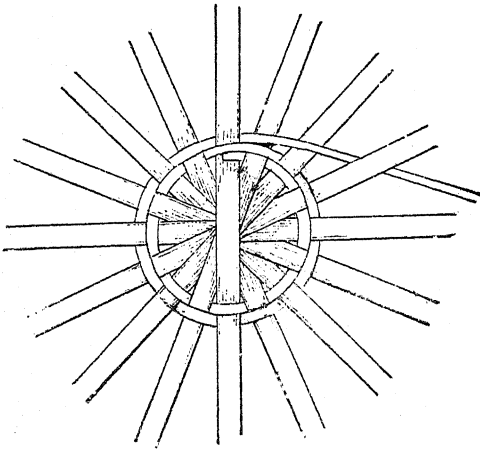
(चित्र १६६)

को काटकर हटा देते हैं। बुनाई को आसान बनाने के लिए सर्वप्रथम बाँस के, त्वचा से नीचे, बायें भाग को थोड़ा काटकर पतला बनाकर बुनाई की कमचियाँ बनाते हैं और केन्द्र में फ्रेम की कमचियों को उस स्थान पर पतला काटते हैं, जहाँ मोड़ करना होता है।

फ्रेम की कमचियाँ व्यास के रूप में लगाई जाती हैं और परिधि पर उनकी संख्या सम होती है। एक कमची से जालीदार पिंजड़ा-बुनाई नहीं हो सकती। एक ही बुनाई की कमचियों से निम्नलिखित तरीके से यह बुनाई की जाती है :—

(१) बुनाई की कमची एक भाग में फ्रेम की दो कमचियों के ऊपर होकर जाती है।

(२) फ्रेम की एक कमची को दो भागों में विभक्त कर देते हैं।

(३) फ्रेम की एक कमची को बढ़ाकर बुनाई करते हैं।

इसका विस्तृत तरीका जालीदार पिंजड़ा बुनाई के क्रम में बताया जा चुका है। अब यहाँ फूलपेंदा बुनाई का तरीका दिया जाता है। फ्रेमवाली कमचियों से फ्रेम बनाने का पहला तरीका यह है कि दो फ्रेम की कमचियों को आर-पार करके मोड़ देते हैं। बुनाई की कमचियों से एक बार बुन लेने पर फ्रेम की कमचियाँ लगाई जाती हैं। यह विधि बाँस की बनी वस्तुओं में बहुतायत से व्यवहृत होती है।

दूसरा तरीका यह है कि पंखे के आकार में फ्रेम बनाने पर वह पंखा-फूलपेंदा कहलाता है।

चित्र १६६ के निचले भाग में दिखाये गये ढंग से फ्रेम की कमचियाँ बैठाते हैं। इन फ्रेम की कमचियों को लगाने के लिए बुनाई की कमचियों को दो घुमाव तक बुनते हैं। यह विधि थोड़ी कठिन है। इसका केन्द्र उक्त चित्र 'क' से कुछ अधिक चौड़ा होने पर कलात्मक ढंग का होता है।

पेंदे के व्यास के अनुसार 'ख' में फ्रेम की कमचियाँ एक या दो बार लगाते हैं।

छोटी टोकरी तो इकहरे फ्रेम से ही बन जायगी; लेकिन बड़ी टोकरी के लिए दुहरा फ्रेम लगाना जरूरी होता है; क्योंकि पेंदे के फ्रेमवाली कमचियाँ सूर्य-किरणों के आकार में विकीर्ण रूप में लगाई जाती हैं। इस कारण, छोर पर बाँसों के बीच की दूरी अधिक हो जाती है, जिससे उस समय जालीदार पिंजड़ा-बुनाई नहीं हो सकती। फिर भी, एक ही समय में बहुत-से फ्रेम की कमचियों को लगाकर पहली बुनाई नहीं की जा सकती; इसलिए दोहरा फ्रेम लगाना जरूरी होता है।

(चित्र १७०)
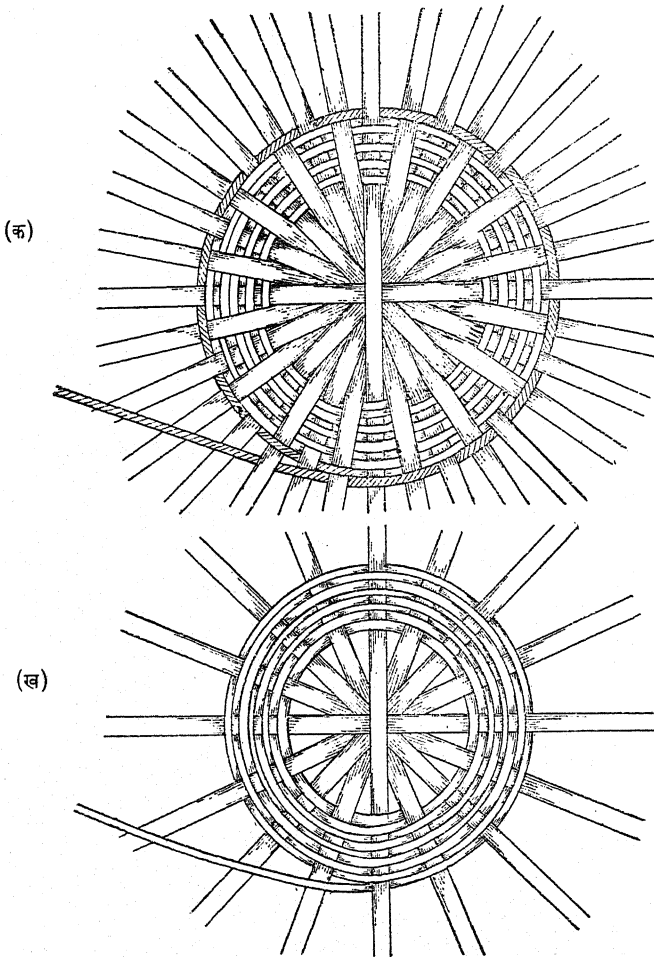
पहले आधे फ्रेम की कमचियाँ लगाई जाती हैं। बाद, जालीदार पिंजड़ानुमा बुनाई की जाती है। कुछ घुमावों के बाद जब बुनना कठिन हो जाता है, तब शेष फ्रेम की कमचियों को घुसा करके बड़े व्यास में बुनते हैं। इसके लिए चित्र १७० का 'ख' भाग देखिए।

आधे फ्रेम की कमचियों से बुनते समय बुनाई की कमचियाँ तथा फ्रेम की कमचियों के बीच जो त्रिभुजाकार रिक्त स्थान (चित्र १६६ के अनुसार) रह जाते हैं, वे ऐसे होने चाहिए, जिनके अन्दर से फ्रेम की कमचियाँ घुसेड़ी जा सकें। लेकिन, बुनाई के बाद कमचियों को काटकर चौड़ा बना लेना भी अच्छा होता है। करीब दो इंच चौड़ा पेंदा बुन लेने के बाद फ्रेम की शेष कमचियाँ उसमें घुसेड़ी जाती हैं।

इस दुहरे पेंदे के व्यवहार से प्रथम बुनाई बहुत आसान हो जाती है और उसे बुनकर बहुत बड़ा भी बना सकते हैं। ऊपर दी गई विधि जालीदार-पिंजड़ानुमा बुनाई की ही है। किसी भी बुनाई की विधि में पेंदा खोखला रहना चाहिए, इसलिए फ्रेम की कमचियाँ कुछ ऐसी होनी चाहिए, जो टेढ़ी की जा सकें।

(चित्र १७१)

जाल-सदृश बुनाईवाली वस्तुएँ

जाल-बुनाईवाली बाँस की वस्तुएँ वर्गाकार जाल-बुनाई के समान होती हैं, लेकिन इसमें बुनाई की कमचियों को बहुत सटा-सटाकर बुनते हैं। इस कारण छिद्र नहीं दीख पड़ते। बाँस की बनी वस्तुओं में यह बुनाई बहुतायत से व्यवहृत होती है।

इस विधि से बननेवाली अनेक प्रकार की वस्तुएँ होती हैं। इस बुनाई का चित्र १७१ है, जिसमें दो जालों को ऊपर करके अथवा तीन जालों को ऊपर करके वर्गाकार जाल, खुला जाल, हीरक-जाल इत्यादि दिखाये गये हैं। हीरक-जाल चित्र १७१ के निचले भाग में प्रदर्शित है।
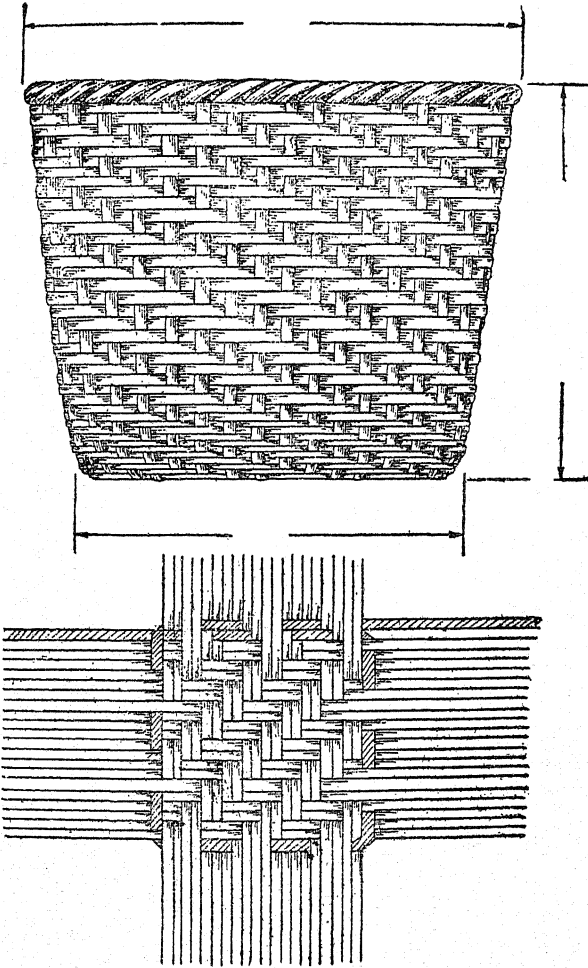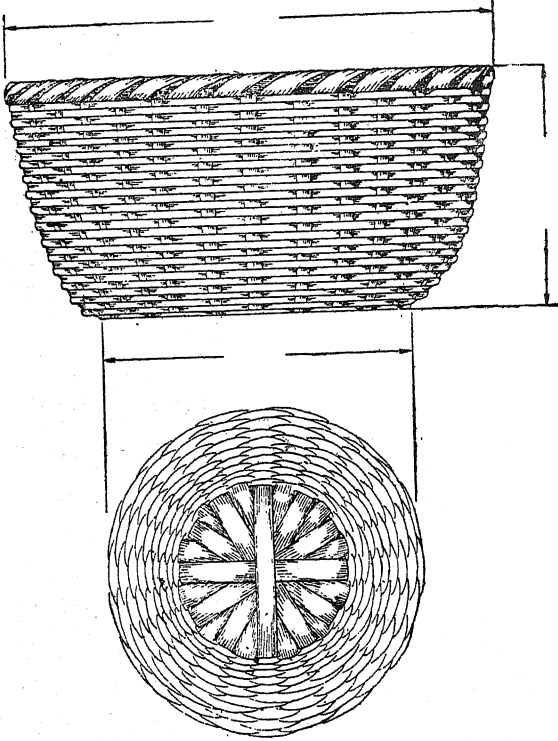
(चित्र १७२)

दो जालों को ऊपर करके होनेवाली बुनाई सामान्यतः बाँस से बननेवाली सभी वस्तुओं के काम में आती है। इस विधि को जाल-बुनाई के उदाहरण के रूप में बताया जायगा। इस बात की सतर्कता बरतनी चाहिए कि बाँस की कमचियाँ एक ही चौड़ाई तथा मुटाई की बनाई जायँ और तब वे सटाकर बुनी जायँ, जिससे रिक्त स्थान नहीं दिखाई पड़े, जैसा चित्र १७२ के ऊपरी भाग में दिखाया गया है। इस बुनाई के जाल, प्रत्येक ४ कमचियों पर, प्रथम जालों के स्थान पर चले जाते हैं।

ऊपर से नीचे खड़ी की गई फ्रेम की कमचियाँ सिलसिले से रखकर लकड़ी का एक बड़ा खण्ड एक किनारे रख देते हैं, जिससे बुनना आसान हो जाता है। कमचियाँ रखने की क्रिया चित्र १७० के ऊपरी भाग में है।

इसके बाद बुनाईवाली संख्या १ की कमची को लीजिए। इसे ० और २ नं० की कमची के नीचे लगाइए और ४ तथा ५ के नीचे और फिर ८ तथा ९ के नीचे लगाइए। यह क्रम चलाते रहिए। इसके बाद बुनाई की कमची से ० के ऊपर इसी क्रम से लगाते चलिए। फिर, सामान से ० और १ के ऊपर २ और ३ के नीचे, ४ और ५ के ऊपर लगाना चाहिए और यह क्रम जारी रखना चाहिए। बुनाई की कमची इसी तरह ० को ऊपर, १ और २ को नीचे, ३ तथा ४ को ऊपर क्रम से लगाते हैं। ० और १ को ऊपर, २ तथा ३ को नीचे रखना चाहिए, जैसा प्रथम बुनाई की कमचियों में किया गया है। चौड़ी बुनाई में कमचियाँ अपने प्रथम स्थान पर चली आती हैं। यह सारी प्रक्रिया चित्र १७२ के निचले हिस्से में ही प्रदर्शित है।

तीन जालों को ऊपर करके बुनाई की विधि यह है कि इससे प्रथम ५ बुनाई के बाद फिर वही बुनाई शुरू होती है।

बनावट के खयाल से जब कमचियों का श्रेणीकरण किया जाता है, तब यह वर्गाकार जाल-बुनाई की वस्तुओं के समान होता है। श्रेणीकरण निम्नलिखित प्रकार से होता है :—

(१) जाल-बुनाई पेंदावाली बुनाई में केवल पेंदा ही इस विधि से बुना जाता है।

(२) जाल-बुनाई द्वारा वर्गाकार पेंदे के फ्रेम की कमचियाँ ताप द्वारा मोड़ी जाती हैं। फिर, अन्य बुनाई की कमचियों से पार्श्व बुने जाते है।

(३) जाल-बुनाईवाली टोकरी बुनाई के अन्य कमचियों का विना व्यवहार किये पार्श्व-पेंदा बुनने की कमचियों से ही बनाया जाता है।

(चित्र १७३)
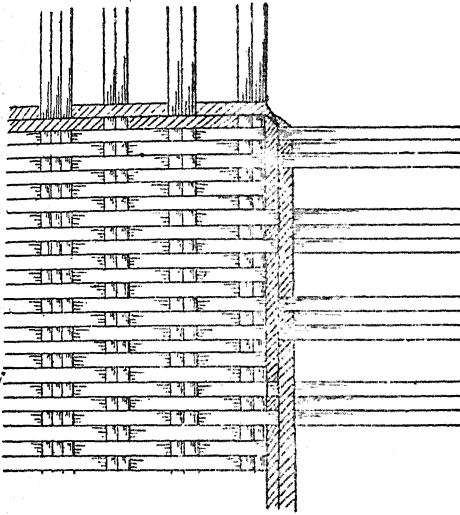
ऐसी टोकरियों के पार्श्व अधिकतर जालीनुमा पिंजड़ा-बुनाई द्वारा बुने जाते हैं। इसलिए इसके पार्श्व, वर्गाकार जालीनुमा पेंदा अथवा वर्गाकार पेंदा तथा फूल-पेंदेवाली टोकरियों के ही समान दिखाई पड़ते हैं। लेकिन, इन टोकरियों को बनाना जरा कठिन होता है; क्योंकि इनके पेंदे वर्गाकार और पार्श्व गोल बुने जाते हैं।

गोल बनाने के लिए कारीगर को पेंदे की बुनाई की कमचियों से मुलायम तथा कुछ अधिक चौड़ी और लम्बी कमचियाँ बनानी पड़ती हैं।

छोटी टोकरियों के लिए बुनाई का सामान एक ही चाहिए; लेकिन बड़ी के लिए ४ सूत मुटाई के बाँस से बनी दो कमचियाँ व्यवहृत होती हैं। तब उन कमचियों को 'पेंदा-बुनाई-सामग्री' कहते हैं। पेंदा बुनाई की सामग्री से बुनने की रीति यह है कि छोटी टोकरियों के लिए पेंदे को दो जालों के ऊपर बुनाई की कमचियाँ रखनी चाहिए।
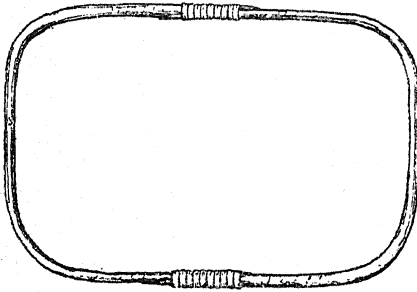
वर्गाकार पेंदे को गोल बनाने में निम्नलिखित तरीके से सावधानी बरती जानी चाहिए—
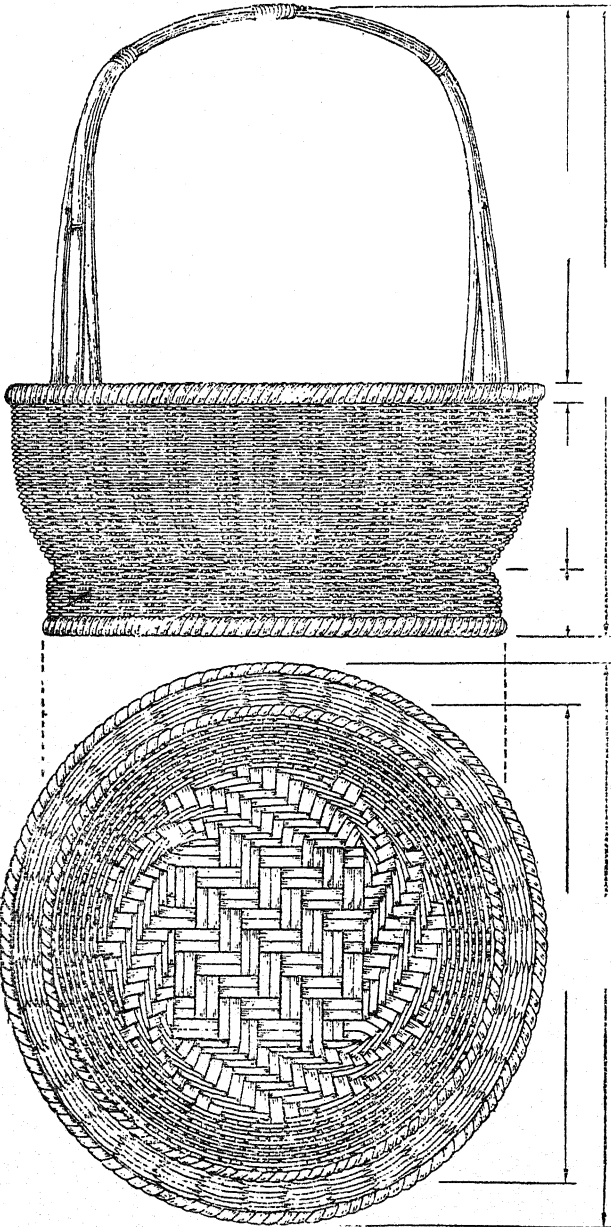
(चित्र १७४)

(१) कोनों पर पेंदा बुनने की सामग्री यथासंभव छोटी बना दी जाती है और वैसा करने के लिए सामग्री प्रत्येक कोने पर ऐंठी जाती है। प्रत्येक कोने पर एक ही दिशा में ऐंठना चाहिए, अन्यथा प्रत्येक वार की मुड़ाई में रिक्त स्थान बन जायेंगे। कोने पर ऐंठन की विधि चित्र १७३ के ऊपरी भाग में द्रष्टव्य है।

(२) तीन या चार घुमाव पूरा कर लेने पर कोने पर फ्रेम की कमचियों को खोल देते हैं। इससे पेंदे की बुनाई गोल होती है। अनुभवी कारीगर ७॥ घुमाव बुन लेने के बाद गोलाकार बुनते हैं। जब फ्रेम की कमचियाँ

पूर्णरूप से खोल दी जायँ, उस हालत में ऐंठना बन्द कर देते हैं और तब मुलायम कमचियों से बुनते है। ऐंठ करके बुनाई करीब १·१५ इंच : १०-१५ घुमाव होती है और उसके बाद १ से १ ५ इंच तक जालीनुमा पिंजड़ा बुनाई की जाती है।

ऐंठ कर बनाई गई (जाल-बुनाई को जाली-बुनाई (गोलाकार-क्रिया) में परिवर्त्तित करना—

ऐसी कुछ टोकरियाँ होती हैं, जो सिर्फ ऐंठकर जाल-बुनाई से बुनी जाती हैं। परन्तु, सामान्यतः बुनाई को जालीनुमा-पिंजड़ा-बुनाई में परिवर्त्तित कर ही टोकरी गोलाकार बनाई जाती है। जब बुनाई को जाल-बुनाई से जालीनुमा-पिंजड़ा-बुनाई में परिवर्त्तित कर दिया जाता है, तब कभी-कभी पेंदा टेढ़ा हो जाता है। इसलिए, चौरस बुनने की सावधानी बरती जानी चाहिए। कभी-कभी कोने को ठोककर भी पेंदे को ठीक किया जाता है।

गोलाकार बनाने में मोटे तथा लम्बे सामान से बुनाई की जाती है। ३ से ४ घुमाव बुनाई के बाद बायें हाथ से फ्रेम के सामान को मोड़ते हैं और मजबूती से बुनते हैं। इससे टोकरी गोलाकार हो जाती है। ६ या ७ घुमाव के बाद गोलाकार नहीं बनाया जाय, तो बुनाई बहुत ढीली हो जाती है।

मुट्ठेवाली कलात्मक चँगेरी

यह चँगेरी चित्र १७४ में प्रदर्शित है, जो उच्च कोटि की कलात्मक चँगेरी है। यह जाल-बुनाई के द्वारा बुनी गई है और इसमें आधारवाला तल्ला जोड़ा गया है। बनाने में यह चँगेरी अन्य टोकरियों से अधिक भिन्न नहीं होती है। इसके विशिष्ट भाग जो भिन्न होते हैं, वे निम्नलिखित हैं—

तल्ले को जोड़ना—(१) तल्ले के लिए फ्रेम की कमचियाँ गोलाकार ढंग में एक इंच भीतर लगाई जाती हैं। किनारे की पूर्त्ति के समय सामानों को दो भागों में विभक्त कर दिया जाता है। तल्ले के फ्रेमवाली कमचियाँ उसी बुनाई की कमचियों की जाली में लगाई जाती हैं।

(२) वर्गाकार कमचियों से तीन घुमाव बुनने के बाद गोलाकार बनाना आरम्भ किया जाता है।

(३) फ्रेम की कमचियों को बाहरी मोड़ से लगाते हैं।

(४) किनारेवाला बाँस लगाते समय तल्ले का किनारा एक घुमाव बनाते हुए पूरा करते हैं।

मुट्ठे का बाँस—फ्रेम की कमचियों में जहाँ मुट्ठा लगाया जाता है, वहाँ से किनारे के ऊपर तक के भाग निकले रहते हैं। दोनों किनारे पर तीन-तीन मोटी कमचियों को, जो मुट्ठे के बाँस कहलाते हैं, उन फ्रेम की कमचियों के साथ बाँध दिया जाता है। इसकी विशिष्टताओं में कमचियों की बनावट सर्वोपरि है। ये जितनी सुन्दर, स्वच्छ तथा बारीक होंगी, उतनी ही अच्छी चँगेरी तैयार होगी।

पुस्तक और पत्र रखने की पेटी

पुस्तक रखने की पेटी अन्य टोकरियों में सबसे उच्च कोटि की होती है। ढक्कन का एक भाग तीन जालों पर आर-पार करनेवाली बुनाई द्वारा बनाया जाता है और मुख्य भाग तो सम्पूर्ण रूप से इसी बुनाई द्वारा बनाया जाता है। इसके किनारे की मोड़ाई भी ताप द्वारा ही होती है, जिसे पहले कहा गया है। इसकी बुनाई भी वर्गाकार जालीदार बुनाई की होती है। किनारे को गोल करने के बाद इसकी बुनाई भी तीन जालों को आर-पार करके होती है। किनारे पर फ्रेम बनानेवाली कमचियों से जालवाली जगह पर, समानान्तर रूप में, बुनाई करके इसे समाप्त करते हैं।

इस पुस्तक में प्रदर्शित चित्र १७५ के ढक्कन की जो जाल-बुनाई होती है, वह चौड़ी और पतली दोनों तरह की कमचियों से तैयार होती है। इस तरह की कमचियों से बनाया गया ढक्कन इस चित्र के ऊपरी भाग में दिखाया गया है। कारीगर की दक्षता के अनुसार इसके अनेक रूप तैयार हो सकते हैं। इसके बड़े-बड़े बक्से भी तैयार किये जा सकते हैं।
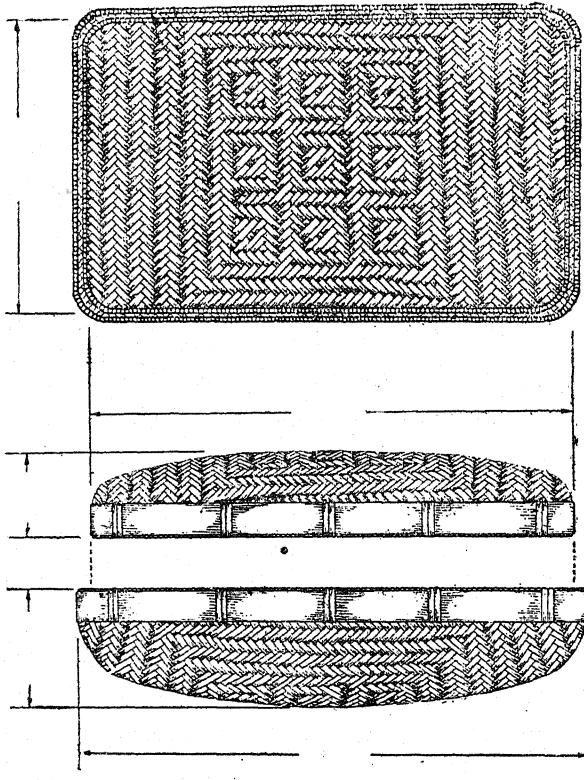
(चित्र १७५)

बनी हुई वस्तुओं को रँगने की विधि

वस्तुओं के निर्माण के बाद आकर्षक और सुन्दर बनाने के लिए रँगने की बात कही गई है। यहाँ रंग चढ़ाने की विधि दी जा रही है—

बिस्मार्क ब्राउन (Bismark Brown) G. Come.	३०० से ४०० ग्राम
मिथिल वॉयलेट (Methyl Violet)	५ ग्राम
रोडामिन रेड (Rodamin (Red)	५ ग्राम
पानी B	५४० से ६०० ग्राम

तापमान	८० से १०० सेंटी०
समय	१० से १५ मिनट

किन्तु, वस्तुओं की मुटाई के अनुसार समय में कमी-बेशी भी की जा सकती है। जो वस्तु पतली कमचियों से बनी है, उसके लिए उपरिलिखित समय ठीक है। मगर यदि कोई वस्तु मोटी कमचियों से बनाई गई है, तो उसके लिए ज्यादा समय की आवश्यकता होगी। समय की निश्चितता का ज्ञान अनुभव के आधार पर ही हो सकता है।

उपर्युक्त क्रिया में सर्वप्रथम रंगों का मिश्रण बनाकर गरम करते हैं। जब उसका ताप ८० सेंटीग्रेड से कम हो जाय, तब उसमें वस्तुओं को डाल देते हैं और १५ से २० मिनट उसमें रहने बाद निकाल लेते हैं। निकालने के बाद वस्तु को किसी उपयुक्त चीज से चारों ओर से दबाकर रख देते हैं। यदि दबाकर नहीं रखा जाय, तो उसकी आकृति में विकृति आ जाने की सम्भावना रहती है। यदि वह वस्तु अच्छी तरह ठंडी हो जाय, तो उसे वहाँ से हटाकर ठंडे पात्र या ठंडे स्थान में रख देना पड़ता है।

रंगों के मिश्रण करने तथा घोल बनाने की विधि

उपर्युक्त परिमाण में सर्वप्रथम रोडामिन और मिथिल रंगों में वॉयलेट को मिलाते हैं। बाद, बिस्मार्क रंग के रोडामिन और मिथिल रंगों में वॉयलेट ५ ग्राम मिलाकर किसी बड़े पात्र में गरम करते हैं, तब वस्तु को इसमें डालते हैं। (समय ऊपर दिया गया है।)

किन्तु, सबसे जो कम खर्चीली विधि है, वह यह है—

(१) चीना स्याही (China Ink) ३ भाग और पानी एक भाग लेकर—दोनों को अच्छी तरह मिला देते हैं। इसके बाद उसमें थोड़ा-सा बौंड पेस्ट (Bond Paste) मिलाकर एक चौड़े ब्रश के द्वारा लगा देते हैं।

(२) कहीं-कहीं बाजार में चीना स्याही का चूर्ण मिलता है, जिसका व्यवहार उत्तम होता है। इस विधि के अनुसार चीना स्याही के चूर्ण का एक भाग और श्वेत खली (Chalk) ३ भाग लेकर खरल में डालकर अच्छी तरह मिलावट करते हैं। बाद, वस्तु, जो रोडामिन रंग में रँगी गई है, के ऊपर उपर्युक्त स्याही लगा दी जाती है और तब, सूखने के लिए छोड़ देते हैं।

(३) बाजार में तरल चीना स्याही भी मिलती है, उससे चित्रकार ड्राइंग तथा नक्शे आदि बनाते हैं। इसको भी रोडामिन रंग से रँगी वस्तु पर लगाते हैं।

यदि वस्तु पर खूब गाढ़ा रंग चढ़ाना हो, तो उसके लिए निम्नलिखित तरीका अपनाते हैं—

बिस्मार्क (चूर्ण)	१४० ग्राम
मालकाइट ग्रीन	४ ,,
क्रीस्टल	४ ,,
पानी	५१४ ,,
ताप	१०० सेंटीग्रेड
समय	३० मिनट

इस तरह मिश्रण को गरम करके कुछ देर ठंडा होने के लिए छोड़ दिया जाता है। बाद में झरनेवाले पानी के नीचे धोकर सुखा लेते हैं। जिस घर के अन्दर जरा भी प्रकाश नहीं जा सके, उस घर के अन्दर एक सूखे कपड़े में रखकर इसे रगड़ा जाता है। यह क्रम तबतक चलता है, जबतक उसमें कुछ चमक न आ जावे।

साफ करना (Bleaching)

सूर्य की किरणों से भी बाँस साफ किया जाता है, जिसकी विधि निम्नलिखित है—

बाँस को एक साँचे (फ्रेम) के अन्दर रख दिया जाता है। ऊपर से एक बड़ा शीशा रखकर सूर्य के सम्मुख करके रख दिया जाता है। शीशे के अन्दर होने के कारण बाँस के ऊपर सीधी सूर्य की किरणें नहीं पड़ती हैं। इसके अनुसार बाँस के फटने की सम्भावना नहीं रहती है और बाँस साफ हो जाता है।

पञ्चम भाग

अन्य उपयोगी वस्तुओं का निर्माण

बाँस का कोई भी हिस्सा फेंकना या जलाना बहुत बड़ा अपराध समझा जाना चाहिए। क्योंकि, इसके पत्ते, जड़, कोंपल, टहनियाँ—सभी काम में लाये जाते हैं और इनसे उत्तम-से-उत्तम कलात्मक हस्तशिल्प की सामग्री तैयार की जा सकती है। इन उत्तम वस्तुओं से जहाँ एक ओर लोगों की रोजी-रोटी की समस्या भी हल होगी और देश का आर्थिक विकास होगा, वहीं हमारा हस्तशिल्प-उद्योग का भविष्य भी उज्ज्वल बनेगा।

पत्तों का उपयोग

(१) इसके पत्ते मछली या मांस ढकने के काम में आते हैं।
(२) इनसे चटाई भी बुनी जाती है।
(३) बाँस के पत्तों से चप्पल बनाये जाते हैं।
(४) इनसे हैंडबैग आदि भी बनाये जा सकते हैं।
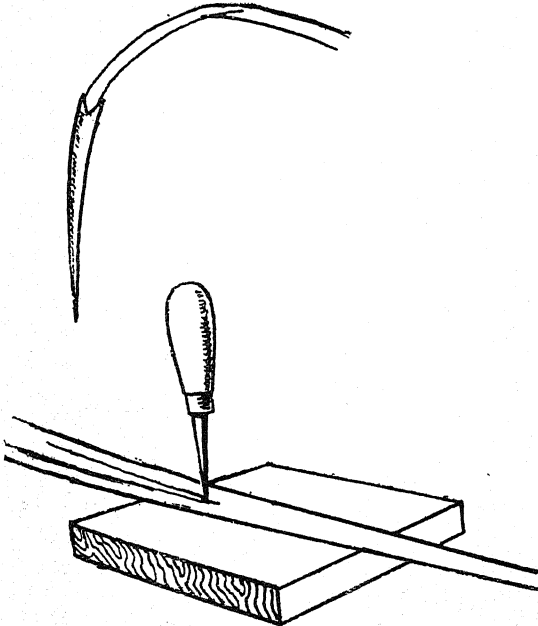
कोंपल का उपयोग

बाँस की कोंपल, (जिसे कहीं-कहीं सुपली भी कहते हैं), से अनेक प्रकार की सुन्दर चीजें तैयार की जाती हैं। इससे वस्तुओं के निर्माण करने में मूँज (मूँज घास) की सहायता ली जाती है। मूँज का पतेल छप्पर छाने के काम में आता है। इसी मूँज से रस्सी भी तैयार की जाती है। इन दोनों से बननेवाली वस्तुओं के निर्माण में
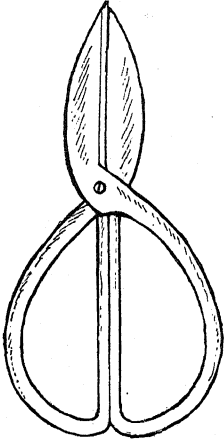
(चित्र १७६)
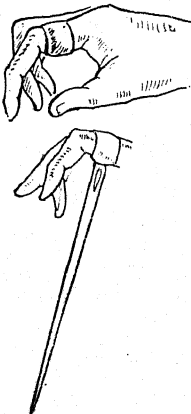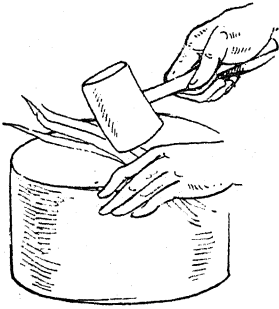
(चित्र १७७)

केवल और दो-तीन चीजों की आवश्यकता होती है। एक तो सूआ (बड़ी सूई) और दूसरी लकड़ी की मुँगरी और तीसरी एक कैंची। सूए का व्यवहार चित्र १७६ में तथा कैंची का आकार चित्र १७७ में देखना चाहिए। पतेल को नीचे बिछाकर और उसके ऊपर कोंपल रखकर वस्तु की बुनाई की जाती है। विधि नीचे दी जा रही है—

(१) पहले मूँज के निचले हिस्से को मुँगरी से अच्छी तरह पीटकर उसे खूब मुलायम कर दिया जाता है। देखिए चित्र १७८ का ऊपरी भाग। इसके बाद भी उसमें यदि कड़ा अंश रह जाय, तो उसे काटकर हटा देना पड़ता है।

(२) व्यवहार में लाने के पहले कोंपल को पानी में इस तरह भिगो देना चाहिए कि जिससे वह पानी से बिलकुल तर हो जाय। बाद में अच्छी तरह उससे पानी झाड़ देना चाहिए।

(३) पश्चात्, कोंपल से पानी निचोड़कर उसे गीले कपड़े में लपेटकर रख देना चाहिए, जिससे हवा लगने के कारण कोंपल सूखने न पावे।

(४) बुनाई आरम्भ करने के पहले केवल कोंपल का ही दो-तीन घेरा देना पड़ता है और तब मूँज को लगाते हैं।

कोंपल (सुपली) का व्यवहार दो तरीकों से किया जाता है। एक तो वह कि जैसी कोंपल है, उसका उसी अवस्था में व्यवहार किया जाता है। दूसरी विधि के अनुसार इसे पहले रसायन-द्रव्यों से साफ करके तब व्यवहार में लाते हैं।

(चित्र १७८)

रसायन के प्रयोग के पहले कोंपल (सुपली) को एक बड़े पानीवाले पात्र में डुबो लेते हैं। हाइड्रोजन पैरोक्साइड (Hydrogen Paroxide) H २·२ में ३५°/₀ और दूसरी Na २, Si ०३ ५०°/₀-५°/₀ सोडियम सिलीकेट (Sodium Silicate) को १००°/₀ पानी में मिलाकर अच्छी तरह घोल बनाकर रखते हैं। बाद, पानीवाले पात्र से कोंपलों को निकालकर और
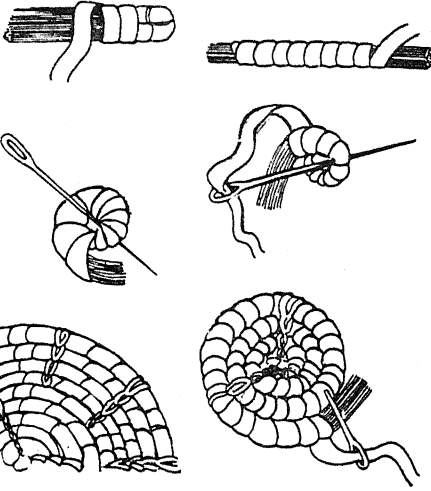
(चित्र १७९)
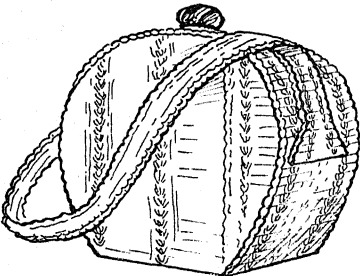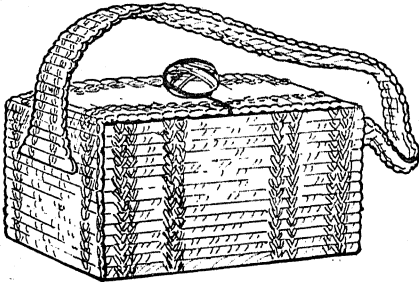
(चित्र १८०)

पानी झाड़कर घोल में खड़ा करके दो दिनों तक छोड़ देते हैं। घोल में कोंपलें तब रखी जायँ, जब घोल में फँफूदी दिखाई पड़ने लगे।

दो दिनों के बाद जब कोंपलें (सुपली) निकाली जायँ, तब उन्हें ठंडे पानी में—झरने या धारा का पानी हो तो और अच्छा—धोकर दो-तीन दिनों तक धूप में रख देना होता है। इसके धूप में सुखाने की विधि यह है कि कोंपलों को लकड़ी के तख्ते पर रखकर पिन लगा देते हैं। इस विधि से कोंपलें अच्छी तरह सीधी हो जाती हैं। पर, ऐसी कोपलों की बनी वस्तुओं से प्रकृतिगत कोंपलों की बनी वस्तुएँ अधिक टिकाऊ होती हैं। क्योंकि, साफ की गई कोंपलें रासायनिक द्रव्यों के व्यवहार के कारण कुछ कमजोर हो जाती हैं; किन्तु साफ की गई कोपलों की बनी वस्तुएँ देखने में बहुत ही सुन्दर लगती हैं। ऐसी कोंपलों से बनी वस्तुओं के तैयार करने के तरीके चित्र १७९ में और तैयार वस्तुओं के नमूने चित्र १८० में दिखाये गये हैं।

बाँस का गिलास

गिलास बनाने के लिए बाँस को अक्टूबर महीने तक काट लेना चाहिए। बाद,

गिलास की माप से थोड़ा बड़ा रखकर बाँस को अलग-अलग टुकड़े में काट लेना होता है। इसके बाद ऊपर की हरी त्वचा को हटाकर टुकड़ों को किसी बड़े पात्र में रखकर और पानी देकर ३० मिनट तक उबालते हैं। पानी में थोड़ा कास्टिक सोडा डाल देते हैं। बाद, उबले हुए बाँस के टुकड़े को एक सप्ताह तक धूप में सूखने के लिए छोड़ देना पड़ता है। टुकड़ों के अच्छी तरह सूख जाने पर उन्हें खराद पर चढ़ाकर खरादते हैं। तत्पश्चात्, सैंड पेपर से उन्हें खूब चिकना कर लेना होता है और तब उसपर इच्छित पॉलिश कर देते हैं। यदि गिलास पर किसी तरह की चित्रकारी करनी हो तो, कारीगर को चाहिए कि वे ब्रश के सहारे चाइनीज स्याही से चित्र की आकृति बना दें और ऊपर से चपड़े की परत चढ़ा दें। ऐसा करने पर चित्र का रंग कभी नहीं उड़ सकता। इसके ऊपर यदि 'पोकर' कार्य भी किया जाय, तो अत्युत्तम होता है।

कागज काटने या फाड़नेवाली बाँस की छुरी

इस कार्य के लिए आवश्यकतानुसार बाँस को टुकड़े-टुकड़े में विभाजित कर लेते हैं। तत्पश्चात्, कागज पर पेंसिल से छुरी की आकृति बना लेते हैं। आकृति जिस कागज पर बनाई जाती है, उसे बाँस के विभाजित टुकड़े पर साट देते हैं। बाद में पतली धार-वाली आरी से छुरी की आकृति में उसे काट देते हैं और बाहरी भाग को काटकर निकाल देते हैं। छुरी पर बाह्य रेखा देने के लिए उस औजार से काम लिया जाता है, जिससे एक प्रकार की खुदाई आदि का काम होता है। यह औजार एक 'नहरनी' है। बाद, उस बाँसवाली छुरी की धार भी बना देते हैं और धार बनाने के लिए बारीक 'रेती' नामक औजार का व्यवहार करते हैं। धार बना लेने पर 'सैंड पेपर' से उसे खूब चिकना और साफ कर देते हैं। जहाँ छुरी पर नहरनी से काम किया जाय, वहाँ लाह का रंग या और कोई दूसरा रंग चढ़ा देते हैं। सबसे अन्त में मधु-मक्खीवाली मोम से पॉलिश करके खली का पाउडर घिस देते हैं। इस तरह कागज काटने या फाड़ने के लिए सुन्दर और उत्तम छुरी तैयार कर ली जाती है। ऐसी छुरियाँ चित्र १८१ में प्रदर्शित हैं।
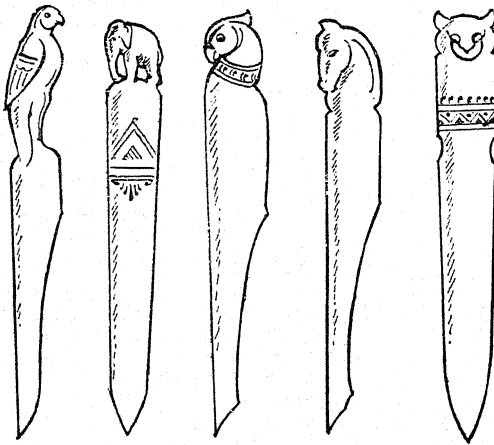
(चित्र १८१)

बाँस की डालियों से वस्तुओं का निर्माण

बाँस की मोटी डाल को काटकर, माला की कण्ठी की तरह, उसे छोटे-छोटे टुकड़े में विभक्त कर लेते हैं। इन कण्ठियों को विभिन्न प्रकार की बुनियादी रंगों में रँगकर गूँथ लेते है। भोजन जिस टेबुल पर किया जाता है, उसपर रखने के लिए इससे दस्तर-खान (चटाई), हाथ का बैग आदि बनाते हैं। इनसे अच्छे और सुन्दर खिलौने भी बनाये जाते हैं। किन्तु, कण्ठियों को काटने के लिए बिजली की मशीन से चलनेवाली गोल आरी का व्यवहार करते है, तभी यह लाभदायक होता है, अन्यथा हाथ की आरी से काटने में श्रम अधिक लगता है और सामान कम तैयार होता है।

कमचियों की जोड़ से छड़ी

कई मोटी कमचियों को एक साथ सटाकर (प्लाइ ऊड की तरह) छड़ी बनाने की प्रथा हमारे देश में प्रायः नहीं है। इस ढंग से बनी छड़ी खासी मजबूत और सुन्दर होती है। ऐसी छड़ी को गोल आकृति देने में कठिनाई भी है; किन्तु अच्छे कारीगर इसे भी कर लेते हैं। इस तरह की छड़ियों के बनाने की विधि नीचे दी जाती है—
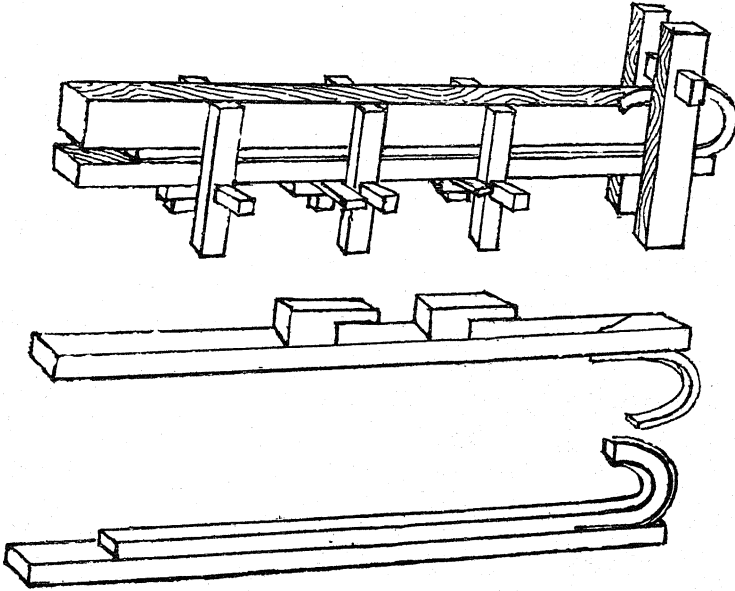
(चित्र १८२)

(१) पहले बाँस की गाँठों को रन्दे से साफ कर चिकना और बराबर कर लेते हैं, तब कमचियों को चीरते हैं। इसकी कमचियाँ दो तरह की होती हैं—एक छिलकेवाली कमची, दूसरी बाँस के भीतरी भाग की कमची।

(२) कमचियाँ बन जाने पर सभी को, मुटाई और चौड़ाई आदि में, बराबर रूप में काटकर ठीक कर लेना पड़ता है।

(३) पहले भीतरी भाग की कमचियों को बीच में रखकर दोनों ओर से छिलकेवाली कमचियों को रखते हैं। इसके बाद दोनों पार्श्वों को साँचे के अन्दर रखकर दबा देते हैं। इसके बाद भी, दोनों पार्श्वों में रन्दा करते हैं। ध्यान रहे कि सभी कमचियों की मुटाई और चौड़ाई बराबर रहे, नहीं तो दबाते समय गाँठों के पास यदि स्थान रिक्त रह गये होंगे, तो वहाँ का हिस्सा सटेगा नहीं। कमचियों को दबानेवाला साँचा चित्र १८२ में दिखाया गया है।

(४) बाद में रेती से घिसकर इसे बराबर कर लेते हैं।

(५) ठीक तरह से सजाई गई इन कमचियों को मुलायम होने के लिए पानी में रख देते हैं। कुछ देर बाद साँचे में रखकर छड़ी की मूठ को टेढ़ा करते हैं। मूठ की तरफ, कमचियों में ही, पहले से एक लोहे का पत्तर लगा देते हैं, जिसे मूठ के साथ ही मोड़ते हैं।

(६) बाद, इस टेढ़ी की गई मूठवाले भाग को कसकर बाँध देते हैं और उसी अवस्था में काफी देर के लिए छोड़ देते हैं।

(७) प्रेसर में रखकर पत्तर को ठीक से जोड़ने के लिए और स्थिर रखने के लिए ऊपर से एक लकड़ी की कील को धीरे-धीरे ठोक देते हैं। इसके अतिरिक्त छड़ी को कड़ी करने के लिए कई जगह ऐसी कीलें ठोकते हैं, जो चित्र में प्रदर्शित हैं।

(८) इसके बाद बिजली या रेडियो हीटर से छड़ी को सुखाना जरूरी होता है। इस पद्धति से छड़ी के भीतर का पानीवाला अंश पूरी तरह सूख जाता है। ऐसा नहीं करने से लेई से साटते समय कमचियाँ परस्पर ठीक से सट नहीं सकेंगी। सुखाने के लिए समय ५ मिनट और ताप ७० संटीग्रेड व्यवहार में लाया जाता है।

(९) पश्चात्, साँचे में सजी कमचियों को उससे निकाल लेते हैं और छोटे रन्दे से सभी कमचियों को रंद कर बराबर कर लेते हैं।

(१०) इसके बाद कमचियों को साटनेवाली विधि की जाती है। इसके लिए सभी कमचियों को अलग-अलग करके सभी में निम्नलिखित प्रकार से बनाई गई लेई लगा देते हैं। लेई बनाने की विधि नीचे दी जाती है—

उरिया रेजिन पेस्ट के साथ आमोनियम क्लोराइड (Amoniam Chloride) को पानी में घोल देते हैं। इनका परिमाण निम्नलिखित है—

उरिया रेजिन	१००%
आनमोनियम क्लोराइड	१०%
पानी	१०%

(११) इस लेई को कमचियों में लगाकर फिर रेडियो हीटर में रखकर सुखाते हैं। इसके लिए समय १० मिनट और ताप ७० से ८० संटीग्रेड होता है।
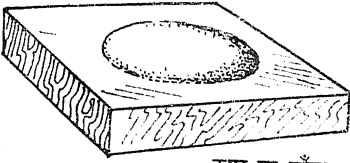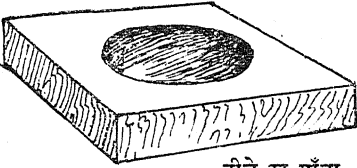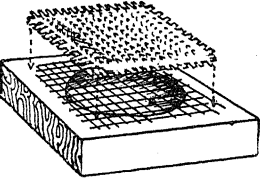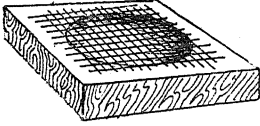
(चित्र १८३)
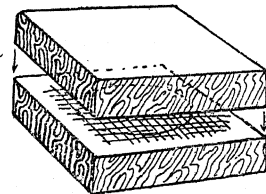
(चित्र १८४)

(चित्र १८५)

(चित्र १८६)

(१२) इसके स्थान पर फेनल ग्लू (Phenal glue) भी कमचियों को साटने के काम में आता है।

(१३) रेडियो हीटर से कमचियों को निकाल लेने के बाद कुछ देर ठंडा होने के लिए छोड़ देते हैं।

(१४) इसके बाद फिर इस पर रंदा मारते हैं और सैंड पेपर से साफ कर देते हैं।

(१५) इन कामों के बाद उसपर चपड़े की हल्की परत चढ़ा देते हैं और तव छड़ी तैयार हो जाती है।

बाँस की चटाइयों को साटकर प्लाइ ऊड की तरह बनाना

इस काम के लिए भी, पूर्वोक्त विधि के अनुसार ही, कमचियों को तैयार करते हैं और इनसे बनी चटाइयों को पूर्वोक्त रीति से ही, साटकर प्लाइ ऊड के तख्ते की तरह बना लेते हैं। विधि नीचे दी जा रही है—

(१) ऐसे कामों के लिए तीन प्रकार की चटाइयाँ बनाई जाती हैं।

(२) ऐसी चटाइयों के बनाने के लिए पहले एक लकड़ी का साँचा बना लेना होता है। वस्तु की जिस तरह आकृति चाहते हैं, उसी तरह का ढक्कनदार साँचा बनाया जाता है। साँचे के निचले और ऊपरी हिस्से को चित्र १८३ और चित्र १८४ में दिखाया गया है।

(३) इस साँचे के अन्दर लोहे के तारों की एक जाली बनाकर लगा देते हैं, जिससे ऊपर में रखी चटाई साँचे में दबाते समय उरियापेस्ट के कारण सटने नहीं पाती है। तारों की बनी जाली को साँचे में
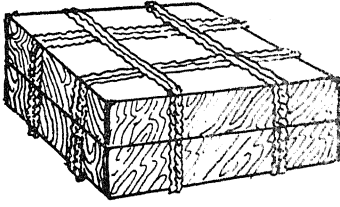
(चित्र १८७)
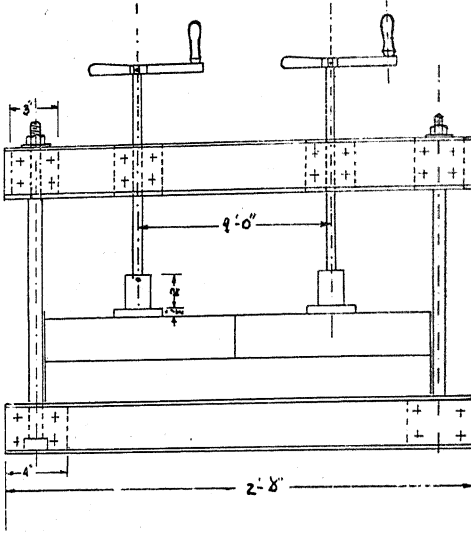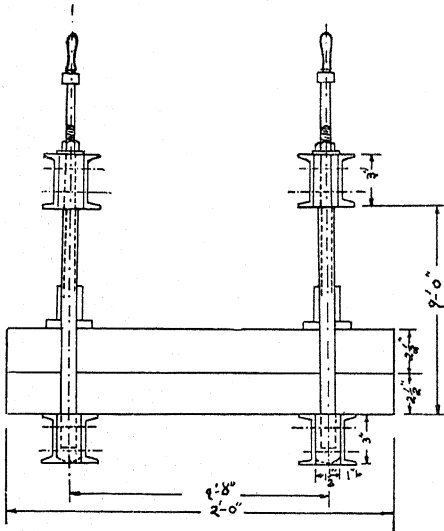
(चित्र १८८)

(चित्र १८९)

रखने का दृश्य चित्र १८५ में दिखाया गया है।

(४) साँचे में जाली लगाने के बाद तीनों चटाइयों में उरिया-पेस्ट का लेप कर देते हैं। उक्त साँचे में ढक्कन बैठाकर उसे प्रेसर से कस देते हैं। ढक्कन बैठाने का ढंग चित्र १८६ और चित्र १८७ में दिखाया गया है।

(५) इसके बाद रेडियो हीटर के द्वारा २० मिनट तक इसे सुखाते हैं और बाद में ठंडा होने के लिए बाहर थोड़ी देर छोड़ देते हैं।

(६) ठंडा हो जाने पर वस्तु को गोल या वर्गाकार अथवा षट्कोण रूप देने के लिए पेंसिल से मनोनुकूल चिह्न कर देते हैं और उसी के अनुसार फिर औजार से काट देते हैं।

(७) बाद में सैंड पेपर से साफ करते हैं और वस्तु पर चपड़े की परत लगा देते हैं।

(८) अगर वस्तु पर रंग देना चाहते हैं, तो चाइनीज या जापानी लाह का रंग दे सकते हैं।

(९) इसी विधि के अनुसार सिगरेट, जेवर आदि के रखने के लिए भी छोटे बक्स तैयार कर सकते हैं।

साधारण तरीके से भी चटाइयों को प्लाइ ऊड की तरह तख्तेदार बनाया जा सकता है। इसके लिए निम्नलिखित विधि अपनाई जा सकती है—

(१) एक के ऊपर दूसरी और दूसरी के ऊपर तीसरी चटाई रख दें।

(२) इसे साँचे में रखने और ढक्कन से ढँकने के पहले—इन दोनों में पाराफीन (Paraphin) लगा देते हैं।

(३) बाद, साँचे को थोड़ा गरम करते हैं और उसे कपड़े से अच्छी तरह पोंछ देते हैं।

(४) साँचे के आकार के कार्ड-बोर्ड भी काट लिये जाते हैं, जो साँचे और चटाई के बीच में रखे जाते हैं।

(५) इसी के आकार के अनुसार चटाई को भी काट लेना अच्छा होता है।

(६) कार्ड-बोर्ड को नरम करने के लिए उसे दोनों तरफ पानी से अच्छी तरह पोंछ देना श्रेयस्कर होता है।

(७) इसके बाद कार्ड-बोर्ड में ब्रश से एक प्रकार की बनाई गई गोंद लगा देते हैं।

(८) पश्चात्, चटाई पर भी बोंड का लेप कर देना होता है।

(९) निचले साँचे में क्रमबद्ध करके पहले कार्ड-बोर्ड रखते हैं और उसके ऊपर चटाई, फिर ऊपर से कार्ड-बोर्ड रखते हैं और उसके ऊपर से ढक्कनवाला साँचा रखकर प्रेसर से कस देते हैं। प्रेसर के दो चित्र यहाँ प्रदर्शित हैं, जिनको चित्र १८८ और चित्र १८९ में दिखाया गया है। थोड़ी देर, प्रेसर में सामान को कसे ही सूखने के लिए छोड़ देते हैं। बाद, प्रेसर को ढीलाकर एक विशेष प्रकार का बोंड लगाकर गरम पानी के सहारे सामान को निकाल लेते हैं।

(१०) तत्पश्चात्, सैंड पेपर से साफ कर चपड़े की परत चढ़ा देते हैं और तब सामान तैयार हो जाता है।

बाँस का चिलमननुमा परदा आदि

हमारे देश में बाँस के हर प्रकार का काम हाथ से ही करते हैं; पर इस कार्य को मशीन से किया जाय, तो उसकी बनाई-सफाई अच्छी होगी और अधिक मात्रा में कार्य का सम्पादन भी होगा। इस काम के लिए मशीन का उपयोग ही लाभदायक होगा। जापान में गृह-उद्योग जो चरम उन्नति पर है, उसमें एक यह तथ्य निहित है कि वे लोग गृह-उद्योग के कार्य भी मशीन की सहायता से करते हैं। जाली के कार्य के लिए निम्नलिखित प्रकार की मशीन से और निम्नलिखित विधि से काम लिया जा सकता है—

मशीन के द्वारा सभी क्रियाओं के करने के पहले बाँस को एक निश्चित आकार में काट लेते हैं। इस काम के लिए 'चाभ' जाति का बाँस अधिक उपयोगी होता है।

(१) एक ऐसी मशीन होती है, जिसके द्वारा गाँठों को साफ करके बराबर कर लेते हैं। गाँठ को बराबर करने का काम रंदा के द्वारा ही होता है, पर यह रंदा बिजली के द्वारा ही चलता है। यह पकड़नेवाले एक यंत्र की सहायता से अपना काम करता है। इसके द्वारा बड़ी शीघ्रता से बाँस की गाँठें साफ और बराबर हो जाती हैं।

(चित्र १९०)
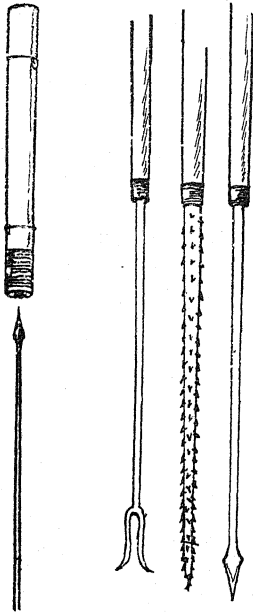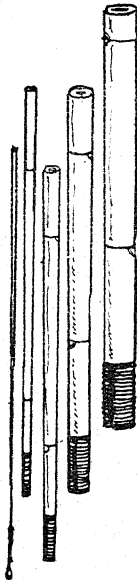
(चित्र १९१)

(२) बाद, एक दूसरी मशीन होती है, जिसमें बाँस को डाल दिया जाता है और वह उसपर का छिलका तुरत हटा देती है।

(३) फिर, तीसरी मशीन बाँस के भीतरवाली गाँठों को निकालकर उसे पूर्ण खोखला कर देती है।

(४) एक और मशीन ऐसी होती है, जो कई मुटाई के बाँसों को कई भागों में विभक्त कर देती है। प्रत्येक बाँस को विभक्त करने के पहले उसमें अलग-अलग दाग देकर और प्रत्येक को बाँधकर मशीन में रखते हैं। बाँस की मुटाई के अनुसार विभाजन किया जाता है, ताकि विभक्त बाँसों की मुटाई-चौड़ाई समान रूप में हो। विभाजन-विधि के लिए चार प्रकार की मशीनें काम में लाई जाती हैं—

(क) विभक्त करने के लिए।
(ख) चिकना करने के लिए।
(ग) चिह्न देने के लिए।
(घ) त्वचा हटा देने के लिए।

(इसके साथ ही साफ करने के काम के लिए अलग से भी व्यवस्था रहती है।)

विभाजन के बाद, कीड़ों से सुरक्षा के लिए रसायनों का व्यवहार करके बाँस को, धूप में दस घण्टे तक सूखने के लिए छोड़ देते हैं। निम्नलिखित रसायन और उनका परिमाण व्यवहार में आता है—

रसायन—(क) अलक्लोरिन सॉल्युसन
(Alchlorine Solution)
(ख) कास्टिक सोडा
(ग) पी० सी० पी०

(इन्हें बाँस से तेल निकालने और कीड़ों से बचाने के लिए लगाया जाता है।)

परिमाण—१८० Lire को बड़े पीपे में ६०० ग्राम पी० सी० पी० देकर और रसायन से निकालकर बाद में १० घण्टे तक धूप में रखते हैं। इसके बाद सामानों को व्यवहार में लाया जाता है।

(५) इसके बाद कुछ कमचियों को रंगीन बनाकर और मशीन की सहायता से चिलमननुमा वस्तुओं का निर्माण करते हैं।

हमारे यहाँ ऐसी वस्तुओं के निर्माण का व्यवसाय करने का ढंग बिलकुल नहीं के बराबर है। एक सेट मशीन के द्वारा सैकड़ों बेरोजगारों को रोजी मिल सकती है और गृह-शिल्प-उद्योग भी पूर्ण उन्नत हो सकता है। अच्छा यह होगा कि साफ करने, चीरने, फाड़ने आदि कार्यों के लिए यदि मशीन का व्यवहार हो, तो बुनाई का काम बहुत बड़े पैमाने पर बढ़ जाय।

मछली पकड़ने की बंसी

हमारे देश में बंसी को बाँसों की डालियों से या विभिन्न जाति के पतले बाँसों से बनाते हैं। बंसी का व्यवहार तथा निर्माण का कार्य भारत के सभी प्रान्तों में है। केवल शहर में ही आकर्षक ढंग की बंसी काम में लाई जाती है। इस व्यापार का क्षेत्र हमारे यहाँ बहुत विस्तृत है। यहाँ एक ही बाँस या एक ही डाल से छोटी-बड़ी सभी तरह की बंसियाँ बनती हैं। पर, यदि बाँसों को कई टुकड़ों में करके और एक के अन्दर दूसरा टुकड़ा घुसाकर बंसियाँ बनाई जायँ, तो वह बड़ी ही उपयोगी होती हैं। कई टुकड़ों में बनाई गईं बंसी चित्र १६१ में दिखाई गई है। इन्हें बाहर ले आने और ले जाने में सुविधा होती है।

जापान में इस तरह की खण्डित बंसी अत्यन्त आकर्षक ढंग की बनाई जाती है, जिसको देखकर मनुष्य का मन प्रसन्न हो जाता है। उसकी मनोहरता के चलते मछली नहीं पकड़नेवाला व्यक्ति भी घर में, केवल शोभा के लिए, एक बंसी खरीदकर रखना चाहेगा। इस तरह की बंसी बनाने की विधि नीचे दी जाती है—

(१) पूर्वनिर्देशानुसार पहले बाँस को सीधा कर लेते हैं और तब उसे अच्छी तरह राख या धान के भूसे से साफ कर लेते हैं।

(२) विभिन्न मुटाई के बाँस को बराबर लम्बाई में काट लेते हैं।

(३) बाँस के टुकड़ों की भीतरी गाँठों को विशेष प्रकार के औजारों से निकाल देते हैं। औजारों की रूपरेखा चित्र १६० में प्रदर्शित है। यह औजार तीन तरह के होते हैं। चित्र के दाहिने किनारे में तीनों के रूप दिये गये हैं।

(४) दोनों किनारों को और ऊपरी गाँठों को रेती से साफ कर देते हैं। पतली और लम्बी रेती से भीतरी भाग को भी ऐसा घिसकर साफ करते हैं, जिससे एक के अन्दर दूसरा बाँस घुस सके।

(५) टुकड़े-टुकड़ेवाले बाँसों के दोनों छोरों को बटे और मजबूत सूत से घना करके घेरे के साथ सटा-सटाकर चौड़ाई में बाँध देते हैं। सूत का घेरा देते समय उस पर लाह का लेप लगा देते हैं, जिससे वह पूर्ण स्थायी तथा मजबूत हो जाता है। बाद, घेरा दे देने पर लाह का एक दुहरी लेप भी लगा देते हैं। कोई-कोई लाह के लेप की जगह धातु-चूर्ण का लेप लगाते हैं, जिससे बंसी और भी मजबूत हो जाती है।

(६) इसके बाद लकड़ी की राख मलकर धूप में सुखा देते हैं। इस क्रिया के कारण बंसी में कभी कीड़े नहीं लगते हैं। इस विधि से बनाई गई बंसी काफी मजबूत, सुन्दर और सुविधाजनक होती है। इसकी लम्बाई इच्छानुसार बनाई जा सकती है।

(७) बंसी बनाने के लिए अधिकतर 'चाभ' या 'मकोर' बाँस का व्यवहार किया जाता है।

(८) ऐसी बंसी के सुरक्षापूर्वक रखने के लिए एक बक्से की भी आवश्यकता होती है; पर उसका मूल्य अधिक हो जाता है।

विभिन्न प्रकार के बाँसों के बैग

इस काम के लिए पहले बाँस से तेल निकालते हैं। तेल निकालने की विधि बताई जा चुकी है। बाद, जब बाँस फाड़े जायँ, तब आवश्यकतानुसार चौड़ाई में ही। फाड़ने आदि कार्यों के लिए विशेष प्रकार की मशीनों का सहारा लेना उत्तम होता है, जिससे उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जा सकता है। इन कामों के लिए निम्नांकित मशीनें व्यवहार में आती हैं—

(१) मोटी कमचियाँ बनाने की मशीन।

(२) आरी-मशीन, जो काटने के काम में आती है।

(३) छेद करने की मशीन।

(४) बराबर करने के लिए और गोलाकार करने की मशीन, यानी रन्दा मशीन।

चटाई से बनी वस्तुओं में लाह का प्रयोग

इस तरह की वस्तुएँ पहले हमारे देश में बनती थीं; पर अब लुप्तप्राय हैं। लाह के प्रयोग से वस्तुओं का सौन्दर्य बढ़ता है और उनमें पूरी मजबूती आ जाती है। भारत में कहीं-कहीं अब भी ऐसी चीजें कारीगर बनाते हैं, जिनका दर्शन यदा-कदा हमें मेलों में हो जाया करता है। उपर्युक्त विधि से बनाई चीजों (जो बहुत कम मूल्य की होती हैं) के ऊपर यदि लाह का लेप देकर उसे आकर्षक और मजबूत बनाया जाय, तो उनका मूल्य कई गुना बढ़ जायगा तथा लोग खुशी-खुशी खरीदेंगे भी। ऐसी वस्तुओं का निर्माण जापान, चीन, वर्मा आदि देशों में खूब होता है। यदि उक्त प्रणाली से अपने देश में चटाई बुनने का काम लिया जाय, तो रोजी की बहुत बड़ी समस्या हल हो जाय।

ऐसी चटाई की बुनाई में न तो विशेष सामानों की आवश्यकता है या न ज्यादा औजारों की। इसके लिए केवल दो-चार औजारों की ही जरूरत पड़ती है। अगर चटाई देकर बक्सा बनाना चाहते हैं, तो पहले बक्से के आकार का लकड़ी का ढाँचा तैयार कर लीजिए। बाद में बुनी चटाई को, सरेस या युरिया रेजिन से, बक्से के भीतर चारों ओर तथा तल में साट दीजिए। उसके बाद लाह का लेप लगा दीजिए। इससे बहुत बड़ा लाभ यह होता है कि कभी उस बक्से में कीड़े नहीं लगेंगे और बक्सा इतना मजबूत

होगा कि जो कई सौ सालों तक टिकेगा। बाँस के बने छोटे पात्र या टोकरी में भी इस प्रकार से चटाई साटकर सामानों को सुरक्षित रखने का बक्सा बनाया जा सकता है।

इन वस्तुओं के बनाने की विधि जापान तथा चीन में प्रायः एक ही प्रकार की है; पर बर्मा में भिन्न है। लाह का कार्य भारत में अति प्राचीन काल से होता था, यानी मौर्ययुग से भी पहले। इसका एक उदाहरण तो महाभारत में भी है, जिसके अनुसार पाण्डवों का नाश करने के लिए दुर्योधन ने जतुगृह (लाह का घर) का निर्माण कराया था। पर दुर्भाग्यवश आज लाह की महत्ता हम उतना नहीं समझ रहे हैं।

जापानी प्रणाली—वस्तु के ऊपर पहले पतला-सा लाह का अथवा काजू का पेंट चढ़ाते हैं। इसके बाद सूखने के लिए छोड़ देते हैं। तत्पश्चात्, उसपर पीली मिट्टी में लाह मिलाकर और उसे फेंटकर चिकना बनाया जाता है। इसे वस्तु पर लगा देते हैं। ऐसा करके वस्तु को थोड़ी देर धूप में रख देते हैं, जिससे वह सूख जाय। बाद में पुनः उपयुक्त चीजों का पोत चढ़ाया जाता है और इस बार काफी देर तक वस्तु को धूप में सुखाते हैं। उसी तरह सूख जाने पर सैंड पेपर से रगड़कर भली भाँति वस्तु को चिकना कर लेते हैं।

पश्चात्, वस्तु पर लाह का प्रयोग करते हैं। इस प्रयोग में पहली बार लाह का लाल या पीला रंग चढ़ाया जाता है। दूसरी बार लाह का काला या लाल रंग देते हैं और तीसरी बार लाह का स्वाभाविक रंग अथवा उसे भूरे रंग का बनाकर वस्तु पर चढ़ाते हैं। तीसरी बार मनोनुकूल रंग दिया जा सकता है। प्रत्येक बार रंग देने पर दूसरे रंग देने के पहले, वस्तु को सुखा लेना नितान्त आवश्यक है और हर बार सैंड पेपर से उसे साफ कर लेना भी जरूरी होता है। इस तरह सभी रंगों को चढ़ाकर, सुखाकर तथा साफ हो जाने पर लकड़ी के कोयले का व्यवहार किया जाता है। लकड़ी के कोयले से धीरे-धीरे घिसकर वस्तु पर चढ़ा हुआ ऊपरी रंग हटाकर भीतरी रंग का उभार किया जाता है, जिससे वस्तु की रूप-रेखा चित्र-विचित्र दिखाई पड़ने लगती है और वह कुशल कलाकार के रेखांकन-सी लगने लगती है।

उपयुक्त क्रिया समाप्त हो जाने पर भींगे कपड़े से अच्छी तरह वस्तु को पोंछकर सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। बाद, चपड़े का एक पोत चढ़ा दिया जाता है, जिससे वस्तु में अत्यन्त चमक आ जाती है। ये सारी क्रियाओं के करने में चार दिनों का समय अपेक्षित होता है।

बर्मा-प्रणाली—यह पहले कहा गया है कि जापानी प्रणाली से बर्मा-प्रणाली में अन्तर होता है। पर, यह अन्तर केवल लेप-क्रिया में ही है। अन्य चीजों में तो पूर्ण सामंजस्य है।

जापान में रामरज की तरह ही एक पदार्थ है, जिसे 'तनको' कहते हैं और वहाँवाले 'तनको' में ही लाह का मिश्रण कर लेप चढ़ाते हैं। किन्तु, बर्मावाले गाय के गोबर में लाह मिलाकर उसी तरह का लेप तैयार करते हैं। इसकी विधि इस प्रकार है—

(१) इस प्रणाली के अनुसार बुनी हुई छोटी टोकरी के किनारेवाले अंश में लाह के बराबर पानी मिलाकर बनाये गये घोल को पहले लगा देते हैं। यह इसलिए किया जाता है कि टोकरी के घेरावाले किनारे की बुनावट मजबूत हो जाय और वह निकलने न पावे। इस क्रिया को दो बार करके किनारे को खूब मजबूत बना लिया जाता है।

(२) बाद, घेरे के किनारेवाली तानी की कमचियों को, जो बाहर निकली रहती हैं, काट दिया जाता है।

(३) इसके पश्चात् लाह मिलाये हुए गोबर को पुनः दो बार पोत देते हैं, जिससे ऊबड़-खाबड़ स्थान बराबर हो जाते हैं। बाद, वस्तु को अच्छी तरह सुखा लेते हैं, जिससे उसमें मजबूती आ जाती है।

(४) लेप के सूख जाने के बाद, मोटे-पतले लगे लेप को, वस्तु को घुमा-घुमाकर छुरी से बराबर कर देते हैं। खराद पर या चाक पर भी रखकर बराबर करते हैं और इन दोनों विधियों से बराबर करने की सही आकृति में कोई कमी नहीं रह जाती है।

(५) बाद, लाह का अधिक अंश और गोबर का कम अंश देकर लेप बनाते हैं और उसे वस्तु पर पोत देते हैं। पुनः सूखने के लिए छोड़ देते हैं।

(६) पश्चात्, गोबर का अंश ज्यादा और लाह का अंश कम देकर लेप तैयार करके घोलते हैं और पुनः धूप में सुखाते हैं।

(७) अच्छी तरह लेप के सूख जाने पर पत्थर पर घिसकर चिकना करते हैं।

(८) इतनी क्रिया हो जाने पर केवल लाह का लेप बाहर और भीतर चढ़ाकर धूप में वस्तु को सुखा देते हैं।

(९) यदि वस्तु पर कोई डिजाइन बनाना है, तो एक प्रकार के औजार से या छुरी से डिजाइन तैयार करके ऊपर से लाह अथवा पिगमेंट रंग चढ़ाकर अच्छी तरह कपड़े से पोंछ लेते हैं। बाद, कच्ची लाह का लेप चढ़ा देते हैं।

(१०) पुनः वस्तु पर दूसरा रंग देने के लिए औजार से रेखांकन करके हरा रंग चढ़ा देते हैं तथा सुखा लेते हैं।

(११) तीसरा रंग देने के समय पूर्ववत् रेखांकन तैयार करके पीला रंग चढ़ाते हैं और सुखाते हैं।

(१२) इन सब विधियों की समाप्ति के बाद लाल रंग चढ़ाते हैं और सुखा लेते हैं।

(१३) सबसे अन्त में वस्तु को चिकना करने का काम अरवा धान की भुस्सी की रगड़ से किया जाता है।

वहाँ कोई-कोई 'तनको' के स्थान पर धान की भुस्सी को जलाकर पाउडर बनाते हैं और उसमें लाह मिलाकर लेप तैयार कर लेते हैं। बर्मावालों का कहना है कि गोबर से उत्तम लेप धान की भुस्सी का ही होता है।
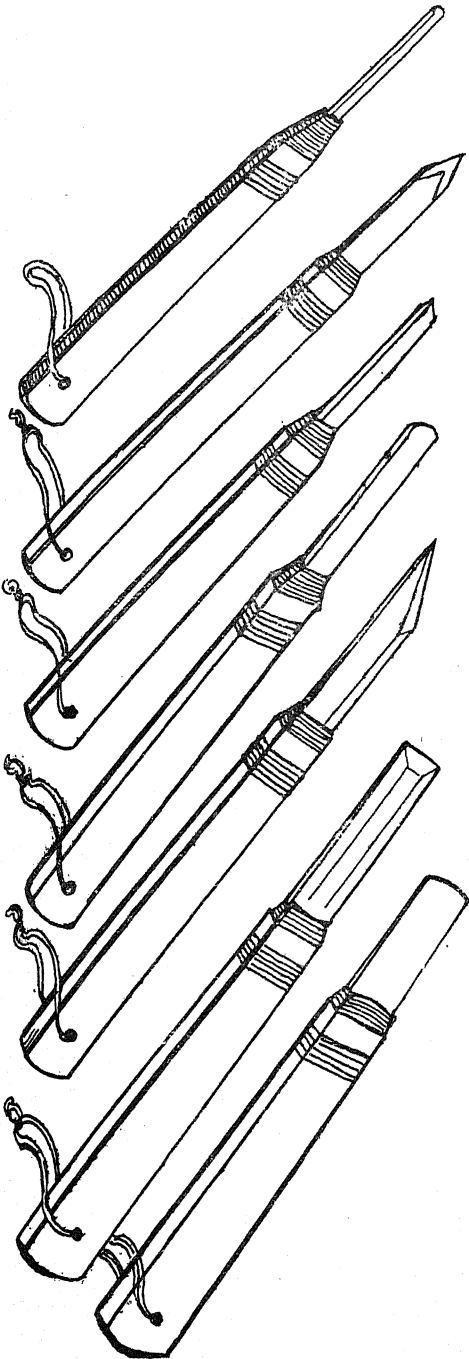
(चित्र १६३)

सुनहले तबक की प्रयोग-विधि

कारीगर सेकाइओ पिगमेंट (Sekaio Pigment) रंग और अरबियन गम (Arbian gum)—इन दोनों को पानी में मिलाकर रंग तैयार करते हैं। इस रंग को चढ़ा लेने पर लाह का लेप लगाकर रूई से वस्तु को पोंछ देते हैं तथा सुनहली पत्ती देकर जल से धोते हैं। धोने के बाद जिस स्थान पर रंग या लाह नहीं रह जाते, उसी स्थान पर सुनहली पत्ती दिखाई पड़ने लगती है। शेष स्थानों पर सुनहला रंग बचा रह जाता है।

भारतवर्ष में भी टोकरी, सूप, डगरा आदि सामानों को मजबूत बनाने के लिए केवल गोबर-मिट्टी तथा अलकतरा का प्रयोग होता है, जो अत्यन्त प्राचीन प्रणाली है।

बाँस पर खुदाई-शिल्प की प्रणाली

इस प्रणाली के द्वारा साधारण-से-साधारण बाँस पर भी मनोनुकूल चित्रों का रेखांकन करके अद्भुत तथा अत्यन्त आकर्षक वस्तुएँ तैयार की जा सकती हैं, जिन्हें सजाकर अपने कमरे की शोभा बढ़ाई जा सकती है। इस प्रणाली से प्रस्तुत की गई वस्तुओं को बाजार में बेचकर अपनी आर्थिक स्थिति भी सुधारी जा सकती है। इस तरह के बाँस-शिल्प का विकास संसार के देशों में नहीं के बराबर है; किन्तु जापान तथा चीन में इस शिल्प का पूर्ण विकास हुआ है।

भारतवर्ष में काष्ठ-शिल्प तो हैं; पर वेणु-शिल्प नहीं है। इसके अतिरिक्त हमारे यहाँ काष्ठ-शिल्पों के भी अलग-अलग नामकरण नहीं हुए हैं; पर जापान में इस शिल्प के विभिन्न नामकरण हो गये हैं, जिससे इस शिल्प-विधि की व्यापकता तथा स्थिरता पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। जापान में खुदाई-शिल्प अपने नामकरण के अनुसार १८ प्रकार के हैं।

उपर्युक्त खुदाई-शिल्प के लिए वहाँ विशेष प्रकार के औजार बनाये गये हैं, जिनसे ही ऐसे कार्यों का सम्पादन होता है। ऐसे औजारों की रूप-रेखा चित्र १६३ के द्वारा प्रदर्शित की गई है। प्रायः प्रत्येक खुदाई-शिल्प के लिए एक विशेष प्रकार का औजार होता है और इन औजारों की आवश्यकता विभिन्न कार्यों के लिए होती है। उदाहरण-स्वरूप सीधी रेखा और टेढ़ी रेखा आदि की खुदाई के लिए अलग-अलग औजार होते हैं। उक्त प्रणाली के कार्य के लिए सात-आठ प्रकार के औजार व्यवहृत होते हैं, जो चित्र १६३ में दिये गये हैं।
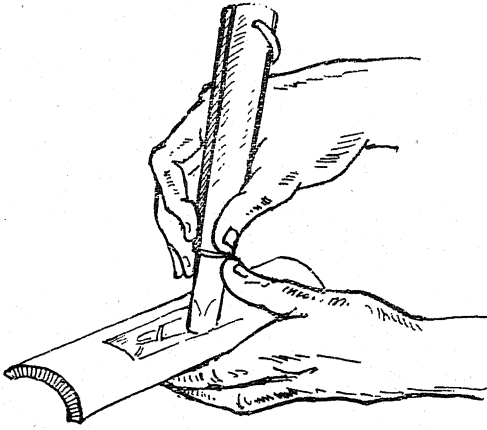
(चित्र १६४)

(चित्र १६५)

औजारों की प्रयोग-विधि निम्नलिखित है। नीचे दिये गये सभी नाम जापानी भाषा के हैं—

(१) **इतोवरी**—यह कार्य ऐसे औजार से होता है, जिसका अर्द्धभाग कुछ वक्र होता है। इसमें खुदाई-कार्य करने के पहले ऊपर के हिस्से को जरा चौड़ाई की ओर से काट लेना पड़ता है। काटते समय बाँस की जड़ की ओर से ऊपरी भाग की तरफ छुरी चलाई जाती है, अन्यथा छिलके के हट जाने की सम्भावना रहती है। बाद, औजार की मदद से बाँस पर मनोनुकूल चित्र की आकृति तैयार करते हैं और तब हल्की तथा गहरी रेखा के सहारे बारीक रेखावाली आकृति उभार लेते हैं। इस काम के लिए व्यवहृत होनेवाला औजार कुछ चौड़ा तथा छोटा होता है,

(चित्र १९६)

(चित्र १९७)

जिसका व्यवहार अनेक स्थलों पर होता है। इसे चित्र १९४ में देखा जा सकता है।

(२) **केवरी**—यह त्रिकोणरेखावाली खुदाई होती है, जो चित्र १९५ में दिखाई गई है। यह कार्य तिरछी धारवाली छुरी से भी किया जाता है और विशेषतः अक्षर लिखने का कार्य इससे होता है।

(३) **उक्कीवरी**—यह कार्य चित्र १९३ के पहलेवाले औजार से ही करते हैं। इसकी विशेषता यह है कि आकृति काढ़ लेने पर उसके चारों ओर के हिस्से को निकालकर, उन स्थानों में तथा नीचे के स्थान में, भाव का प्रदर्शन करते हैं। जैसे फूल आदि ऊपर तथा नीचे बनाकर दिखलाते हैं।

(४) **निकुवरी**—इसकी क्रिया उपर्युक्त उक्कीवरी के ठीक विपरीत होती है।

(५) **हिरावरी**—इसमें खुदाई का काम समतल भूमि की तरह नीचा करके दिखाया जाता है। इसमें अर्द्धाकार आकृति का औजार व्यवहृत होता है।

(६) **हितोवरी**—इस विधि के अनुसार चौड़ाई लिये त्रिकोणाकार खुदाई का कार्य होता है।

(७) **मिगाकी उकीसियावरी**—यह विधि भी अर्द्ध गोलाकार और त्रिकोणवाले औजार से सम्पन्न होता है, जो चित्र १९३ का तीसरा औजार है।

(८) **उकसोवरी**—यह एक कोणवाले औजार से सम्पादित होती है। यह खुदाई ठीक लकड़ी पर की खुदाई-जैसी होती है।

(९) **सिया उसीवरी**—यह विधि भी अर्द्धाकार तथा एक कोणवाले औजार से सम्पन्न की जाती है। जिस तरह ब्लॉक बनाने के लिए जस्ते अथवा ताँबे की पट्टी पर 'एचिंग' का काम होता है, उसी तरह इस विधि के अनुसार बाँस पर चित्र बनाया जाता है। इसी का नाम

(चित्र १९८)
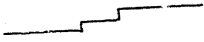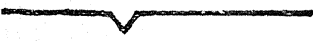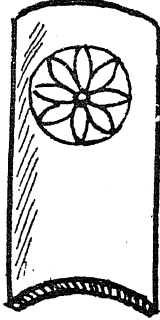
(चित्र १९९)

'सिया उसीवरी' है। इसकी विविध आकृतियाँ चित्र १९६ में प्रदर्शित हैं।

(१०) **सेनवरी**—यह पतली बटाली-जैसे एक विशेष औजार से की जाती है। यद्यपि इसकी विधि वही है, जो उपर्युक्त दो संख्यावाले की है, तथापि विभिन्नता यह होती है कि इसमें अत्यन्त हल्की तथा महीन खुदाईवाली रेखा रहती है, जिसकी गहराई अति क्षीण होती है।

(११) **सिनावरी**—यह बटाली-जैसे अर्द्धाकार-वाले औजार से की जाती है। इसमें रेखाओं की गहराई कुछ अधिक होती है। इसे चित्र १९७ में देखें।

(१२) **मारुवरी**—यह भी अर्द्धाकार औजार से सम्पादित होती है। इसमें सब गहरी तथा गोलाकार खुदाई का कार्य होता है। इसका प्रदर्शन भी चित्र १९६ के तीसरे चित्र में हुआ है।

(१३) **फुदेवरी**—इसे भी अर्द्धाकार औजार से ही करते हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसकी रेखाएँ मालूम पड़ती हैं—जैसे एक ही बार के वार में बनाई गई हैं। इसे चित्र १९६ के चौथे हिस्से में देखें।

(१४) **टाकावरी**—यह विधि भी अर्द्धाकार तथा त्रिकोणाकार औजार से की जाती है। इसकी खुदाई में रेखाएँ सीढ़ी की तरह ऊँचाई-निचाई में दिखाई गई होती हैं। यह विधि चित्र १९६ के पाँचवें हिस्से में प्रदर्शित है।

(१५) **सुकार्शावरी**—इसमें एक प्रकार की बटाली-जैसा औजार व्यवहृत होता है, जो अर्द्धाकार तथा त्रिकोणाकार होता है। इसमें खुदाई इतनी गहरी होती है कि बाँस में आर-पार छेद हो जाता है।

(१६) **रिटाइवरी**—इसे भी उपयु`क्त औजार से ही करते हैं। इसमें अधिक गोलाई का भाव रखकर खुदाई का काम किया जाता है।

(१७) **फुकावरी**—यह विधि भी अर्द्धाकार और त्रिकोणाकार औजार से ही सम्पन्न होती है। इसकी रेखाएँ भी विशेष रूप से गहरी होती हैं, जो लगभग हितोवरी की तरह की है।

(१८) **थिगवरी**—यह विधि केवल अर्द्धाकार औजार से ही की जाती है। इसमें केवल घात (स्ट्रोक) देकर ऊँचाई-निचाईवाली रेखाएँ दिखाई जाती हैं। चित्र १९७, १९८ और चित्र १९९ भी इन्हीं प्रक्रियाओं के चित्र हैं।

नोट—खुदाई करने के पहले कुछ बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना होता है :

(क) एक तो खुदाई का काम तब होना चाहिए, जब बाँस पर रंग आदि चढ़ाने का काम हो गया हो।

(ख) दूसरी बात यह है कि जब बाँस पर गोलाकार औजार का व्यवहार करने लगें, तब बाँस को घुमा घुमाकर करें, नहीं तो बाँस के गोल होने के कारण औजार के फिसल जाने की सम्भावना अधिक रहती है, जिससे या तो हाथ कट जाता है अथवा बाँस में खरोंच पड़ जाती है।

इन बातों के साथ ही निम्नलिखित कार्य सम्पन्न कर लेने के पश्चात् ही खुदाई-शिल्प का काम करना चाहिए—

(१) सबसे पहले बाँस को पानी से धोकर और कपड़े से पोंछकर उसका छिलका छुरी से हटा लेना चाहिए। इसकी विधि भी चित्र में दिखाई गई है।

(२) बाद, बाँस को गरम करके ब्रश के द्वारा 'बिस्मार्क-ब्राउन' रंग लगाया जाता है। पश्चात्, सूखने के लिए कुछ देर छोड़ दिया जाता है अथवा आग दिखाकर सामान को सुखा लिया जाता है।

(३) उपर्युक्त विधि के अनुसार बाँस पर तीन बार 'बिस्मार्क ब्राउन' चढ़ाया जाता है और हर बार सुखाया जाता है।

(४) बाद, मोटे कपड़े से घिसकर बाँस पर चमक लाना पड़ता है।

(५) बाँस पर जो चित्र बनाया जायगा, पहले पेंसिल से उसकी आकृति बना लेनी पड़ती है।

(६) चित्र के जिस स्थान में गाढ़ा रंग दिखलाना है, उस स्थान में काला चीना रंग चढ़ा देना चाहिए।

(७) काला चीना रंग को आग दिखाकर सुखा लेना अत्यन्त आवश्यक होता है।

(८) बाद, कपड़े के द्वारा बाँस पर बार्निश करनी चाहिए, जो अत्यन्त हल्का हो। नहीं तो पहले का चढ़ाया गया रंग लुप्त हो जायगा और बार्निश की ही प्रधानता रह जायगी।

(९) उक्त बार्निश दुबारा चढ़ाई जाती है, जिसकी विधि पूर्ववत् है।

(१०) इतने कार्य सम्पन्न हो जाने पर, पेंसिल से पहले दी गई रेखाओं पर ही अर्द्ध-गोलाकार औजार से खुदाई के द्वारा आकृति उभारने की चेष्टा होनी चाहिए।

(११) उसके बाद पृष्ठ-प्रदेशवाले स्थान को अर्द्धगोलाकर औजार से निकालकर हटा लेना पड़ता है।

(१२) इसके बाद जो चित्र बनाया जाय, उसमें अन्धकार और प्रकाश (Shade & light) आदि देकर सुन्दर बना लेना होता है।

(१३) सारे कार्य समाप्त हो जाने पर अन्त में चपड़े का एक हल्का लेप चढ़ा दिया जाता है।

पोकर की कार्य-विधि

पोकर एक प्रकार का यंत्र है, जिसके साथ बिजली की एक कलम लगी होती है। यंत्र के साथ एक प्लक भी लगा रहता है। कार्य आरम्भ करने के पहले प्लक को बिजली के साथ संलग्न कर दिया जाता है। प्लक के द्वारा जब बिजली दौड़ने लगती है, तब यंत्र और उसमें लगी नुकीली कलम गरम हो जाती है। पूरी तरह कलम के तप्त हो जाने पर उसे बाँस की बनी वस्तुओं पर अपनी इच्छित नक्काशी के अनुसार चलाते हैं, जिससे वस्तु पर नक्काशी बन आती है। इसकी विशेषता यह है कि तप्त कलम से नक्काशी बनाने के कारण जिधर-जिधर कलम घुमाई जाती है, उधर-उधर का स्थान जल जाता है। इसमें एक प्रकार से भूरा रंग आ जाता है, जो अत्यन्त स्थायी होता है। यह इतना स्थायी होता है कि वस्तु के नष्ट हुए विना यह नहीं मिट सकता।

इसमें एक सतर्कता बरतनी पड़ती है कि प्लक लगाने के पहले नुकीली कलम लगे यंत्र को एक ईंट के ऊपर रखते हैं, नहीं तो यंत्र फ्यूज हो जाता है। एक ऐसा पोकर-यंत्र भी होता है, जो अलकोहल से जलता है। इसका व्यवहार उस जगह के लिए उपयुक्त है, जहाँ बिजली का प्रबन्ध नहीं है। इससे भी उसी तरह का सारा काम किया जाता है।

उपर्युक्त आधुनिक विधि का काम, हमारे यहाँ पहले अथवा आज भी, दूसरे तरीके से लोग करते हैं। वस्तुओं पर इच्छित नक्काशी बनाने के लिए ये लोग लोहे का साँचा बना लेते हैं, जिसे आग में तप्त कर, उससे वस्तु पर दाग देकर, काम निकालते हैं। आपने छाते की बेंट अथवा बजानेवाली वंशी पर इस आलंकारिक रूप को अवश्य देखा होगा, जो इसी विधि से तैयार किये गये होते हैं। इस पद्धति को रासायनिक पदार्थों से भी किया जा सकता है, जिसकी विधि नीचे दी जाती है—

शीशे की बनी नुकीली कलम इस काम में व्यवहृत होती है। रसायन में नाइट्रिक एसिड अथवा सल्फ्युरिक एसिड को लेकर एक शीशे के पात्र में रख देते हैं। उस रसायन में शीशेवाली नुकीली कलम को डुबोकर बाँस या बाँस की बनी वस्तु पर मनोनुकूल आलंकारिक रूप प्रदान किया जाता है। वस्तु पर आलंकारिक रूप दे देने के बाद, वस्तु को आग पर गरम कर लेते हैं, तत्पश्चात् उसे ठंडा होने के लिए छोड़ देते हैं। ठंडा हो जाने पर उसे पानी से धो देते हैं। इसके बाद ठीक 'पोकर की कार्य-विधि' जैसी नक्काशी हो जाती है। इन दोनों में विभिन्नता यह है कि रसायन-पद्धति से किया गया अलंकार पोकर-पद्धतिवाले अलंकार-जैसा उतना स्थायी नहीं होता; क्योंकि पोकर-पद्धतिवाले अलंकार में गहराई कुछ ज्यादा हो जाती है।

यह कार्य केवल बाँस की बनी वस्तुओं पर ही नहीं; बल्कि लकड़ी के बने विविध सामानों, चमड़े की बनी वस्तुओं, ताड़ के पत्तों एवं बाँस की कोंपलों पर भी होता है, जिससे इन वस्तुओं की सुन्दरता अलंकृत होने के कारण बढ़ जाती है। यह कार्य भारत के विभिन्न प्रदेशों में आज भी हो रहा है; पर इसमें रुचि-परिष्कार की आवश्यकता है।

कुर्सी, टेबुल आदि का निर्माण
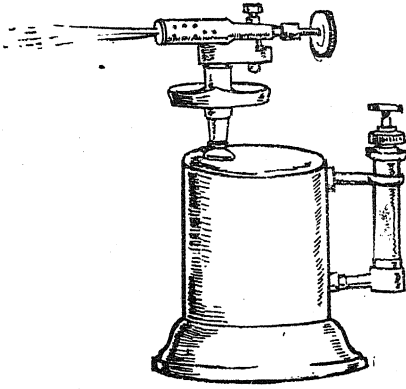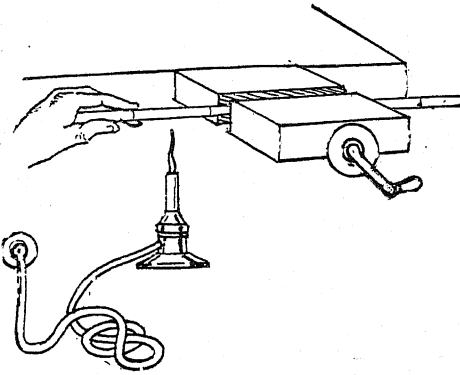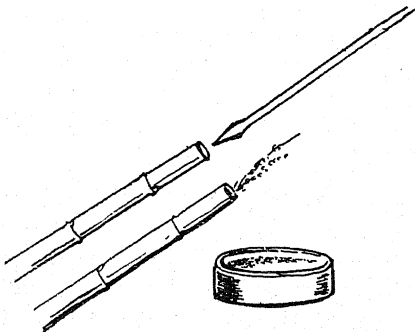
बाँस से टेबुल, कुर्सी, खटिया आदि बनाने की प्रणाली हमारे देश में भी प्राचीन है। किन्तु, इन सामानों को बनाने की प्रक्रिया हमारे यहाँ कोई एक निश्चित रीति से नहीं होती है या न इसकी कोई वैज्ञानिक पद्धति ही है। प्रत्येक प्रान्त के कारीगर अपने प्रदेश में प्रचलित परम्परा के अनुसार बाँस की उक्त वस्तुएँ बनाते हैं। वे किसी एक पद्धति का अवलम्बन नहीं करते, नाना विधियों का प्रयोग करते हैं। इस तरह के बने सामानों में न तो नियमितता होती है या न आकर्षण ही होता है। केवल उपयोगिता की दृष्टि से ही कारीगर वस्तुओं का निर्माण करते हैं।

भारत में आजकल कुछ आधुनिक रीति से कुर्सी आदि सामानों का निर्माण हो रहा है। किन्तु, ये न तो पर्याप्त हैं और न उच्च कोटि के ही होते हैं। जापान में जिस वैज्ञानिक और निश्चित पद्धति से फर्नीचर तैयार होते हैं, वे पूर्ण आकर्षक और टिकाऊ बनाये जाते हैं। उसकी रूप-रेखा और सफाई से ही देखनेवाले का मन खरीदने के लिए लालायित हो उठता है। वहाँ बाँस की जिस सामग्री से फर्नीचर बनाये जाते हैं, उस सामग्री की अपनी विशेषता होती है। जापान के खास-खास स्थान विशिष्ट फर्नीचरों के लिए विख्यात हैं।

(चित्र २००)
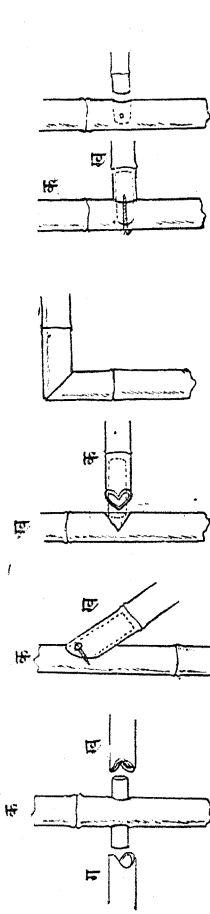
(चित्र २०१)
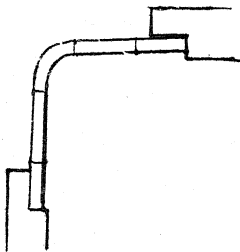
(चित्र २०२)

(चित्र २०३)

(चित्र २०४)

टेबुल, कुर्सी आदि बनाने के लिए उपयुक्त बाँस चुनने पड़ते हैं। ऐसी वस्तुओं के बनाने के लिए ध्यान रखना चाहिए कि न तो बाँस टेढ़े हों या न उनमें कीड़े लगे हों अथवा न छेदवाले हों। विशेषतः ढाँचा तैयार करनेवाले बाँस के लिए इसका परीक्षण आवश्यक है। स्वच्छ, सुन्दर और मजबूत बाँस के ही ढाँचे तैयार होते हैं। इस काम के लिए बाँस की मुटाई और भीतर के खोखले अंश का परीक्षण आवश्यक है। जिस बाँस में जितना खोखला कम होगा, वह उतना ही इस काम के लिए उपयुक्त होगा। जो बाँस जितना ही ज्यादा नीसन (खोखला-रहित) होगा, वह सेंककर टेढ़ा करने में सुविधाजनक होगा।

ऐसे उपयुक्त बाँस चुनकर उसकी गाँठों को तेज छुरी से सर्वप्रथम साफ कर दिया जाता है। यदि गाँठ बाँस के समतल भाग के बराबर में साफ नहीं होगी, तो उस स्थान पर इच्छानुकूल वह टेढ़ा नहीं होगा। गाँठ साफ करते समय इस बात पर भी पूरा ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं बाँस की बाहरी त्वचा न छिल जाय। त्वचा के नष्ट होने से बाँस की सुन्दरता और मजबूती नष्ट हो जाती है। बाँस से गाँठों को हटाकर राख या धान की भुस्सी अथवा पुआल से मलकर उसे अच्छी तरह साफ कर लेना पड़ता है। बाद, आवश्यकतानुसार बाँस को टेढ़ा या सीधा करने के लिए गैसोलीन (Gassoline) लैम्प, चित्र २०० या ग्लास लैम्प, चित्र २०१ की सहायता लेनी चाहिए। लैम्पों पर बाँस के विशेष स्थान को गरम करते समय उसे इधर-उधर फेरते रहना पड़ता है, ताकि अधिक आँच लगने से बाँस जलने न पावे। इस समय आँच पर बाँस को सीधे न रखकर उसकी भाप से मदद लेनी पड़ती है। भाप से मदद लेने पर बाँस जलने नहीं पाता है और गरम हो जाता है।

जब बाँस काम के लायक गरम हो जाय, तब धीरे-धीरे दबाकर उसे मनोनुकूल टेढ़ा या सीधा कर लिया जाता है। इसके बाद उसे दबाकर रख दिया जाता है। इसकी विधि चित्र २०१ में दिखाई गई है, जो बाँस को सीधा कर रही है। टेढ़ा करने पर उसे

उसी अवस्था में हाथ से पकड़कर रखते हैं और ठंढा होने पर छोड़ते हैं। फिर उसे भींगे कपड़े से पोंछकर अच्छी तरह ठंढा कर लिया जाता है। इस तरह कई बार बाँस को गरम करके टेढ़ा या सीधा किया जाता है। एकाएक गरम कर टेढ़ा या सीधा करने के प्रयास में या तो बाँस फट जायेगा या टूट जायेगा। इस बात पर कारीगर को खूब ध्यान रखना पड़ता है।

उपर्युक्त विधि सम्पन्न हो जाने पर आवश्यकतानुसार बाँस को तेज आरी से काट लेना चाहिए। बाद में फाइबर (Fiber) ब्रश के सहारे या बालू (Stone-powder) से मलकर धो देना चाहिए। फिर साफ सुथरे कपड़े से बाँस को पोंछ लेना चाहिए। यदि अच्छी बालू उपलब्ध नहीं हो तो धान की भुस्सी से ही साफ कर लेना चाहिए। अगर फोंफला ही बाँस उपलब्ध है, तो कारीगर को चाहिए कि भीतर की गाँठ निकाल दे और बाँस में तमाम बालू भर दे। ऐसे बाँस को सेंक कर टेढ़ा या सीधा कर लिया जाता है। इच्छित काम हो जाने पर शीघ्र बालू को निकाल देना चाहिए, अन्यथा बाँस फट जायेगा। गाँठ के निकालने और बालू भरकर सेंकने के बाद बालू निकाल देने की विधि चित्र २०२ में दिखाई गई है। यदि बाँस में छिद्र अत्यन्त कम है, तो उसके भीतरी अंश को नहीं निकालना चाहिए। ढाँचा तैयार करनेवाले बाँस को जहाँ टेढ़ा करना होता है, उसी स्थान पर सेंका जाता है। इसलिए सेंकने के पहले उस स्थान पर उभय पार्श्वों में निशान लगा देना चाहिए। ढाँचेवाले सभी बाँसों को इसी विधि से टेढ़ा करना पड़ता है। यदि बाँसों को जोड़ने की आवश्यकता हो, तो उन्हें परस्पर लकड़ी की कील ठोंक कर जोड़ देना चाहिए।

ढाँचा तैयार करते समय उसके सभी विभागों को जोड़ना पड़ता है। जोड़ने का तरीका चित्र २०३ में दिखाया गया है। इस विधि से एक के बाद दूसरे को जोड़ा जाता है और तब काँटी ठोंक दी जाती है। यदि ढाँचे के बीच में, एक बाँस के पार्श्व भाग को, दूसरे बाँस में जोड़ना है, तो दोनों जुड़नेवाले पार्श्व को रंदे से रँद कर चपटा कर दिया जाता है और तब दोनों को सटाकर लकड़ी की कील उसके बराबर में ठोंक दी जाती है। इसी तरह अगर बाँस के दोनों पार्श्व के मुँह की जोड़ाई करनी हो तो कारीगर को चाहिए कि एक मुँह में उसके बराबर मोटाई की लकड़ी की कील ठोंक दे और फिर उसके दूसरे मुँह में, बाँस को मोड़ कर, ठोक दे। जोड़नेवाले स्थान में दोनों भागों को सीधा नहीं काटकर कुछ तिरछा काटना चाहिए तब जोड़ना चाहिए। तिरछा काटकर जोड़ाई करने से जोड़ मजबूत होती है। ये सारी प्रक्रियाएँ चित्र २०३ में ही दिखाई गई हैं।

(चित्र २०५)

जिस आकार-प्रकार की कुर्सी बनानी होती है, उसका एक नक्शा पहले पेंसिल से
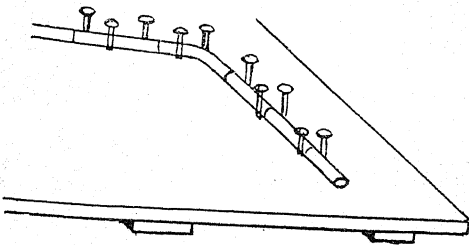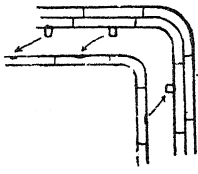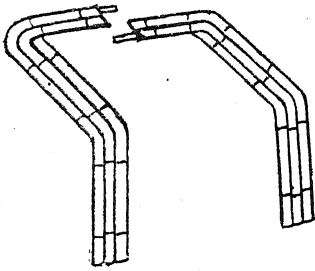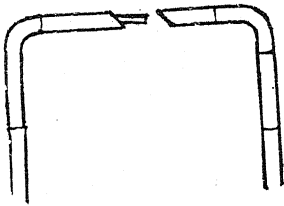
(चित्र २०६)

(चित्र २०७)

(चित्र २०८)
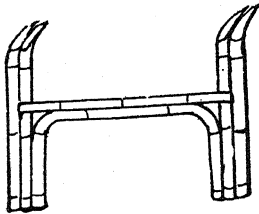
(चित्र २०९)
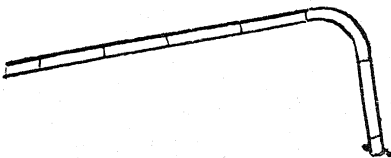
(चित्र २१०)

कागज पर बना लिया जाता है। इससे सुविधा यह होती है कि कारीगर चित्र के अनुसार ही, जहाँ जितनी जरूरत है, बाँस को टेढ़ा करता है या घुमाता है। उसकी ऊँचाई-लम्बाई की माप भी वह ठीक करता रहता है। टेढ़े किये गये बाँस को एक फ्रेम में डालकर कुछ देर छोड़ दिया जाता है। फ्रेम में लगाकर रखे गये बाँस का चित्र २०४ में दिया गया है। इस तरह फ्रेम लगाकर जितनी अधिक देर बाँस को छोड़ दिया जायगा, उतना ही ज्यादा अच्छा होगा।

जिस आकार में बाँस को टेढ़ा करना चाहते हैं, अगर वैसा रूप देने में कठिनाई हो रही है तो एक तख्ते पर उस आकृति में सजा-कर काँटियाँ ठोंक दी जाती हैं। फिर बाँस को गरम करके उन काँटियों में फँसा दिया जाता है। अधिक देर तक छोड़ देने पर बाँस इप्सित आकार में टेढ़ा हो जायेगा। इसकी विधि चित्र २०५ में दिखाई गई है।

यदि कुर्सी में दो फ्रेम की आवश्यकता है तो दोनों फ्रेमों के पार्श्व भागों को रंदे से रँद कर बराबर कर लिया जाता है। पहले दोनों फ्रेमों को सटाकर देख लेना चाहिए कि कहाँ-कहाँ लकड़ी की कील देकर जोड़ाई की जायगी। कील ठोंकने के स्थानों में पहले चिह्न लगाकर उन स्थानों में छेद कर देते हैं और उन छेदों में कील ठोक कर फ्रेम को जोड़ देते हैं। इसकी सारी विधि चित्र २०६ में प्रदर्शित है।

तीन बाँस के फ्रेम बनाकर जोड़ देने पर उसका आकार जिस प्रकार का होगा, उसका रूप चित्र २०७ में दिखाया गया है। बाईं ओर का फ्रेम चित्र में बाईं ओर है और दाहिनी ओर का दाहिने भाग में।
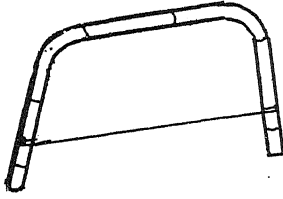
(चित्र २११)
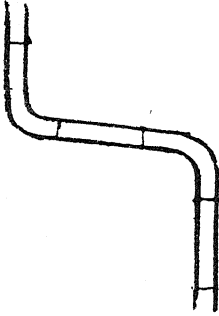
(चित्र २१२)
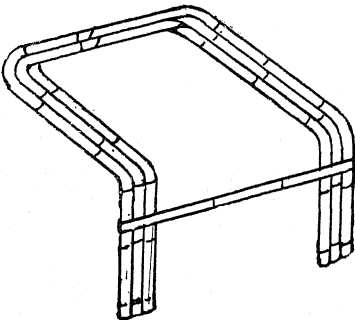
(चित्र २१३)

दोनों किनारों के फ्रेमों को जोड़ने के के लिए कारीगर को चाहिए कि फ्रेमवाले बाँस की गाँठ से आगे हटकर उसे तिरछा काटें। फिर दूसरे फ्रेमवाले बाँस को उसी प्रकार, विपरीत रूप में, तिरछा काटना चाहिए। इस विधि से काट कर जब दोनों को जोड़ा जाता है, तब ठीक रूप में बाँस मिल जाते हैं और जोड़ने का चिह्न दिखाई नहीं पड़ता है। तिरछा काट लेने पर बाँस के पोले भाग के बराबर की लकड़ी की एक कील, कुछ ज्यादा भीतर तक, ठोक दी जाती है और फिर दूसरे फ्रेम के छेद में उस कील को घुसाकर ठीक से बाँसों को जकड़ दिया जाता है। अगर बाँस पोला नहीं हो तो चित्र २०२ में प्रदर्शित ढंग से उसे पोला कर लेना चाहिए। कील के द्वारा जब फ्रेम ठीक से जुड़ जाता है, तब ऊपर से काँटी ठोक दी जाती है, जिससे जोड़ खूब मजबूत हो जाती है। जोड़ने का ढंग चित्र २०८ में दिखाया गया है।

कारीगर जब दोनों फ्रेम को जोड़ लेते हैं, तब उन्हें पैरवाले भाग के बीच में, कुर्सी के बीच भाग में, उसकी मजबूती के लिए, आड़ी देनी पड़ती है। आड़ीवाले बाँस को, जहाँ से मोड़ा जायगा, वहाँ, दोनों ओर के हिस्से मे काटकर पतला बना लिया जाता है, जिससे वह गरम करने पर आसानी से मुड़ जाता है। पहले चौड़ाईवाले भाग को और अग्रभाग को मापकर मोड़नेवाले स्थान पर निशान लगा देना चाहिए। आड़ीवाला बाँस जब मुड़ जाता है, तब पैर के फ्रेम में सटाकर काँटी ठोक दी जाती है। लगाई गई आड़ी का प्रदर्शन चित्र २०९ में किया गया है।

फ्रेम बनाते समय कारीगर पहले कुर्सी के

पैरवाले भाग को एक निश्चित ऊँचाई पर निशान लगाकर वहीं से मोड़ते हैं। इसे चित्र २१० में देखना चाहिए। फ्रेम के दूसरे भाग को भी, एक निश्चित चौड़ाई रखकर, उसी प्रकार मोड़ते हैं और तब मुड़े हुए भागों के दोनों पैरों को एक रस्सी तानकर बाँध देते हैं। बाँधने के बाद उसे उसी अवस्था में कुछ घण्टे छोड़ देते हैं। देखिए चित्र २११। इस बात का बराबर ध्यान रहे कि जब जहाँ मोड़ना हो, वहाँ तब बाँस को गरम कर लेना अतिआवश्यक है।
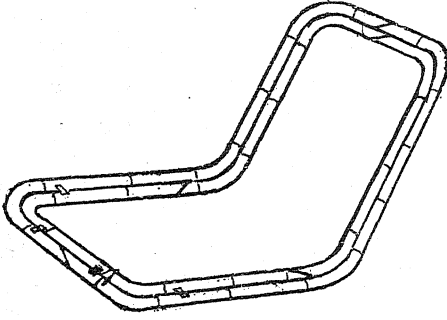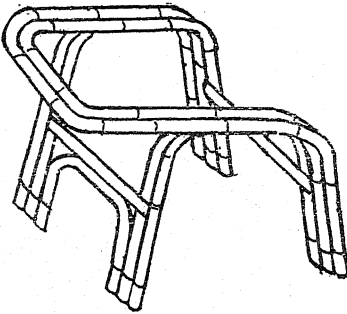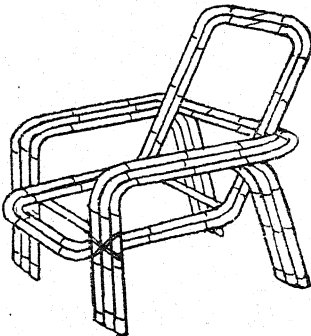
(चित्र २१४)

चित्र २१२ में दिखाया गया है कि पैर वाले बाँस के जोड़ने तथा आड़ी लगा देने पर किस ऊँचाई के आधार पर बाँस को काटा जायगा।

इस प्रकार जब फ्रेम तैयार हो जाते हैं, तब उन्हें एक साथ मिलाकर जोड़ दिया जाता है, जिसका आकार चित्र २१३ में दिखाया गया है। बैठनेवाले फ्रेम को ही उक्त विधि से बनाकर, मोड़कर और फिर जोड़कर तैयार कर लिया जाता है, जो चित्र २१४ में प्रदर्शित है। सभी फ्रेमों के तैयार हो जाने पर सबको मिलाकर और काँटी ठोक कर जोड़ दिया जाता है, जिसका चित्र २१५ में दिखाया गया है।

(चित्र २१५)

कुर्सी के बिचले हिस्से को, जो फ्रेम के बीच भाग में होता है और जहाँ आदमी बैठता है, बड़ी सफाई से बनाना पड़ता है। बीच के बुनाई वाले स्थान को बनाते समय बाँसों के ऊपरवाले चिकने स्तर को हटा दिया जाता है और गाँठों को भी रन्दे से रँदकर बराबर और खूब चिकना कर दिया जाता है। ऐसा करने से बाँसों के फाड़ने में आसानी होती है। फाड़ने की प्रक्रिया पहले ही बतलाई

(चित्र २१६)

गई है। यदि रंदे से गाँठ अच्छी तरह बराबर न हो, तो उसे रेती से रेतकर बराबर कर दिया जाता है। इसके बाद भी बालू रगड़कर बाँस को पूर्ण चिकना कर लेना पड़ता है। ये विधि उन मोटी कमचियों के लिए है, जिन्हें बुनावट वाले स्थान में फ्रेम के रूप में देना पड़ता है। बाकी साफ की हुई मोटी कमचियों को चूल्हे अथवा ग्लास लैंप की सहायता से सेंककर इच्छित दशा में टेढ़ा कर लेना पड़ता है। इस विधि का प्रदर्शन चित्र २०० और २०१ में किया गया है। प्रत्येक मोटी कमची को टेढ़ा कर लेने पर दोनों शेषांश को फ्रेम के भीतर रखकर तब सभी कमचियों को बराबर में मोड़ दिया जाता है। अब प्रत्येक कमची को सजाकर फ्रेम के अन्दर रखकर रस्सी से बाँध देते हैं और तब काँटी ठोक कर जकड़ देते हैं। जिन स्थानों पर काँटियाँ ठोंकी जाती हैं, उन स्थानों पर बेंत की मोटी त्वचा लपेट कर बाँध देते हैं, जिससे काँटियाँ छिप जाती हैं। इतनी विधि के बाद कुर्सी तैयार हो जाती है, जिसका रूप चित्र २१६ में प्रदर्शित है। पश्चात् कुर्सी के सभी भागों पर चपड़े का लेप (कोटिंग) चढ़ा देते हैं। इस लेप से बाँस या बेंत वाले अंश में सर्वत्र एक चमक आ जाती है और कुर्सी सुस्निग्ध तथा बैठने में आरामदेह हो जाती है।

इन्हीं सब विधियों से थोड़ा हेर-फेर करके टेबुल, बेंच तथा अन्य सामग्रियाँ भी बनाई जा सकती हैं।

लाह के लेप बनाने की पद्धति

कारीगर को चाहिए कि लाह का लेप ऐसा तरल बनावे, जिससे सामान में नेत्र-मोहक चिकनापन आ जाय। चीन और जापान में जो लाह का लेप तैयार होता है, उसकी बड़ी विशेषता यही है कि बनी वस्तु को इस तरह चमका देता है, जिससे देखनेवाले लुभा जाते हैं। अब यहाँ चीना या जापानी लेप की तरह भारतीय लाह को तरल बनाने की विधि बतलाई जा रही है।

(१) **लाह का Ethyl alcohol (C_2H_5OH) में घोल बनाना**—पहले दोनों को एक शीशे के बर्तन में रखकर उसमें बहुत थोड़े परिमाण में अलकोहल (Alcohol) मिला देते हैं और ६० सेंटिग्रेड परिमाण के ताप में लाकर घोल तैयार कर लेते हैं। बाद में आवश्यकता के अनुसार अलकोहल मिलाकर गाढ़ा या पतला घोल बनाते हैं।

लाह के गलाने की पद्धति—(१) एक शीशे के बर्तन में ६० ग्राम लाह के साथ मेथील अलकोहल (Methyl alcohol) लगभग १/१० CH30H, ५०० सी० सी० (500 c.c.) दो घंटे तक गरम किया जाता है। बाद में छनना कागज से उसे छान दिया जाता है।

यदि इस उपाय से लाह खूब स्वच्छ नहीं होता हो, तो उसमें क्लोरोफार्म (Chloroform) मिलाकर छान लेना चाहिए। इससे लाह बिलकुल स्वच्छ हो जाता है। लाह में मोम (Wax) और रॉजन (Rosin) रहता है। यह क्लोरोफार्म

(Chloroform) दिये विना लाह को ठीक से तरल नहीं होने देता है। किन्तु आइसो-एमील अलकोहल (Iso Amyl alcohol) में शीघ्र घुलन की शक्ति मौजूद रहती है और वह जल्दी सूखता भी नहीं है। इसमें तरलता की मात्रा इतनी अधिक है कि इसे पानी का छींटा अथवा हवा देकर सुखाना पड़ता है।

(२) यह भी देखा गया है कि यदि (Diethyl phthalate) के साथ सामान्य परिमाण में क्लोरोफार्म मिलाकर छानते हैं, तो तरलता में आधा ही फल मिलता है।

(३) कार्बन टेट्राक्लोराइड (Carbon tetrachloride) मिलाकर जब लाह को छानते हैं, तब भी आधा ही घोल होता है।

(४) Chloroform और Tetrachloride बराबर परिमाण में मिलाकर छानते हैं तो भी आधा ही लाभ होता है।

(५) लाह के साथ आइसो-एमील अलकोहल (Iso Amyl alcohol) और क्लोरोफार्म मिलने पर भी आधा ही घुलन होता है। किन्तु, इसमें अलकोहल अपने रूप में परिणत नहीं होता है। फिर भी इस पद्धति से आधी ही सफलता मिलती है।

(६) यदि लाह के साथ आइसोएमील अलकोहल (Iso Propyl alcohol) और आइसोनक्लीर अलकोहल (Isochloro alcohol) मिलाया जाय, तो भी आधा ही फल प्राप्त होता है।

(७) लाह के साथ आइसोएमील अलकोहल और क्लोरोफार्म मिलाकर जो लेप बनाया जाता है, यदि उसके साथ युरिया रेजिन पेंट (Uria Resin Paint) मिला दिया जाय, तो इसी का व्यावसायिक नाम इज्युमिलाक (Ozumilac) होता है। किन्तु यह नकली रेजन (Resin) सीनथेटीक रेजन (Shysenthic Resin) है। इसका बराबर-बराबर भाग मिलाकर लेप (Paste) बनाते हैं, जिससे आधा फल मिलता है।

(८) आइसो-एमील और अलकोहल के साथ कुछ मिथिल अलकोहल मिलाते हैं। इसमें उपरिनिर्दिष्ट उरियारेजिन आधा भाग और टोनोको (Tonoko) आधा मिलाकर तब प्रयोग किया जाता है।

(९) चपड़े के साथ मिथिल अलकोहल (Methyl alcohol) और फेनोल रेजिन (Phenol Resin) तथा टोनको (Tonoko) आधा भाग एवं पानी ५% मिलाकर लेप बनाया जाता है। इसका परिमाण इस प्रकार है—

७ : ३ — १०

१० : (५ Tonoko)

इसके लेप के लगाने की विधि निम्नलिखित है—

पहले सामान को अच्छी तरह सुखा लिया जाता है। उसके बाद लकड़ी के अच्छे कोयले से उसे खूब घिसकर साफ तथा चिकना किया जाता है। इसके बाद कपड़े से सामान को अच्छी तरह पोंछकर उसपर उक्त लेप को एक परत लगा देते हैं। पहला लेप सूख जाने पर पुनः एक परत लेप कर देते हैं, जिससे वस्तु के ऊपर, सामान में, खूब चमक आ जाती है।

इस विधि से फर्निचरों को स्वच्छ, चमकदार और आकर्षक बनाना व्यावसायिक और कलात्मक दृष्टि से सफल कहा जायगा।

परिषद् के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

		मूल्य
१.	हिन्दी-साहित्य का आदिकाल—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	३·२५
२.	यूरोपीय दर्शन—स्व० महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा	३·२५
३.	हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल	६·५०
४.	विश्वधर्म-दर्शन—श्रीसाँवलियाविहारीलाल वर्मा	१३·५०
५.	सार्थवाह—डॉ० मोतीचन्द्र	११·००
६.	वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा—डॉ० सत्यप्रकाश	८·००
७.	सन्त कवि दरिया : एक अनुशीलन—डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री	१४·००
८.	काव्य-मीमांसा (राजशेखर-कृत)—अनु० स्व० पं० केदारनाथ शर्मा	६·५०
६.	श्रीरामावतार शर्मा-निबन्धावली—स्व० महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा	८·७५
१०.	प्राङ्मौर्य बिहार—डॉ० देवसहाय त्रिवेद	७·२५
११.	गुप्तकालीन मुद्राएँ—स्व० डॉ० अनन्त सदाशिव अलतेकर	६·५०
१२.	भोजपुरी भाषा और साहित्य—डॉ० उदयनारायण तिवारी	१३·५०
१३.	राजकीय व्यय-प्रबन्ध के सिद्धान्त—श्रीगोरखनाथ सिंह	१·५०
१४.	रबर—श्रीफूलदेव सहाय वर्मा, एम० एस्-सी०	७·५०
१५.	ग्रह-नक्षत्र—श्रीत्रिवेणीप्रसाद सिंह, आइ० सी० एस्०	४·२५
१६.	नीहारिकाएँ—डॉ० गोरख प्रसाद	४·२५
१७.	हिन्दू धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ—श्रीत्रिवेणीप्रसाद सिंह	३·००
१८.	ईख और चीनी—श्रीफूलदेव सहाय वर्मा	१३·५०
१६.	शैवमत—मूल लेखक और अनुवादक डॉ० यदुवंशी	८·००
२०	मध्यदेश : ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सिंहावलोकन—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा	७·००
२१-२४.	प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण (खण्ड १ से ४ तक)	७·२५
२५-२८.	शिवपूजन-रचनावली (चार भागों में)—आचार्य शिवपूजन सहाय	३६·२५
२६.	राजनीति और दर्शन—डॉ० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा	१४·००
३०.	बौद्धधर्म-दर्शन—स्व० आचार्य नरेन्द्रदेव	१७·००
३१-३२.	मध्य एशिया का इतिहास (दो खण्डों में)—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन	२०·७५
३३.	दोहाकोश—मूल कवि : बौद्धसिद्ध सरहपाद; छायानुवादक : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन	१३·२५
३४.	हिन्दी को मराठी संतों की देन—आचार्य विनयमोहन शर्मा	११·२५
३५.	रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना—डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'	१०·२५
३६.	अध्यात्मयोग और चित्त-विकलन—स्व० वेंकटेश्वर शर्मा	७·५०

३७.	**प्राचीन भारत की सांग्रामिकता**—पं० रामदीन पाण्डेय	६·५०
३८.	**बाँसरी बज रही**—श्रीजगदीश त्रिगुणायत	८·००
३९.	**चतुर्दशभाषा-निबन्धावली**—(संकलित)	४·२५
४०.	**भारतीय कला को बिहार की देन**—डॉ० विन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंह	७·५०
४१.	**भोजपुरी के कवि और काव्य**—श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह	५·७५
४२.	**पेट्रोलियम**—श्रीफूलदेव सहाय वर्मा	५·५०
४३.	**नील-पंछी**—(मूल लेखक : मॉरिस मेटरलिंक) अनु० डॉ० कामिल बुल्के	२·५०
४४.	**लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ मानभूम ऐण्ड सिंहभूम**	४·५०
४५.	**षड्दर्शन-रहस्य**—पं० रंगनाथ पाठक	५·००
४६.	**जातककालीन भारतीय संस्कृति**—श्रीमोहनलाल महतो 'वियोगी'	६·५०
४७.	**प्राकृत भाषाओं का व्याकरण**—मूल लेखक : श्रीरिचर्ड पिशल	२०·००
४८.	**दक्खिनी हिन्दी-काव्य-धारा**—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन	६·००
४९.	**भारतीय प्रतीक-विद्या**—डॉ० जनार्दन मिश्र	११·००
५०.	**संतमत का सरभंग-सम्प्रदाय**—डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री	५·५०
५१.	**कृषिकोश (प्रथम खण्ड)**—संपादक : डॉ० विश्वनाथ प्रसाद	३·००
५२.	**कुँवरसिंह-अमरसिंह**—अनु० पं० छविनाथ पाण्डेय	५·००
५३.	**मुद्रण-कला**—पं० छविनाथ पाण्डेय	७·२५
५४.	**लोक-साहित्य : आकर-साहित्य-सूची**—सं० आचार्य नलिनविलोचन शर्मा	०·५०
५५.	**लोकगाथा-परिचय**—सं० आचार्य नलिनविलोचन शर्मा	०·२५
५६.	**लोककथा-कोश**—सं० आचार्य नलिनविलोचन शर्मा	०·३२
५७.	**बौद्धधर्म और बिहार**—पं० हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय'	८·००
५८.	**साहित्य का इतिहास-दर्शन**—आचार्य नलिनविलोचन शर्मा	५·००
५९.	**मुहावरा-मीमांसा**—डॉ० ओम्प्रकाश गुप्त	६·५०
६०.	**वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति**—पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	५·००
६१.	**पंचदश लोकभाषा-निबन्धावली**	४·५०
६२.	**हिन्दी-साहित्य और बिहार (७वीं से १८वीं शती तक)**—सं० आचार्य शिवपूजन सहाय	५·५०
६३.	**कथासरित्सागर (प्रथम खण्ड)**—मूल लेखक : महाकवि सोमदेव भट्ट	१०·००
६४.	**भारतीय अब्दकोश (शकाब्द १८८२)**—सं० श्रीगदाधरप्रसाद अम्बष्ठ	६·००
६५.	**अयोध्याप्रसाद खत्री-स्मारक ग्रन्थ**	५·००
६६.	**सदलमिश्र-ग्रन्थावली**—सं० आचार्य नलिनविलोचन शर्मा	५·००
६७.	**रंगनाथ रामायण (तेलुगु से अनूदित)**—अनु० श्री ए० सी० कामाक्षि राव	६·५०
६८.	**गोस्वामी तुलसीदास**—स्व० श्रीशिवनन्दन सहाय	५·५०

✶